चौलुक्य राज्य-विस्तार

० १०० २०० ३००

• प्रमुख स्थान देवस्थान ▲

समर्पण

- जिनकी कभी सेवा-शुश्रूषा न कर सका—
- बचपनके नटखटपनके कारण जिन्हें सदा दुखी किया—
- जिनका चित्र हृदय पटलपर अंकित किया करता हूँ—
- जिनके प्यार-पुचकारके लिए जी मचल उठता है—
- जिनके अन्तिम दर्शन और आशीर्वादसे वंचित रहा—

उन्हीं पूजनीया स्वर्गीय माताजीके
श्रीचरणोंमें यह कृति
श्रद्धया समर्पित है

—लक्ष्मीशंकर व्यास

प्रास्ताविक

इतिहासके प्रतिभावान अध्येता, उदीयमान साहित्यिक और अनुभवी पत्रकार श्री लक्ष्मीशंकर व्यास, एम० ए० (ऑनर्स)का प्रस्तुत ग्रन्थ 'चौलुक्य कुमारपाल' एक ख्याति-लब्ध रचना है। यद्यपि उत्तर प्रदेशीय सरकारने इस रचनाका इतना महत्त्वपूर्ण माना है कि पाण्डुलिपिके आधार-पर ही इसे पुरस्कृत किया है।

पुस्तककी मुख्य उपादेयता इस बातमें है कि यह भारतीय इतिहासके एक ऐसे महिमावान व्यक्तिके कार्यकलापका अध्ययन प्रस्तुत करती है जिसकी गणना हमारे देशके महानतम सम्राटा और राष्ट्र-निर्माताओंमें होती है। चौलुक्य कुमारपाल अपनी महानताओंके आधारपर चन्द्रगुप्त मौर्य अशोक और हर्षवर्द्धनके समकक्ष है। चौलुक्य कुमारपाल सम्बन्धी इतिवृत्तको आकलित और योजित करनेके लिए श्री लक्ष्मीशंकर व्यासने इतिहासके सभी प्रामाणिक मूल आधारो और उपादानोका विधिवत् गहन अध्ययन किया है—संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंशके दर्जनो ग्रन्थ, बीसियो शिलापट्ट और उत्कीर्ण लेख, देशी विदेशी विद्वानो द्वारा लिखित पचासो ग्रन्थ, और अनेको मन्दिरो तथा विहारोके शताधिक खण्डावशेष। जिन-जिन विद्वानोंने इस ग्रन्थको देखा है, वे श्री व्यासके परिश्रम, प्रबुद्ध अवलोकन, निष्पक्ष आकलन और वैज्ञानिक पद्धतिसे प्रभावित हुए है। इसके अति-रिक्त विचारोकी क्रम-बद्धता, और शैलीकी सरलता पाठकको उस खोजसे बचाते है, जो खोजकी पुस्तकोम यास-अनायास आ पैठती है।

मध्यकालीन भारतीय इतिहासके ग्रन्थोंमें प्राय इस मान्यतापर बल दिया जाता रहा है कि हिन्दू साम्राज्यकी एक छत्र बडी इकाईका अन्तिम स्वामी सम्राट् हर्षवर्द्धन था, जिसकी मृत्यु सन् ६४७ ई०में हुई। हर्षवर्द्धनके बाद भारतीय राष्ट्रका झडा शासकीय मेरुदडसे जो गिरा तो गिरा ही रहा। एकके बाद दूसरे विदेशी दल और वश आये-गये तथा हमारी धरा और ध्वजको रौदते रहे—अरब, तुर्क, पठान, मुगल, अग्रेज ! लगभग १३ शताब्दियो बाद, १५ अगस्त १९४७को ही, हमारा राष्ट्रध्वज फिर एक बार स्वतन्त्रताके वायुमडलमें लहरा पाया है।

पराधीनताकी इन १३ शताब्दियोंके लम्बे व्यवधानमें क्या सचमुच ही हमारा राष्ट्र धराशायी होकर अचेत पडा रहा? क्या यह कल्पना सच है? 'चौलुक्य कुमारपाल' पुस्तक शताब्दियोंकी लम्बी खाईको कुछ इस तरह भरती है कि हम हर्षके बादकी ६ शताब्दियोंके ध्वंसपर निर्मित नई खोज और नई प्रतीतिके ठोस धरातलपर पहुँच जाते हैं। जहाँ हमें १२वी शताब्दीकी उस गरिमासे साक्षात्कार होता है जो हमारे राष्ट्रकी सतत प्रवाहमयी जीवनी शक्तिका ज्वलत प्रमाण है।

जब हम सोचते है कि चौलुक्य कुमारपालने देशके ह्रासोन्मुख वातावरणकी तमसावृत छायामें अपने ३० वर्षके शासनकालमें साम्राज्यका इतना विस्तार किया कि तुर्किस्तानसे मालवदेश तक तथा काठियावाडसे कन्नौज तकके प्रदेश उसके आधीन हो गये तो हम उसकी शासन-योग्यता और अद्भुत पराक्रमसे प्रभावित होते हैं। कुमारपालकी साम्राज्य-परिधिमें कोकण, कर्नाटक, लाट गुजर, सौराष्ट्र, कच्छ सिन्धु उच्चा, भम्भरी, मारवाड, मालवा, मेवाड, कीर, जागल, सपादलक्ष, दिल्ली, जालन्धर महाराष्ट्र इत्यादि १८ प्रदेश सम्मिलित थे। और जब हमें इस बातका बोध होता है कि कुमारपालका ३० वर्षका शासनकाल उस समय प्रारम्भ हुआ, जब वह ५० वर्षका हो चुका था तो हम उसकी अप्रतिम क्षमतापर आश्चर्य चकित हो जाना पडता है। वास्तविक विस्मयकी बात तो इस महाप्राण मानवका सारे-का-सारा जीवन ही है जो दुर्द्धर्ष संघर्ष, अप्रतिहत प्रेरणा और अक्षय आस्थासे ओतप्रोत है। अग्नि और प्रभंजनका यह दीप्तिपुंज कहांसे उठा, कहाँ-कहाँ पहुँचा और कहाँ-कहाँ मँडराया! किस प्रकार इसकी प्रतिभाके निर्माणकारी विस्फोटने दिग्दिगन्तको आगत-अनागतकी सुदूरवर्ती सीमाओं तक आलोकित कर दिया है! उडती हुई विहंगम दृष्टि डालकर देखें।

कुमारपाल राजकीय कुलमें जन्मा तो किन्तु इस अभिशापके साथ कि उसके प्रपितामह भीमदेवने जिस बकुलादेवीको वरण करके कुमारपालके वंशकी परम्परा डाली थी, वह बकुलादेवी एक नर्तकी थी। कुमारपालके ताऊ सिद्धराज जयसिंहके सन्तान न थी। अतः स्पष्ट था कि जयसिंहके उपरान्त राज्य कुमारपालको मिलेगा। जयसिंहको यह अनुकूल नहीं जँचा कि उसका राज्य ऐसे भतीजेके हाथमें जाय जिसकी शिराओंमें नर्तकी-

का रक्त है। लिपिबद्ध परम्परा साक्षी है कि जयसिंहने यहाँतक चाहा कि कुमारपालकी जीवन-वेलि सदाके लिए निर्मूल कर दी जाये। कुमारपाल अपने भविष्यके प्रति सशक हो गया और अपने बहनोई कृष्णदेवकी सहायता-से वह अनहिलवाडा छोडकर भाग खडा हुआ। जयसिंहकी इसी दुरभि-सन्धिकी भूमिकामेंसे कालान्तरमे कुमारपालकी अभिवृद्धिकी लता फूटी! पलायनके इसी क्षणसे कुमारपालने जगत् और जीवनकी खुली पोथीसे ज्ञानसचय प्रारम्भ कर दिया। बडौदा, भडोंच, कोल्हापुर, कल्याण, दक्षिणदेश, प्रतिष्ठान, मालवा आदि नाना देशो और नाना वेशोमें घूम-फिरकर कुमारपालने अनेक ज्ञानियो, साधुओ, राजाओ, मन्त्रियो और सैनिक भटोसे सम्पर्क स्थापित कर लिया। कष्ट भी अनेको झेले, क्योकि सिद्धराज जयसिंहके गुप्तचर बराबर पीछा कर रहे थे। कुमारपालने प्रवासमें रहते हुए अपनी जन्मभूमिसे भी बराबर सम्पर्क बनाये रखनेका प्रयत्न किया। यहाँतक कि एक बार जब वह स्वय साधुवेशमें अलहिणपुर पहुँचा तो जयसिंहको गुप्तचरो-द्वारा सूचना मिल गई। उस दिन जयसिंहके पिता कर्णदेवका श्राद्ध-दिवस था। जयसिंहकी आज्ञा हुई कि नगर-देहातके समस्त साधुओंको तत्काल निमन्त्रित किया जाये, कोई छूटने न पाये। कुमारपालको भी साधुओंकी पक्तिमे आ खडा होना पडा। जयसिंह बारी-बारीसे सबके चरण धोता और हाथपर दक्षिणा रखता। जब कुमार-पालके पास पहुँचा तो चरणोकी कोमलता और करतलकी रेखाओंने कुमार-पालका आभिजात्य व्यक्त कर दिया। सकेत हो गया कि अनुष्ठानकी समाप्तिपर इस साधुको 'अतिथि' बना लिया जाये। कुमारपाल भी सचेत थे। अब सोचिये उस साहसको और प्रत्युत्पन्न बुद्धिको जिसके द्वारा कुमारपाल उस प्राणान्तक सकटसे बच भागे होगे।

कुमारपालके जीवनमें ऐसी अनेक घटनाएँ है जहाँ प्राणोकी सकटमय स्थिति प्राप्त होनेपर उसने अपने अपराजित शौर्य तथा युक्तिदक्षतासे ऐसी स्थितियोका निराकरण किया है। इस प्रकारकी सकटमय स्थिति एक बार उस समय आई जब कुमारपालने शासनका श्रीगणेश ही किया था। राज्य प्राप्त होते ही कुमारपालने सारी सत्ताको अपने व्यक्तित्वसे इतना प्रभावित कर दिया कि सामन्तोकी स्वेच्छा-चारिताको प्रतिबन्धोंसे सीमित होना पडा। योजना बनी कि जिस समय राजाकी सवारी निर्दिष्ट द्वारपर

आये, नियुक्त हत्यारे उसपर टूट पडे। पर हत्यारोंको यह अवसर न मिल पाया, क्योंकि मालूम नहीं किस प्रेरणा या किस चर-व्यवस्थासे प्रभावित होकर कुमारपालने हाथीका मुँह दूसरे द्वारकी ओर उन्मुख कर दिया था। कुमारपालका अनलोद्धत व्यक्तित्व अनेक समकालीन राजाओंके लिए भी ईर्ष्याका कारण बन गया था और भागी हो गया था। एक ओर सपादलक्षके चौहान राजा अर्णोराज वर्तमान नागौरकी ओरसे चढाई की तो दूसरी ओरसे उज्जैनके राजा बल्लालने और तीसरी ओरसे चन्द्रावतीके अधिपति विक्रमसिंहने आक्रमण कर दिया। इस षड्यन्त्रमें कुमारपालका प्रधान सैनिक बहड भी सम्मिलित हो गया, जिसकी शूरताका एक विशिष्ट अंग यह था कि उसकी दहाडसे हाथी विचलित हो जाते थे। यहाँ तक कि कुमारपालका निजी हाथी कलहपचानन भी उस दहाडसे विकल हो उठता था। बहड ने कुमारपालके महावत कलिंगको भी लोभ देकर फोड लिया। योजना निश्चित हुई कि युद्धक्षेत्रमें बहडकी दहाड सुनकर जब कुमारपालका हाथी कलहपचानन रोषसे आगे बढेगा तो महावत कलिंग ऐसी स्थितिमें हाथीको ले आयेगा कि बहड अपने हाथीपरसे कूदकर कुमारपालके हाथीपर चढ आये और कुमारपालका वध आसानीसे सभव हो जाय। पर, यह सब सभव न हो पाया, क्योंकि जब युद्धक्षेत्रमें बहडका हाथी कुमारपालके हाथीके मुकाबलेमें आया और बहडने ज्योंही छलाग मारकर कुमारपालके हाथीपर आना चाहा तो पाया कि कुमारपालका हाथी पीछे हटा लिया गया था क्योंकि कलिंगका स्थान किसी दूसरे महावतने ले लिया था, और बहडकी दहाडको लक्ष्य करके प्रतिरक्षा रूपमें हाथीके कानोंपर पट्टी बँधी हुई थी। बहड दो हाथियोंके बीच आकर कुचला गया और कुमारपालकी विजय हुई।

वीरत्व तो मानो कुमारपालकी धमनियोंमें प्रवाहित था। जयसिंहकी मृत्युके बाद जब राजसिंहासनके दो प्रतिद्वन्द्वियोंमेंसे एकका चुनाव होना था तो परिषद्के सचालक-द्वारा यह प्रश्न पूछे जानेपर कि राज्यकी रक्षा किस नीति-द्वारा होगी, जहाँ कुमारपालके प्रतिद्वन्द्वीने विनीत भावसे यह कहा था कि 'जिस प्रकार आप नीति-निपुण महानुभाव मार्ग-दर्शन करेंगे' वहाँ तेजस्वी कुमारपालने स्फूर्तिसे खड़े होकर, छाती तानकर, उक्त प्रश्नके उत्तरमें अपनी तलवार ऊँचे उठा दी थी और कहा था 'राज्यकी रक्षा मेरी भुजाओंके बलपर आश्रित यह तलवार करेगी।' इसी

वीरत्वका दूसरा पहलू था आत्मसम्मान जो कभी-कभी अत्यन्त कठोर रूपमें व्यक्त होता था। कुमारपालका वीरत्व राज्यके प्रति अपमान भावको तो क्या व्यंग्य को भी नही सहन कर पाता था। कुमारपालके बहनोई जिस कृष्णदेवने उसकी पग-पगपर सहायता की थी, यहाँ तक कि उसे राजगद्दी दिलवाई थी, उस कृष्णदेवको कुमारपालने इसलिए प्राण-दण्ड दे दिया कि वह कुमारपालको बार-बार व्यंग्य बाणोंसे आहत करता था और उसकी पूर्वावस्थाकी खिल्ली उडाया करता था। 'दीपकको मैंने जलाया है, इसलिए क्या उसमे मुझे अपनी उँगली दे देनेकी धृष्टता करनी चाहिए?' यह तथ्य कृष्णदेवने न समझा, इसीलिए दीपककी ज्वालाने उसे भस्म कर दिया। एक और घटना लीजिए। कुमारपाल-द्वारा बार-बार वर्जन करनेपर भी कोंकणका राजा मल्लिकार्जुन अपने लिए 'राज्यपितामह'की उपाधि प्रयुक्त करता रहा। अन्तमें एक दिन यह होकर ही रहा कि कुमारपालके सेनापति अम्बडने मल्लिकार्जुनके छिन्न सिरको स्वर्णपत्रमे लपटकर श्रीफलकी भाँति कुमारपालकी सेवामे उस समय प्रस्तुत किया जब ७२ राजा राजसभामें उपस्थित थे। कुमारपालकी दृष्टि इतनी तल-स्पर्शी थी और न्यायबुद्धि इतनी कठोर कि शासनके अग-उपागोंको सदा ही स्वस्थ और तत्पर रहना पडता था। कोई भी कही चूका और कुमारपालकी कठोर दृष्टि उसपर पडी। 'राजघटत्ता' चहड इसका उदाहरण है। जिस बहडका ऊपर उल्लेख हो चुका है, उसका छोटा भाई चहड सदा ही कुमारपालका आज्ञानुवर्ती रहा। चहडके सेना-पतित्वमें साभरपर इसलिए चढाई की गई कि साभर राज्यकी सेनाएँ कुमारपालके प्रतिपक्षियोंकी सहायता करती थीं। चहडने साभरको जीत तो लिया किन्तु अत्यधिक व्ययके उपरान्त। कुमार-पालका आदेश हुआ कि चहडको 'राजघटत्ता'की उपाधि दी जाये! दण्डविधानके इतिहासमें कुमारपालकी यह सूझ भी अविस्मरणीय होनी चाहिए।

महान् व्यक्तियोंका चरित्र एकागी नही होता। कुमारपाल कूट-नीतिके क्षेत्रमें जितना कठोर था, जीवनके धरातलपर वह उतना ही सहृदय और कोमल भी! कुमारपालके वैचित्र्यपूर्ण चरित्रका अनुमान इस बातसे लग जायगा कि जिस 'पितामह'की उपाधि-प्रयोगकी उद्दडताके फल-स्वरूप

मल्लिकार्जुनको प्राणोसे हाथ धोना पडा, वही 'पितामह'-उपाधि कुमारपालने उस वणिक सुभट अम्बडको प्रदान कर दी, जिसकी लपलपाती तलवारने मल्लिकार्जुनके सिरका कमल-पुष्पकी भाँति काट दिया था। शासन-सचालनकी सुचारता और राजकीय सगठनकी दृढताके लिए कुमारपालने जो व्यवस्था की थी, वह इतनी पूर्ण व्यापक तथा निर्दोष है कि उसमें आजकी गणतन्त्रात्मक आधुनिकताका आभास मिलता है। पुस्तकमें यथास्थान इसका विस्तृत विवरण मिलेगा।

कुमारपालके जीवनमें यदि हमने सघर्ष, पराक्रम, कूटनीति, शासकीय योग्यता और विजय ही देखी तो मानना चाहिए कि हमने उसकी महानता और सफलताका अधिकाश उपेक्षित कर दिया। कुमारपालकी महानता इस बातमें है कि उसने राजनीतिकी कठोर वस्तुस्थिति और याथार्थ्यके आधारपर सचालित करते हुए भी, प्रजाके व्यावहारिक जीवनको सामूहिक अहिंसा, जीवदया, करुणा और चरित्र-गत निर्मलताके आधारपर स्थापित किया। स्वय जैन धर्मावलम्बी होते हुए भी अपने राज्यमें इतनी उदार सहिष्णुता बरती कि प्रजाका मन मोह लिया। यही कारण है कि उसके नामके साथ जहाँ एक ओर जैन धर्म-सूचक 'परम भट्टारक' और 'आर्हत' उपाधियोका प्रयोग होता है, वहाँ दूसरी ओर अनेक शिला-लेखोमें उसे 'उमापति-वरलब्ध' की उपाधिसे भी स्मरण किया गया है। वास्तवमें गुजरातकी सास्कृतिक परम्परामें यह बात सहज-सिद्ध हो गई थी कि वहाँ जैन धर्म और शैव धर्म साथ-साथ रहते थे और फलते फूलते थे। यो तो शिव और शैव धर्म, अपने प्राचीन-तम मूल रूपमें जिन और 'जिन धर्म'के ही परिवर्तित रूप है, किन्तु कालान्तरके अति परिवर्तित रूपमें भी और दक्षिण भारतके रक्त रजित धार्मिक सघर्षोके दिनामें भी गुजरातने दोनो धर्मोकी पारस्परिक सहिष्णुताको प्राय अक्षुण्ण रखा है।

हमारे आजके युगमे महात्मा गाधी-जैसी सर्व धर्म सहिष्णु, अहिंसोपासक विभूतिका गुजरातमे ही प्रादुर्भाव होना कोई आकस्मिक घटना नहीं। ऐसे अशेष मानवतावादी राजनीति नियता ऋषिको जन्म देनेकी पात्रता गुजरातकी ही सस्कृति-पूत गौरवमयी धरामें विशेष रूपसे थी। प्रागैतिहासिक कालके परमयोगी कृष्ण और तीर्थंकर नमिनाथ, १२वी शताब्दीके राजर्षि कुमारपाल और २०वी शताब्दीके महात्मा गाँधी

एक ही विशिष्ट सांस्कृतिक परम्पराके अविच्छिन्न अंग हैं।

यद्यपि यह ग्रन्थ कुमारपालकी ऐतिहासिक महत्ता और उसके जीवनकी गौरव-गरिमाका बखान करता है, किन्तु वास्तव बात यह है कि कुमारपाल स्वयं एक महत्तर ज्योतिपुंजकी छाया मात्र हैं। वह तो एक कण है जो किसी प्रचंड प्रतिभाके लीला-विलाससे धरापर छिटक पड़ा है। उस ज्योतिपुंज और मूर्त प्रतिभाका नाम है—आचार्य हेमचन्द्र जिन्हें 'कलिकाल सर्वज्ञ' कहा गया है। इनके सम्बन्धमें कहा गया है :—

"क्लृप्तं व्याकरणं नवं विरचितं छन्दो नवं द्व्याश्रया-
ऽलङ्कारौ प्रथितौ नवौ प्रकटितं श्रीयोगशास्त्रं नवम्।
तर्कः संजनितो नवो जिनवरादीनां चरित्रं नवं
बद्धं येन न केन केन विधिना मोहः कृतो दूरतः॥"

आचार्य हेमचन्द्रकी जिस विचक्षण प्रतिभा द्वारा प्रसूत नये-नये प्रणयनोंका संकेत ऊपरके श्लोकमें दिया गया है उनकी संक्षिप्त सूची इस प्रकार है —

व्याकरणग्रन्थ—सिद्ध हेम व्याकरण, सिद्ध हैम लिंगानुशासन, धातुपरायण।
शब्दकोश—अभिधानचिन्तामणि, अनेकार्थसंग्रह, निघंटुकोष, देशी नाममाला
अलंकारग्रन्थ—काव्यानुशासन छन्दग्रन्थ—छन्दोनुशासन
काव्यग्रन्थ—संस्कृत, प्राकृत द्व्याश्रयकाव्य
जीवनचरित्र—त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्र
दर्शन-योग ग्रन्थ—प्रमाणमीमांसा, योगशास्त्र

इतना ही नहीं। आचार्य हेमचन्द्रकी गणना भारतके महानतम ज्योतिषियोंमें होती है। राजनीति और कूटनीतिके तत्त्वोंका ज्ञान भी उनका इतना विशाल और उन तत्त्वोंके सफल प्रयोगकी जन्मजात प्रतिभा भी इतनी अद्भुत थी कि देखकर चकित हो जाना पड़ता है। उनका जीवन सर्वथा अकिंचन, निःस्व, तपपूत और कल्याण-विधायक था ही। मनमें एक कल्पना उठती है। आचार्य चाणक्यकी प्रतिभाको धर्मकी प्रेरणासे परिचालित करके, अपार ज्ञान और दर्शनकी बहुमुखी उपलब्धियोंसे पूरित करके एवं अद्भुत भव्यताके आलोकसे परिवेष्टित करके जिस प्रणम्य पुरुषकी कल्पना हम करेंगे वह सम्भवतया आचार्य हेमचन्द्रके व्यक्तित्वकी झलक दिखा सके। इन्हीं आचार्य हेमचन्द्रका वरदहस्त

कुमारपालके शीषपर सदा रहा है। इन्हींके उपदेशोंसे प्रभावित होकर कुमारपालने अपने राज्यमें हिंसाका निषेध किया; द्यूत, मांसाहार, मृगया आदि व्यसनोंसे पराङ्मुख होनेकी प्रेरणा प्रजाको दी। निःसन्तान पुरुषकी मृत्युके बाद उसका धन-धाम राजकोषमें चले जानेकी परम्परागत नीतिके कारण विधवाओंकी जो दुर्दशा होती थी, उससे द्रवित होकर कुमारपालने उस प्रथाको बन्द करवाया। कुमारपालने प्रजाकी शिक्षा-दीक्षाका समुचित प्रबन्ध किया; औषधालयों, देवालयों, पान्थशालाओं और कूप-तड़ागोंका निर्माण करवाकर जनताको अनेक प्रकारकी सुख-सुविधाएँ प्रदान कीं। कुमारपालके शासनमें न कभी दुर्भिक्ष पड़ा, न कोई महामारी सघातक रूपसे फैली। अभिनव साहित्य-सृजन, कलात्मक निर्माण, सांस्कृतिक अभ्युत्थान, आर्थिक संवर्धन, धार्मिक सहिष्णुता, प्रजारंजन आदि सभी दिशाओंमें कुमारपालके शासनकी सफलता परिलक्षित होती है।

विद्वान् लेखकने समस्त इतिवृत्तको अधिक-से-अधिक प्रामाणिक बनानेका प्रयास किया है। यदि परम्परागत ग्रन्थ-सन्दर्भों एवं प्रचलित जन-श्रुतियोंके आधारपर कहीं किसी ऐसी प्रतीतिका रसोद्रेक हो गया हो जो इतिहासके शुष्क ठोसपनको मांसल बनाता हो तो लेखक और ग्रन्थमाला-सम्पादक आलोचकोंकी सहानुभूति चाहेंगे। इतिहासकी नई लीक डालनेवालोंके लिए जो व्यक्ति श्रमिकोंके अग्रिम दलकी भाँति रास्ता साफ करनेका काम करें, उनपर उतना ही तो उत्तरदायित्व डाला जा सकता है जितनी उनकी क्षमता हो।

इतनेपर भी हम आश्वस्त हैं कि भारतीय ज्ञानपीठका यह प्रकाशन इतिहासवेत्ताओं और साधारण पाठकोंकी दृष्टिमें उसी प्रकार समादृत होगा, जिस प्रकार उत्तरप्रदेशीय सरकारकी दृष्टिमें हुआ है।

लखनऊ
शरत् पूर्णिमा
१९५४

लक्ष्मीचन्द्र जैन
सम्पादक
लोकोदय ग्रन्थ माला

विषय-क्रम

तृतीय अध्याय

चौथा अध्याय

पाँचवाँ अध्याय

छठा अध्याय

सातवा अध्याय

आठवां अध्याय

नौवां अध्याय

ग्रंथमें व्यवहृत संक्षिप्त नाम

ए० के० के० : एंटीक्यूटीज आव कच्छ एंड काठियावाड।
ए० ए० के० : आइन-ए-अकबरी।
ए० एस० आई० डब्लू० सी० : आर्कलाजिकल सर्वे इंडिया वेस्टर्न सर०।
बी० एच० जी० : बेली हिस्ट्री आव गुजरात।
बी० जी० : बम्बई गजेटियर।
बी० पी० एस० आई० : प्राकृत एंड संस्कृत इन्सक्रिपशन्स।
डी० एच० एन० आई० : डाइनेस्टिक हिस्ट्री आव नारदरन इंडिया।
आर० ए० आर० बी० पी० : रिवाइज्ड एंटीक्वेरियन रिमेन्स बाम्बे प्रेसि०।
एच० एम० एच० आई : हिस्ट्री आव मेडिवियल हिन्दू इण्डिया।

आमुख

भारतीय इतिहासके समुचित निर्माणके लिये दो बाते बहुत ही आवश्यक हैं—(१) विभिन्न प्रदेशो और स्थानोके इतिहासमें विस्तृत और प्रमाणिक अनुसधान और शोध तथा (२) भारतीय इतिहासके प्रमुख महापुरुषो और व्यक्तियोके चरित्र तथा इतिहासका विशद वर्णन और विवेचन। इन दोनो क्षेत्रोमें जितना ही अधिक कार्य होगा देशका इतिहास उतना ही पूर्ण और विश्वसनीय लिखा जा सकेगा। चौलुक्य कुमारपालका इतिहास इस दिशामें एक महत्त्वपूर्ण प्रणयन हैं। विशेषकर हिन्दी भाषामें इस प्रकारके ग्रथोकी अभी तक कमी है और प्रस्तुत ग्रथ इस अभावकी पूर्ति करता है।

इतिहास-लेखनमे दृष्टि और पद्धतिका प्रश्न भी महत्त्वपूर्ण है। इतिहासके उद्देश्य, क्षेत्र, सीमा और परिधिमे इधर बहुतमे परिवर्तन हुए हैं। जागरुक लेखक ही सफल इतिहासकार हो सकता है। प्रस्तुत लेखककी चेतना इस दिशामें जागृत हैं। उन्होंने इतिहासके मूल उद्देश्य—अतीतका सच्चा चित्रण, आकलन तथा मूल्याकन—को सामने रखकर तथ्योका संकलन, चयन और परीक्षण करते हुए कलात्मक ढगसे अपने विषयका प्रतिपादन किया हैं। इतिहासका कलापक्ष ही उसे मानवके लिये अधिक आकर्षक और उपयोगी बनाता है। कला-पक्षके निर्वाहके साथ इस ग्रथमे वैज्ञानिक पद्धतिका अवलम्बन किया गया है। सभी उपलब्ध सामग्रियोका सकलन, चयन और परीक्षण निष्पक्ष भावसे हुआ हैं। वास्तवमें इतिहासकी यही आधारशिला है, जिसके ऊपर उसकी विशाल कलात्मक अट्टालिकाका निर्माण सभव है। लेखकने अपने इस दायित्वको भी सफलताके साथ निभाया है।

चौलुक्य कुमारपाल भारतके मध्यकालीन शासकोमें प्रमुख थे।

गजनीके तुर्कोंने आक्रमणके प्रथम वेगसे पश्चिमोत्तर और पश्चिम भारतको काफी आघात पहुँचा था। यह राजनैतिक विशृंखलता तथा सामाजिक सकीर्णताका युग था। ऐसे समयमें कुमारपालने अपनी प्रतिभा, नैतिक बल, शासकीय योग्यता तथा सास्कृतिक उदारतासे देशके स्तम्भनका बहुत बड़ा कार्य किया। युगकी सीमाके बाहर निकलना उनके लिये सभव नही था, फिर भी उनका जीवन और उनके कार्य कई दृष्टियोंसे महत्त्वपूर्ण हैं। ऐसे पुरुषके जीवन और कार्यों और उसके युगकी प्रवृत्तियोंका चित्र प्रस्तुत कर लेखकने महत्वका कार्य किया है और वे हमारे साधुवादके पात्र हैं। यह ग्रथ विद्वन्मण्डली तथा जनतामें समान रूपसे अभिनन्दनीय है।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
आषाढ शुक्ल ७,
स० २०११ वि०

राजबली पाण्डेय
एम०ए०, डी०लिट्
प्रिंसिपल, इण्डोलाजी कालेज तथा
अध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास तथा सस्कृति

भूमिका

भारतके मध्यकालीन इतिहासमें महाराजाधिराज परमभट्टारक चौलुक्य कुमारपालका विशिष्ट महत्त्व है। सम्राट् हर्षवर्द्धनके पश्चात् चौलुक्य कुमारपाल बारहवीं शतीमें भारतके अन्तिम हिन्दू सम्राट् हुए, जिन्होंने पश्चिमोत्तर तथा पश्चिमी भारतकी व्यापक राज्यसीमामें एक शासनसूत्र और सार्वभौम राजतन्त्रकी स्थापना की। मध्यकालीन भारतीय इतिहासमें इतनी बृहत् और विशाल राजनीतिक इकाई एक शासकके अधीन पुन. दृष्टिगत नही होती। चौलुक्य कुमारपालकी राज्यसीमा आधुनिक गुजरात, काठियावाड, कच्छ, दक्षिण राजपूताना, मालवा और सिन्ध तक विस्तृत थी। तुर्क-आक्रमणोंके परिणामस्वरूप कालान्तरमें जो पराधीनता आयी, उसके पूर्व भारतीय गौरव, शौर्य, वैभव और विपुलताकी अन्तिम झाकी, इसी कालमे दृष्टिगोचर हुई। वस्तुत इस समय चौलुक्य साम्राज्यका विस्तार चरमसीमापर पहुँच गया था।

कुमारपालका राजत्वकाल (सन् ११४२–११७३ ईस्वी) तथा उसका युग साम्राज्य-विस्तार अथवा सफल सैनिक अभियानोकी शृंखलाके ही कारण महत्त्वपूर्ण हो, ऐसी बात नही। राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक तथा सास्कृतिक सभी दृष्टियोसे उसकी विशेष महत्ता है। यथार्थत कुमारपालका शासनकाल और युग, देशमें नवीन राष्ट्रीय चेतना, नव सामाजिक सुधार, कलापूर्ण निर्माण तथा साहित्यिक-सास्कृतिक पुनर्जागरणके युगारम्भकी दृष्टिसे, भारतीय इतिहासमें विशिष्ट स्थान रखता है। पश्चिम और पश्चिमोत्तर भारतमें तुर्क-आक्रमणोके प्रथम प्रहारसे जो राजनैतिक विशृंखलता व्याप्त हो गयी थी, उसे दूर करनेमें कुमारपाल बहुत अशो तक सफल हुआ। यही कारण था कि उसके

उत्तराधिकारियोंने गोरीके गुजरातपर आक्रमणका सफलतापूर्वक प्रतिरोध कर उसे पराजित किया। इस कालमें केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारोंका सुव्यवस्थित सघटन था तथा प्रशासनके विविध अगोकी समुचित व्यवस्था विद्यमान थी।

धर्म और संस्कृतिके अभ्युत्थानकी दृष्टिसे भी इस युगका कुछ कम महत्त्व नहीं। जैन धर्मका अभिनव प्रवर्तन और प्रचार इस युगकी विशेष घटना है। जैनधर्मका यह उत्कर्ष किसी कटु भावनाके साथ नहीं, अपितु अद्भुत एव असाधारण धार्मिक सहिष्णुता और सद्भावना-सहित हुआ। गुजरातमें इस समय जैनधर्मके साथ शैव तथा अन्य सम्प्रदायोंकी भी उन्नति होती रही। जैनधर्म भारतीय संस्कृतिका अभिन्न अग हो गया। इसने देशके कोटि-कोटि जनोंके संस्कारों विचारोंको शताब्दियों पर्यन्त प्रभावित किया। छ सौ वर्षोंके पश्चात् पश्चिमी भारतके इसी भूखण्डमें, महात्मा गान्धी जैसी युगावतार भारत विभूतिका प्रादुर्भाव हुआ, जिसने देशमे अपने अहिंसा सिद्धान्तसे अभिनव क्रान्तिकी और राष्ट्रका कायापलट कर दिया। देखा जाय तो राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिमें, अहिंसा सिद्धान्तके इस नूतन प्रयोग एव विकास-परम्पराका बहुत कुछ श्रेय, बारहवी शताब्दीमें हुए इस धार्मिक-सास्कृतिक अभ्युत्थानको ही है।

सामाजिक नवजागरणमे चौलुक्य कुमारपालका शासनकाल एक नवीन सन्देशका वाहक रहा है। इस समय समाजमें प्रचलित हिंसा, मद्यपान, मांसाहार, द्यूत आदि व्यसनोपर कठोर नियम बनाकर नियन्त्रण एव प्रतिबन्ध लगाये गये जो आधुनिक जनसत्तात्मक सरकारो जैसे प्रगतिशील विधानोंसे अदभुत साम्य रखते हैं। कुमारपालने मृतधनापहरण नियमका निषेध किया जिसके द्वारा नि सन्तान मरनेवालोंकी सम्पत्तिपर राज्यका अधिकार हो जाता था। आर्थिक दृष्टिसे यह काल, वैभव सम्पन्नता और समृद्धताका युग था। गुजरात, काठियावाड और कच्छके बन्दरगाहोंमें आयात निर्यात व्यापारके निमित्त, देश विदेशके व्यापारिक पोत आते

थे। चौलुक्य साम्राज्यकी राजधानी, इस समय संसारके व्यापारका केन्द्र बनी हुई थी। देशमें शान्ति और सम्पन्नताके फलस्वरूप इस समय भव्य मन्दिरों तथा विशाल जैन विहारोंके प्रचुर संख्यामें निर्माण हुए, जिनके अवशेष आज भी स्थापत्य और शिल्पकलाके उत्कृष्ट निदर्शन हैं। आबूके ससार-प्रसिद्ध जैन मन्दिर इसी युगकी निर्माणकलाके नमूने हैं। विमलशाह (सन् १०३१ ई०) और तेजपाल (सन् १२३० ई०) द्वारा निर्मित आबू पहाड़पर श्वेत सगमरमरके मन्दिर चौलुक्यकालीन शिला-सौन्दर्य और स्थापत्य-कलाके चरम विकासके सजीव उदाहरण हैं। आबू पर्वतपर इन मन्दिरोंके निर्माणके लिए शिलाखण्डों तथा अन्यान्य साधनोंका एकत्रीकरण और निर्माण, इस युगकी असाधारण निर्माण-दक्षता तथा शिल्प-कौशलके परिचायक हैं।

कुमारपालने सैकड़ों मन्दिरों तथा विशाल विहारोंका निर्माण कराया, जिनमेंसे अनेक आज भी विद्यमान हैं। इतिहास-प्रसिद्ध सोमनाथ मन्दिर-का पुनर्निर्माण कुमारपालके शासनकालकी चिरस्मरणीय घटना है। इनके अवशेष आज भी उस कालकी कलाका स्मरण दिलाते हैं, जो राष्ट्रके गर्व और गौरवकी वस्तु हैं। चौलुक्यकालीन गुजरात तथा पश्चिमोत्तर भारतकी विभिन्न कलानिधियां बहुत दिनों तक उपेक्षा और उदासीनताके फलस्वरूप अनादृत पड़ी हुई थी। हर्षका विषय है कि अब इनकी सुरक्षा और संरक्षणका महत्त्व समझा जाने लगा है। जैन भण्डारोंमें पडी अमूल्य तथा दुर्लभ सामग्री अब प्रकाशमें आने लगी है। इस युगकी कला-कृतियां केवल गुजरातमें ही नही, अपितु राजस्थान मण्डलमे भी विस्तृत एव विकीर्ण हैं। गुजरात, मालवा, मेवाड़, पूर्व खानदेश आदिके व्यापक क्षेत्रमें इस युगकी कला-रचनाएं पायी जाती हैं। सिद्धपुर स्थित रुद्र-महालयके ध्वसावशेषमे विद्यमान, नृत्य करती हुई मूर्तियोंके समान ही आकृतियां, आबूके निकट देलवाड़ाके स्तम्भोंपर भी निर्मित हैं। तारंगा पहाड़ीपर कुमारपाल द्वारा बनवाये विशाल अजितनाथ मन्दिरके पृष्ठ-

भागमें बनी सगमरमरकी जालिया शिल्पकला और कौशलकी उत्कृष्टतम निदर्शन हैं। इसी प्रकारकी सगमरमरकी जालिया अनेक शताब्दियोंके पश्चात् सुलतानोंके कालमें बनी मसजिदोंमें भी पायी जाती हैं। इससे चौलुक्यकालीन शिल्पकलाकी श्रेष्ठताका सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

साहित्यके क्षत्रमें महान् आचार्य हेमचन्द्र, सोमप्रभाचार्य, यशपाल, जयसिंह सूरि आदिकी सतत साधनाने एक नवीन साहित्यिक चेतना और जागृतिके अध्यायका समारम्भ किया। आचार्य हेमचन्द्रके नेतृत्व एव निर्देशमें इस समय साहित्य निर्माणके महान् यज्ञका अनुष्ठान हुआ। इस समय लिखे प्रभूत ग्रथोकी ताडपत्रीय प्रति तथा पाण्डुलिपिया पाटन तथा अन्य जैन भण्डाराम भरी पडी हैं। अब इनकी सहेज-सभाल हो रही है और अनेक ग्रथोका प्रकाशन भी हो रहा है। सस्कृत और प्राकृत भाषामें प्रभूत साहित्य निर्माणके साथ, इसी समय नागरीका जन्म एव विकास भी हुआ। इस समय व्याकरण, नाटक, काव्य दर्शन, वेदान्त, इतिहास आदि के ग्रन्थोंके प्रणयन हुए। इनमें आचार्य हेमचन्द्रके व्याकरणका अत्यधिक महत्त्व है।

जैन भण्डारोंसे प्राप्त ताडपत्रीय प्रतिया तथा पाण्डुलिपियोंसे इस कालमें हुई महत्त्वपूर्ण साहित्य-रचना तथा चित्रकलाके विकासका भली प्रकार परिचय प्राप्त होता है। इन्ही ताडपत्रीय प्रतियोंमें चौलुक्य कुमारपाल तथा आचार्य हेमचन्द्रके चित्र प्राप्त हुए हैं। पाटनके सघवीणा भण्डारसे प्राप्त महावीरचरित्रकी ताडपत्रीय प्रति (वि० स० १२६४)में चौलुक्य कुमारपाल तथा जैन महापण्डित आचार्य हेमचन्द्रके लघु प्रतिकृति चित्र मिले हैं। इसी प्रकार शातिनाथ भण्डारसे प्राप्त दशवैकालिका लघुवृत्तिकी सन ११४३ ई०की ताडपत्रीय प्रतिमें चौलुक्य कुमारपाल तथा हेमचन्द्राचार्यके लघुचित्र अकित हैं। महावीरचरित्रकी प्रतिमें हेमचन्द्राचार्य अपने शिष्योंके मध्य सिंहासनारूढ हैं। उनके पीछे एक

शिष्य हाथमे वस्त्र लिये हुए आचार्यकी अभ्यर्थनामे खडा है। आचार्यके सम्मुख एक शिष्य पुस्तक लेकर शिक्षा ग्रहण कर रहा है। चौलुक्य कुमारपालका चित्र भी इसी ताडपत्रीय प्रतिमें अंकित है। इसमें कुमारपाल हेमचन्द्राचार्यके सम्मुख अभ्यर्थनाकी मुद्रामे बैठे हैं। वह आचार्य हेमचन्द्रसे उपदेश ग्रहण कर रहे हैं। वस्त्रयुक्त उनके दोनो हाथ उठे हुए हैं। दाहिना पैर भूमिपर स्थित है, बाया भूमिसे कुछ उठा हुआ है। वह नीले वर्णका जरीदार वस्त्र धारण किये हुए है। इसी युगकी चित्रकलाकी परम्परामें कल्पसूत्र भी आते हैं। इनकी कलात्मकता और श्रेष्ठता सर्वविदित है। वस्तुत साहित्य और विभिन्न कलाओका इस युगमे सर्वतोमुखी अभ्युदय एव उत्कर्ष हुआ।

इन विवरणो तथा तथ्योंसे स्पष्ट है कि बारहवी शताब्दीके भारतीय इतिहासमें गुजरातके चौलुक्य महान् शक्तिशाली और प्रभुसत्ता सम्पन्न शासक थे। इनमें सिद्धराज जयसिंह और कुमारपालके शासनकाल अत्यधिक महत्त्वके हैं। कुमारपालने तो अपनी राज्यसीमा पूर्वमें गगा तक विस्तृत विस्तीर्ण कर ली थी। ऐसे शक्तिशाली साम्राज्यके निर्माता और ऐतिहासिक महापुरुषका, शिलालेखो तथा नवीन ऐतिहासिक अनुसन्धानोंके आधारपर, वैज्ञानिक पद्धतिके अनुसार विस्तृत एव व्यवस्थित इतिहास-लेखन, युगकी माग है। भारतीय इतिहासके उज्ज्वल नक्षत्रो और महान् राष्ट्र निर्माताओका स्वरूप अब भी अज्ञात तथा रहस्यमय बना रहे, यह उचित नही। राष्ट्रीय पुनर्जागरणके इस युगमें आवश्यक है कि भारतके गौरवशाली अतीतके राष्ट्रनिर्माताओंके इतिहास, अनुशीलन और शोधके अनन्तर वैज्ञानिक पद्धतिपर लिखे जाय। प्रस्तुत ग्रन्थका प्रणयन इसी दिशामें एक प्रयत्न है। इसके लेखनमें मेरुतुग, हेमचन्द्र, सोमप्रभाचार्य, यशपाल तथा जयसिंहके सस्कृत-प्राकृत भाषामें रचित ग्रथोंके अतिरिक्त, कुमारपालसे सम्बन्धित उन बाईस शिलालेखोकी भी सहायता ली गयी है जिनसे इस इतिहासपर सर्वथा नवीन प्रकाश पडता

है। इसके साथ ही तत्कालीन स्मारकों, मन्दिरों और विहारोंके अवशेष भी मिले हैं, जिनसे कुमारपाल और उसके युगके इतिहास-लेखनमें बड़ी सहायता प्राप्त हुई है। अनेक मुस्लिम लेखकोंके विवरणोंमें भी कुमारपाल और उसके समकालीन इतिहासका उल्लेख मिलता है। चौलुक्य शासकोंके सिक्के दुर्लभ और अप्राप्य हैं। उत्तरप्रदेशमें एक स्वर्णमुद्रा प्राप्त हुई है, जो जयसिंह सिद्धराजकी बतायी जाती है। कुमारपालीय मुद्राका भी उल्लेख मिलता है। इस सम्बन्धमें पाटन, सहस्रलिंग तालाब आदिके निकट उत्खननसे नवीन प्रकाशकी आशा की जाती है।

यह तो हुई पुस्तकके अंतरंगकी बात। अब इसके बहिरंगपर भी संक्षेपमें चर्चा हो जानी चाहिए। चौलुक्य कुमारपालके इतिहासको सहज और रसमय बनानेके लिए तत्कालीन कलाके अवशेषोंके अनुकृति चित्र प्रत्येक अध्यायके प्रारम्भमें दिये गये हैं। ये चित्र उस अध्यायमें वर्णित विषयके द्योतक तो हैं ही, तत्कालीन कलाकी झांकी भी प्रस्तुत करते हैं। प्रथम अध्यायमें सोमनाथ मन्दिर तथा तत्कालीन पाण्डुलिपिका अंकन है तो द्वितीयमें समुद्र, चन्द्रमा और कुमुदिनी प्रतीकात्मक रूपसे चौलुक्योंके चन्द्रवंशी होनेका परिचय देते हुए उनकी उत्पत्तिका संकेत करते हैं। तृतीय अध्यायके प्रारम्भका चित्र तत्कालीन समाजमें शिक्षाके स्वरूप और पद्धतिका परिचायक है। जैनमुनि किस प्रकार उस समय अध्यापन करते थे, इसका अंकन इसमें हुआ है। चतुर्थ अध्यायका चित्र कुमारपालके समयके राजदरबार तथा वेश-भूषाके वर्णनके आधारपर प्रस्तुत किया गया है। इसकी पृष्ठभूमिमें देलवाड़ा मन्दिरके कलापूर्ण स्तम्भोंकी अनुकृति प्रदर्शित है। पांचवें अध्यायमें चौलुक्यकालीन चित्रोंके आधारपर सैनिक अभियानका स्वरूप अंकित है और तत्कालीन अस्त्र-शस्त्र चित्रित किये गये हैं। छठें अध्यायके चित्रांकनमें छत्र, सिंहासनके साथ, राजमुकुट और राजशक्तिकी प्रतीक तलवार अंकित है। इस चित्रमें अलंकरण और वेशभूषा तत्कालीन वर्णनके आधारपर है। सातवें

अध्यायमें व्यापारिक पोत, ध्वजा-पताका युक्त भवनोंका चित्रण कर जहां उस कालकी आर्थिक सम्पन्नताका संकेत किया गया है, वही एक ओर तत्कालीन साहित्यमें वर्णित स्त्रियोंकी वेशभूषा, वस्त्र-सज्जा तथा अलकारोंकी रूपरेखा अकित है। आठवें अध्यायका चित्र विश्वप्रसिद्ध देलवाड़ा मन्दिरके श्वेत संगमरमरकी कलापूर्ण भीतरी छतकी अनुकृति है। साहित्य और कलाके नौवें अध्यायका प्रारम्भ, वीणा पुस्तकधारिणी सरस्वतीके चित्रसे हुआ है। अन्तिम और दसवें अध्यायके आरम्भमें आबू पहाड स्थित जैन मन्दिरमें श्वेत संगमरमरकी अलकृत मेहराव है, जो चौलुक्यकालीन शिल्पकौशलका उत्कृष्ट निदर्शन है।

अन्तमें जिन विद्वानो और महानुभावोकी प्रेरणा, निर्देश तथा परामर्शसे इस ग्रंथको प्रस्तुत करनेमे मुझे सहायता मिली है, उनके प्रति मैं हार्दिक आभार प्रकट करता हूं। उत्तरप्रदेश राज्य सरकार तथा उसकी हिन्दी समितिने सन् १९५२ ई०में इस ग्रथकी पाण्डुलिपिपर ७००)का पुरस्कार प्रदान कर जो प्रोत्साहन दिया है, उससे मुझे बडा बल मिला है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके इण्डोलाजी कालेजके प्रिन्सिपल तथा प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृतिके प्रधान श्रद्धेय डाक्टर राजवली पाण्डेय, एम० ए०, डी० लिट्०ने आमुख लिखने तथा ग्रंथ-लेखनके समय सतत निर्देश देनेकी जो महती कृपा की है, उसके लिए मै उनका परम कृतज्ञ हूं। आचार्य पण्डित विश्वनाथप्रसादजी मिश्रने, हेमचन्द्रके तथा कुमारपाल सम्बन्धी अन्य संस्कृत-प्राकृत ग्रथोका बोध न कराया होता तो यह ग्रंथ इस रूपमें प्रस्तुत हो पाता, कहना कठिन है। लोकोदय ग्रंथमालाके विद्वान् और यशस्वी सम्पादक बन्धुवर श्री लक्ष्मीचन्द्रजी जैन, एम० ए०ने इसे सुन्दर, सुपाठ्य और अद्यतन बनानेके लिए जिस संलग्नता और श्रमसे इसकी पाण्डुलिपिका अध्ययन कर परामर्श दिया तथा भारतीय ज्ञानपीठके मन्त्री साहित्य-मर्मज्ञ आदरणीय श्री गोयलीयजीने, इस ग्रथमें तत्कालीन कलाके चित्रोंको सम्मिलित करनेकी सुझाव-सुविधा प्रदान कर, पुस्तकके सुन्दर

मुद्रणकी व्यवस्था की—इसके लिए मैं इन दोनों महानुभावोंके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हू। चित्रकार श्री अम्बिका प्रसाद दुबे तथा कलाकार मुहम्मद इस्माइल साहबने क्रमश, इस ग्रथके दस अध्यायोंके चित्र तथा आवरण पृष्ठकी कलात्मक रूपरेखा प्रस्तुत की है एतदर्थ वे हार्दिक धन्यवादके पात्र है। पुस्तक जैसी बन पडी है, सामने है। इसकी त्रुटियोंसे परिचित होना, मैं अपना अहोभाग्य समझूगा।

रथयात्रा, २०११ वि०
व्यास निवास, काशी

लक्ष्मीशङ्कर व्यास

इतिहास की सामग्री

साधारणत लोगोकी ऐसी धारणा रही है कि प्राचीन भारतीय इतिहासको क्रमवद्ध रूपसे प्रस्तुत करनके निमित्त उपयुक्त ऐतिहासिक सामग्रियो तथा तथ्योका अभाव है। प्रोफेसर मैक्समूलर,[1] डाक्टर फ्लीट[2] तथा श्री एलफिनिस्टनका[3] यह अभिमत रहा है कि प्राचीन भारतीय सदा परलोकके ध्यानमे ही निमग्न रहा करते थ और उन्हे इहलोककी कोई चिन्ता न रहती थी। यही कारण है कि उन्होने इतिहासकी आर ध्यान ही न दिया। अवश्य ही यह धारणा उस समय तक अल्पाधिक अशमे मान्य थी जब तक सस्कृत साहित्यकी छानबीन और प्राचीन एतिहासिक स्थानोका अनुसन्धान तथा उत्खनन नही हुआ था। किन्तु ऐतिहासिक साधनो और सामग्रियोके अनुसन्धान एव आविष्कारके पश्चात् प्राचीन भारतीय इतिहासके अधकारमय अतीतपर सर्वथा नवीन प्रकाश पडा है। सौभाग्यसे गुजरातके सोलकी महाराजाधिराज कुमारपालके इतिहास निर्माणके लिए पर्याप्त ऐतिहासिक सामग्रिया उपलब्ध है। इन एतिहासिक सामग्रियोमें सस्कृत तथा प्राकृत साहित्यिक, ऐतिहासिक और अर्ध-ऐतिहासिक ग्रन्थ है। इनके अतिरिक्त अनक शिलालेख, ताम्र-

---

[1]मैक्समूलर : प्राचीन सस्कृत साहित्यका इतिहास : पृष्ठ ९।

[2]डाक्टर फ्लीट : इम्पीरियल गजेटियर आव इडिया : द्वितीय खड, पृष्ठ ३।

[3]एलफिनिस्टन : भारतवर्षका इतिहास : नवीन सस्करण : पृष्ठ १२।

पत्र, मुद्राएं तथा विदेशी यात्रियोंके एसे विवरण भी हैं, जो कुमारपाल तथा उसके समकालीन इतिहासका स्पष्ट चित्र हमारे समक्ष उपस्थित करते हैं। तत्कालीन स्मारक तथा भवन जिनके अवशेष अब तक प्राप्य हैं, कुमारपालके इतिहास निर्माणमें पर्याप्त सहायता प्रदान करते हैं।

संस्कृत तथा प्राकृत साहित्य

(१) **प्राकृत द्व्याश्रय काव्य (कुमारपाल चरित)** : यह कुमारपालके धर्मगुरु हेमचन्द्र द्वारा लिखित है। इसका नाम द्व्याश्रय इसलिए पड़ा कि ग्रन्थकर्त्ताका उक्त काव्य प्रणयनमें दो लक्ष्य था। प्रथम तो संस्कृत व्याकरणके स्वरूपका प्रशिक्षण और दूसरा सिद्धराजके वंशका यशोवर्णन। कुमारपालचरित वास्तविक अर्थमें पूर्ण काव्य नहीं अपितु सम्पूर्ण काव्यका एक भाग है। इसके अतिरिक्त बहुतसी कविताएं हैं, जिनमें द्व्याश्रय महाकाव्य सम्पूर्ण हुआ है। इस काव्यके प्रथम सात सर्गोंमें कुमारपाल तथा अणहिलपुरके राजकुमारोंका वर्णन है। इस महाकाव्यके अट्ठाइस सर्गोंमें प्रथम बीस संस्कृतमें हैं तथा अन्तिम आठ प्राकृतमें। काव्यके प्रारम्भमें राजधानी पाटनका वर्णन है और कुमारपालके सिंहासनारूढ़ होनेके साथही उसके राज दरबारमें विभिन्न प्रान्तोंके प्रशासकोंके प्रतिनिधियोंके उपस्थित होनेका भी विवरण है। प्रथम पांच तथा षष्ठ सर्गके कुछ भागमें अणहिलपुर, महाराजकी विशाल सम्पत्ति तथा राजकीय जिन मन्दिरोंके वैभवका विशद वर्णन है। चौलुक्य शासक इन मन्दिरोंमें प्रतिष्ठित मूर्तियोंकी किस श्रद्धा तथा उदार भावनासे युक्त हो अर्चना करते थे, इन सर्गोंमें उसका भी उल्लेख है। चौलुक्य नरेशोंके उपवनों तथा वप पर्यन्त राजा और प्रजाके आमोद प्रमोदोंका भी उक्त सर्गोंमें हृदयग्राही वर्णन मिलता है। षष्ठ सर्गके उत्तरार्धमें कुमारपालकी सेना तथा कोंकण नरेश मल्लिकार्जुनके मध्य हुए युद्धका वर्णन है, जिसमें मल्लिकार्जुनकी पराजय तथा अन्त हुआ। इसी सर्गमें कुमारपाल तथा उसके समकालीन नरेशोंके

साथ उसके सम्बन्धका भी सक्षिप्त वर्णन है। दो सर्गोमे नैतिक तथा धार्मिक चिन्तनकी विवेचना है। सप्तम सर्गमें स्वय कुमारपालके मुखसे आध्यात्मिक चर्चा करायी गयी है और अष्ठममें श्रुतदेवी कुमारपालकी प्रार्थनापर उपदेश करती है। हेमचन्द्रका जन्म विक्रम सवत् ११४५ (सन् १०८८-११७२ ईस्वी)म हुआ और निधन विक्रम सवत् १२२९में। हेमचन्द्रका यह ग्रन्थ चौलुक्य नरेश कुमारपालके जीवन सम्बन्धी इतिवृत्त-की प्रामाणिक कृति है। इसम एतिहासिक घटनाओका उल्लेख नही तथापि उसके राजजीवनका रेखाकन करनवे लिए इसमें पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है।[1]

(२) महावीर चरित्र : यह ग्रन्थ भी हेमचन्द्रका लिखा हुआ है। इसम कुमारपालके जीवनकी बहुतसी बातोका विवरण मिलता है। महावीर चरित्रम हेमचन्द्रन कुमारपालकी महत्ताका उल्लेख करते हुए राजा तथा जैन धर्मके भक्त रूपम उसके अनकानव गुणाका वर्णन किया है। कुमारपालके इतिहासको क्रमबद्ध करनेम इस पुस्तकका महत्त्व इसलिए विशेष है कि इसमें वर्णित बातोका पता अन्य किसी साधनसे नही लगता। हेमचन्द्र कुमारपालका समसामयिक था और अपन कालका महापडित, इसलिए उसके कथनापर अविश्वास या सन्देह नही किया जा सकता। यह हेमचन्द्रके जीवनकी अन्तिम कृति है। जैनधर्म स्वीकार कर लेनेके बाद कुमारपालका सक्षिप्त किन्तु सारभूत वर्णन इस ग्रन्थम है।

(३) कुमारपाल प्रतिबोध : प्रसिद्ध जैन साहित्यकार सोमप्रभाचार्य कुमारपाल प्रतिबोधका प्रणेता है। इस ग्रन्थका प्रणयन उसन विक्रम सवत् १२४१ (सन् ११८५)में कुमारपालके निधनके ग्यारह वर्ष उपरान्त किया। इससे स्पष्ट है कि सोमप्रभाचार्य, कुमारपाल तथा उसके गुरु हेमचन्द्रका समकालीन था। कुमारपाल प्रतिबोधकी रचना उसने कवि-

---

[1] मुनि श्री जिनविजयजी · राजर्षि कुमारपाल . पृष्ठ २।

सम्राट श्रीपालके पुत्र कविसिद्धपालके निवासमें रहकर की। इस ग्रन्थमें समय समयपर गुजरातके प्रख्यात चौलुक्यवंशी राजा कुमारपालको हेमचन्द्र द्वारा दी गयी जैन शिक्षाओंका भी वर्णन है। इनमें इस बातका भी उल्लेख मिलता है कि किस प्रकार क्रमशः कुमारपाल उक्त उपदेशोंको ग्रहणकर जैन धर्ममें पूर्णरूपेण दीक्षित हो गया। इस ग्रन्थका नामकरण प्रणताने 'जिनधर्म प्रतिबोध' किया है किन्तु पुस्तकका दूसरा शीर्षक उसने 'कुमारपाल प्रतिबोध' रखा है। यह ग्रन्थ मुख्यतः प्राकृत भाषामें लिखा गया है किन्तु अन्तिम अध्यायमें कतिपय कथाएं संस्कृत भाषामें हैं। इसका कुछ अंश अपभ्रंशमें भी है। इस ग्रन्थके प्रणयनका मुख्य उद्देश्य कुमारपाल आदिका इतिहास लिखना नहीं रहा है अपितु जैनधर्मके उपदेशोंका वर्णन करना रहा है किन्तु उसके साथ ही एतिहासिक व्यक्तित्वों-की कथाएं भी सम्मिलित कर ली गयी हैं। इस सम्बन्धमें सोमप्रभाचार्यका कथन दृष्टव्य है—यद्यपि कुमारपाल तथा हेमाचार्यका जीवनवृत्त अन्य दृष्टिकोणसे अत्यन्त रुचिकर है पर मेरी अभिरुचि केवल जैनधर्मसे सम्बद्ध शिक्षाओंके वर्णन तक ही सीमित रहना चाहती है। क्या वह व्यक्ति, जो विभिन्न सुस्वादुपूर्ण पदार्थोंसे भरे पात्रमेंसे केवल अपनी विशेष रुचिकी ही वस्तुएं ग्रहण करता है दोषी ठहराया जा सकता है?[१] यद्यपि इस ग्रन्थसे बहुत सीमित अंशमें ही एतिहासिक जानकारी प्राप्त होती है तथापि यह स्वीकार करना पड़ेगा कि इसके द्वारा जो कुछ भी ज्ञातव्यता प्राप्त होती है, वह अत्यन्त प्रामाणिक एवं विश्वसनीय है। सोमप्रभाचार्य,

---

[१]जइ वि चरियं इमाणं मणोहरं अत्थि बहुयमन्नं पि
तह वि जिणधम्म पडिबोह बंधुरं किं पि जंपेमि
बहु भक्ख जुयाइ वि रसवईऐ मज्झाओ किंचि भुंजतो
निय इच्छा—अणुरूवं पुरिसोकिं होइवयणिज्जो
—कुमारपाल प्रतिबोध पृ० ३, श्लोक ३०-३१।

कुमारपालका केवल समकालीन ही न था अपितु उसके व्यक्तिगत जीवन-का भी विशेष ज्ञाता था। इस विचारसे 'कुमारपाल प्रतिबोध'का कुछ कम महत्त्व नही। इसमे लगभग बारह हजार श्लोक है किन्तु ऐतिहासिक सामग्री मुख्यत २००-२५० श्लोकोमे ही मिलती है।

(४) प्रबन्ध चिन्तामणि : प्रबन्ध चिन्तामणिका रचयिता प्रख्यात जैन पडित मेरुतुग है। इस ग्रन्थमे विभिन्न ऐतिहासिक व्यक्तियोपर प्रबन्ध है। सम्पूर्ण पुस्तक पाच प्रकाशोमें विभक्त है। सर्वप्रथम विक्रम प्रबन्धमें सातवाहन शिलावर्त भोजराज, वनराज, मूलराज तथा मुजराज सम्बन्धी प्रबन्ध है। द्वितीय प्रकाशमें भोज भीम प्रबन्धका वर्णन है, तृतीयमे सिद्धराज प्रबन्ध है और चतुर्थमे कुमारपाल प्रबन्ध है, जिसमे वस्तुपाल तेजपाल प्रबन्ध भी सम्मिलित है। अन्तिम पचम प्रकाशमें प्रकीर्ण प्रबन्ध है। मेरुतुगसे कुमारपालके प्रारम्भिक जीवन, राज्यारोहण, चौहानो और अन्य राजाओसे युद्ध, उसके जैनधर्ममे दीक्षित होने आदि विषयकी बहुतसी महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। वस्तुत प्रबन्ध चिन्तामणि उन महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक साधनोमे एक है जिनकी सहायतासे चौलुक्योका इतिहास प्रामाणिक आधारपर प्रस्तुत किया जा सकता है। विक्रम सवत् १३६१ (१३०५ ईस्वी)की वैशाखी पूर्णिमाको यह ग्रन्थ वर्द्धमानपुर (आधुनिक वडवान)में सम्पूर्ण हुआ।[1] इसी नामका एक ग्रन्थ अथवा सम्भवत उक्त ग्रन्थका ही प्रारम्भ श्री गुणचन्द्र आचार्य "पडितोंके मस्तिष्क" द्वारा हुआ था। मेरुतुगने इस सम्बन्धमे स्वय लिखा है कि प्राचीन गाथाओंके श्रवणसे ही सन्तोष नही होना इसीलिए मैने अपनी पुस्तक प्रबन्ध-चिन्तामणिमें हालके प्रख्यात राजाओका विस्तृत वृत लिखा है। मेरुतुगने यह भी लिखा है 'उक्त लेखनमे यद्यपि पाटित्यमे तो नही तथापि परिश्रमसे कार्य किया गया है।'

---

[1]रासमाला, १३ अध्याय पृष्ठ ३२९।

(५) थेरावली थरावली यह महत्त्वपूर्ण रचना है जिसमें चौलुक्य नरेशोंकी नामावलीके अतिरिक्त उनकी तिथि तथा शासन अवधिके विवरण भी हैं। इस ग्रंथके प्रणेता भी जैन पडित मरुतुग ही हैं। इस कृतिमें मुख्यत सस्कृत भापाम वशावली है तथा उत्तराधिकारियोंकी नामावली है। यद्यपि प्रबध चिन्तामणि एतिहासिक ग्रथ है और थरावली नरेशों और उनके समयकी सूची मात्र है तथापि यह अधिक प्रामाणिक मानी जाती है।[1]

(६) प्रभावकचरित्र इसका प्रणयन श्री प्रभाचद्राचाय द्वारा हुआ। य जन पडित थ और इसकी गणना भी जैन ग्रथोंम है। यह कृति द्वादश अध्यायोंम है। इसके अन्तिम अध्याय 'हेमचन्द्रसूरी चरितम्' में चौलुक्य नरेश कुमारपालका इतिहास है। इस अध्यायसे कुमारपालके प्रारम्भिक जीवन, उसका विभिन्न देशोंम पयटन, राज्यारोहण, सैनिक अभियान तथा विजयके प्रसगोंका सुस्पष्ट वणन प्राप्त होता है।

(७) पुरातन प्रबध सग्रह यह रचना प्रबध चिन्तामणिका अवशिष्ट अश है। इसके अनेक प्रबध, प्रबन्धचिन्तामणिके समान ही हैं। सक्षेप में कहा जा सकता है कि इस कृतिम प्रबधचिन्तामणिसे सम्बध अथवा उसीके समान मिलते जुलते बहुत प्राचीन प्रबधोंका सग्रह है। इस सग्रहमें विभिन्न व्यक्तित्वोंपर कुल मिलाकर ६० प्रबध हैं, इनमेंसे अनेक प्रबध कुमारपालके इतिहासपर भी बहुत प्रकाश डालते हैं।

(८) मोहराजपराजय यह पाच अकोंका नाटक है और इसके रचयिता हैं श्रीयशपाल। इसम गुजर नरेश कुमारपालके हेमचद्र द्वारा जैनधमम दीक्षित होने पशुहिंसापर प्रतिबध लगाने तथा नि सन्तान मरनेवालोंकी सम्पत्ति हस्तगत कर लेनेकी राज्य प्रथाको उठा देनेका वणन है। यह रूपक है। विषय तथा वणनके विचारसे यह मध्यकालीन

[1] रासमाला परिशिष्ट, पृष्ठ ४४२।

हैं। प्रथम सर्गमें चालुक्योंकी उत्पत्तिका विवरण है और कविने बताया है कि वे किस प्रकार अयोध्यासे दक्षिण दिशाकी ओर गये।

कुमारपाल प्रबन्धके रचयिता जिन मदनाग्निने कुमारपाल प्रतिबोधके अनेक ऐतिहासिक उद्धरण लिये हैं। जयसिंह सूरिने कुमारपाल प्रतिबोध-की रचना शैलीका रचना सादृश्य अपने कुमारपाल चरित्रम किया है। इसी प्रकार अन्य ग्रन्थोंसे भी कुमारपालके इतिहासकी रूपरेखाके निर्माणमें सहायता मिलती है।

उत्कीर्ण लेख

आधुनिक इतिहासज्ञ उत्कीर्ण लेखोंको किसी ऐतिहासिक कालके प्रामाणिक विवरणके लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं। सौभाग्यसे कुमारपालके समयके एक दो नहीं, बाइस उत्कीर्ण लेख मिलते हैं। इनसे कुमारपालके इतिहासकी बहुतसी बातोंका पता चलता है। इन उत्कीर्ण लेखोंमेंसे कुछ उसके अधीनस्थोंके आदेश हैं, कतिपयमें राजकीय आज्ञाकी घोषणाएं हैं तथा अन्य दान लेख हैं।

(१) **मगरोल शिलालेख** (विक्रम संवत् १२०२ या सन् ११४५)—यह शिलालेख दक्षिणी काठियावाड, जूनागढके अन्तर्गत मगरोलके गदिस द्वारके निकट एक वापी (कूप)के श्याम प्रस्तरमें उत्कीर्ण है। यह शिलालेख पचीस पंक्तियोंका है और इसमें गुर्जर नरेश कुमारपालकी प्रशस्ति है। इसमें गुहिलवंशके सौराष्ट्र नायक नूलक द्वारा सहजीगेश्वरके मन्दिरका निर्माण तथा दानका विवरण अंकित है।[1]

(२) **दोहाद शिलालेख** (विक्रम संवत् १२०२ या सन् ११४५)—यह गोद्राहकके महामंडलेश्वर नयनदेवके समयका है। इसमें महा-मंडलेश्वरकी असीम कृपा द्वारा राजा शंकरसिंहके उत्कर्षका उल्लेख

---

[1]भावनगर इन्सक्रिपशन्स, पृष्ठ १५२-६०।

है और जिसने ईश्वराधनके निमित्त तीन हल चलाने योग्य भूमि का दान किया।[1]

(३) किराडू शिलालेख (वि० सं० १२०५)—किराडू जोधपुर राज्य, आधुनिक राजस्थानमें स्थित है। यह शिलालेख किराडू परमार सोमेश्वरके समयका है जो कुमारपालके अधीनस्थ था।[2]

(४) चित्तौरगढ़ शिलालेख (वि० सं० १२०७)—यह लेख चित्तौर स्थित नोक्लजी मन्दिरमें उत्कीर्ण है। इसमें कुमारपालके चित्रकीर्ति (चित्तौर) आगमन तथा समीद्धेश्वर मन्दिरमें भेंट चढानेका उल्लेख भी है।[3]

(५) आबू पर्वत शिलालेख—यह महामडलेश्वर यशोधवलके समयका है।[4]

(६) चित्तौरका प्रस्तर लेख—इस प्रकीर्ण लेखमें मूलराजसे कुमारपाल तककी वशावलीका विवरण है। इसमें कहा गया है वह चौलुक्य वशमें उत्पन्न हुआ, जिस वशका उदय ब्रह्माके हस्तसे हुआ बताया गया है। इसके पश्चात् इसमें मूलराजसे जयसिंह तककी वशावली दी गयी है। उसके अनन्तर त्रिभुवनपालका पुत्र कुमारपाल हुआ।[5]

(७) वडनगर प्रशस्ति (वि० सं० १२०८)—गुजरातके वडनगरमे सामेत तालावके निकट अर्जुनवाडीमें एक प्रस्तर खडपर यह लेख उत्कीर्ण है। इसमें चौलुक्योंकी उत्पत्तिका विवरण है तथा कुमारपाल तककी

---

[1]इडि० एंटी०, खड १०, पृष्ठ १५९।

[2]इंडि० एटी०, खंड १०, पृष्ठ १५९।

[3]सूची, क्रम संख्या २७४।

[4]इंडि० एंटी०, खंड २, पृ० ४२१-२४।

[5]सूची, क्रम संख्या २८०।

वंशावली अंकित है। १९ २० श्लोक नागर अथवा आनंदपुर[1] में प्राचीन ब्राह्मण बस्तीकी प्रशंसा में है। उसी प्रसंगमें इस बातका भी उल्लेख मिलता है कि कुमारपालने अपने शासनमें उक्त प्राचीन ऐतिहासिक क्षेत्रके चतुर्दिक् घेरा बनवाया था। ३०वें श्लोकमें प्रशस्तिकार श्रीपालका नामोल्लेख है जिससे सिद्धराजने अपना भ्रातृत्व सम्बन्ध स्वीकार किया था और जिसकी उपाधि कवि चक्रवर्तीकी थी।[2]

(८) पाली शिलालेख (वि० सं० १२०९)—यह जोधपुर राज्यके पाली नामक स्थानमें सोमनाथ मन्दिर सभामंडपमें अंकित है। यह लेख कुमारपालके समयका है।[3] इस शिलालेखमें कुमारपालका, शाकम्भरी धीशके विजेता रूपमें उल्लेख है। प्रधान मंत्री महादेवका नाम भी इसमें अंकित है तथा लेखकी छठी पंक्तिमें इस बातका स्पष्ट उल्लेख है कि चामुंड राज पल्लिका विषयमें शासन कर रहे थे।

(९) किराडू शिलालेख (वि० सं० १२०९)—यह लेख कुमारपालके समयका है। इसमें शिवरात्रि आदि पर्वोंपर पशुओंकी हिंसा करनेका निषेधाज्ञा है।[4] इसमें कहा गया है कि राज परिवारके सदस्य द्रव्य दंड देकर ही पशु हिंसा कर सकते थे और अन्य लोगोंके लिए तो इस अपराधके लिए प्राणदंडकी व्यवस्था थी।

---

[1]आधुनिक वडनगर (विदधनगर) बडौदा राज्यके काडी जिलेके केरल सब डिविजनमें है। इस स्थानकी प्राचीनताके लिए देखिये इंडि० एंटी० खंड १, पृ० २९५।

[2]इंडि० एंटी० खंड १ पृ० २९३ ३०५ तथा आई० ए० खंड १०, पृ० १६०।

[3]ए० एस० आई० डब्लू० सी०, पृ० ४४ ४५ १९०७ ८, इंडि० एंटी० खंड ११, पृ० ७०।

[4]इंडि० एंटी०, खंड ११, पृ० ४४।

(१०) रतनपुर प्रस्तर लेख—जोधपुरके रतनपुरके बाहरी क्षेत्रमें एक प्राचीन शिव मन्दिरके मंडपमें उक्त लेख उत्कीर्ण है। यह कुमारपालके शासनकालका है। इसमें गिरिजादेवीकी, वह आज्ञा घोषित की गयी है जिसमें कहा गया है कि निश्चित विशेष तिथियोंको पशुओंका वध करना निषिद्ध है।[1]

(११) भटुंड प्रस्तर लेख (वि० सं० १२१०)—यह जोधपुर राज्यके भटुंड नामक स्थानके ध्वसावशेष मन्दिरमें है। शिलालेख उक्त मन्दिरके सभामंडपके एक स्तम्भमें प्रकीर्ण है। लेख कुमारपालके शासन कालमें खुदवाया गया है। इसमें दंडनायक वैजावका भी उल्लेख आया है, जो नाडुल जिलेका कार्याधिकारी था।[2]

(१२) नाडोलका दानपत्र (वि० सं० १२१३)—यह कुमारपालके समयका है। इसका प्राप्ति स्थान जोधपुरके अन्तर्गत देसूर जिलाका नाडोल है। इसमें जैन मन्दिरोंको दान देनेका उल्लेख है। इसमें वहडदेव प्रधान मन्त्री, महामंडलिक प्रतापसिंह तथा वदारीके चुंगी गृह (मंडपिका)-का विवरण है।[3]

(१३) बाली शिलालेख (वि० सं० १२१६)—जोधपुर, बालीके बहुगुण मन्दिरके द्वारके सिरेपर यह शिलालेख उत्कीर्ण है। इसमें कुमारपालके शासनकालमें प्रदत्त भूमिके दानका उल्लेख है। इस लेखमें नाडुलके दंडनायक तथा वल्लभी (आधुनिक बाली)के जागीरदार अनुपमेश्वरका नाम अंकित है।[4]

(१४) किराडू शिलालेख (वि० सं० १२१८)—जोधपुर राज्यके

[1] इंडि० एंटी०, खंड २०, परिशिष्ट, पृ० २०९।

[2] ए० एस० आई० डब्लू० सी०, १९०८, पृ० ५१-५२।

[3] इंडि० एंटी, खंड, ४१, पृ० २०२-२०३।

[4] ए० एस० आई० डब्लू० सी०, १९०७-१९०८, पृ० ५४-५५।

किराडू स्थित एक शिवमन्दिरमें यह लेख अंकित है। इसका समय कुमारपालका शासनकाल ही है। इसमें कुमारपालके अधीनस्थ किराडू परमार सोमेश्वरका उल्लेख है।[1]

(१५) उदयपुर प्रस्तर लेख—यह ग्वालियर राज्यमें है। ग्वालियरके अन्तर्गत उदयपुरके विशाल उदयश्वर मन्दिरके प्रवेश स्थलपर ही यह लेख उत्कीर्ण है। यह कुमारपालके समयका है और इसे उसके एक अधीनस्थ अधिकारीने उत्कीर्ण कराया था। इसकी तिथि, लेखमें सुस्पष्ट नहीं है।[2]

(१६) उदयपुर प्रस्तर स्तम्भ लेख (वि० स० १२२२)—यह उक्त मन्दिरके एक प्रस्तर स्तम्भमें उत्कीर्ण है। इसमें ठाकुर चाहड द्वारा इसी मन्दिरको प्रदत्त भ्रह्मगिरिके अन्तर्गत सामगावताके आधे गाव दान-स्वरूप देनेका उल्लेख है।[3]

(१७) जालौर प्रस्तर शिलालेख (वि० स० १२२१)—जोधपुर राज्यके अन्तर्गत जालौर नामक स्थानमें एक मस्जिदके दूसरे खडके द्वारके ऊपर यह लेख उत्कीर्ण है। इस मस्जिदका उपयोग बादमें तोपखानेके रूपमें होता रहा है। इसमें कुमारपाल द्वारा निर्मित प्रसिद्ध जैन मन्दिर कुमार विहारके निर्माणका विवरण है। पार्श्वनाथका यह प्रसिद्ध जैन विहार जवालीपुर (जालौर)के कचनगिरि किलेपर बना हुआ है। इस विवरणके अतिरिक्त इसमें यह भी लिखा है कि कुमारपाल, प्रभु हेमसूरि द्वारा दीक्षित हुआ।[4]

(१८) गिरिनार शिलालेख (वि० स० १२२२-२३)—यह शिलालेख कुमारपालके समयका है।[5]

---

[1] ई० इडि०, खड २०, परिशिष्ट, पृ० ४७।
[2] इडि० एटी०, खड १७, पृ० ३४१।
[3] इडि० एटी०, खड १७, पृ० ३४१।
[4] इडि० एटी०, खड ११, पृ० ५४ ५५।
[5] आर० एल० ए० आर० बी० पी०, ३५९।

(१९) जूनागढ़ शिलालेख (वल्लभी सवत् ८५० (?) सिंह ६०)—यह जूनागढके भूतनाथ मन्दिरमें उत्कीर्ण है। यह लेख कुमारपालके समयका है। इसमें अनहिलपालवपुरके[1] धवलकी पत्नी द्वारा दो मन्दिरोंके निर्माणके विवरण है। दडनायक गुमदेवका नामोल्लेख भी इसमें आया है।

(२०) नवलाई प्रस्तर लेख (वि० स० १२२८)—यह शिलालेख जोधपुर राज्यके नदलाई नामक स्थानके दक्षिण-पश्चिम एक महादेवके मन्दिरमे मिला है। यह भी कुमारपालके समयका है।[2]

(२१) प्रभासपाटन शिलालेख (वल्लभी सवत् ८५०)—यह शिलालेख प्रभासपाटन अथवा सोमनाथपाटनमे भद्रकाली मन्दिरके निकट एक प्रस्तर-पर उत्कीर्ण है। इसके अवनका समय कुमारपालका शासनकाल है। इसमें कुमारपाल द्वारा सोमनाथ मन्दिरके पुर्ननिर्माणका विवरण है।[3]

(२२) गाला शिलालेख—काठियावाडके धारगधारा राज्यके गाला नामक ग्राममें एक देवीके ध्वस्त मन्दिरके प्रवेशद्वारपर यह शिलालेख खुदा हुआ है। यह गुर्जरनरेश कुमारपालके कालका है। इसमें प्रधान मन्त्री महादेवके अतिरिक्त राज्यके अनेक अधिकारियोका भी नामोल्लेख है।[4]

स्मारक

कुमारपाल जैनधर्ममे दीक्षित हो गया था और जैनधर्मके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करनेके निमित्त उसने विभिन्न स्थानोंमें जैन मन्दिरोका निर्माण कराना प्रारम्भ किया। सर्वप्रथम उसने पाटनमें अपने मन्त्री वहडके

---

[1]पी० ओ० खंड १, १९३६-३७, द्वितीय खंड, पृ० ३९।

[2]इडि० एंटी०, खंड ११, पृ० ४७-४८।

[3]बो० पी० एस० आई०, १८६, सूची क्रम संख्या १३८०।

[4]पी० ओ० खड १, पार्ट २, पृ० ४०।

निरीक्षणमें कुमारविहार नामक मन्दिर बनवाया। इस विहारके मुख्य मन्दिरमें उसने श्वेत सगमरमरकी पार्श्वनाथकी विशाल मूर्तिकी प्रतिष्ठा करायी। इसके पार्श्वके चौविस मन्दिरोंमे उसने चौविस तीर्थंकरोंकी सुवर्ण, रजत तथा पीतलकी मूर्तिया स्थापित करायी।

इसके पश्चात् कुमारपालने त्रिभुवनविहार' नामक और भी विशाल तथा उच्चशिखरोंसे युक्त जैन मन्दिरका निर्माण कराया। इसके चतुर्दिक विभिन्न तीर्थंकरोंके लिए बहत्तर मन्दिर बन थे। इन मन्दिरोंके विभिन्न विशेष भाग सुवर्णके बन हुए थ। मुख्य मन्दिरमे तीर्थंकर नेमिनाथकी विराट तथा भव्यमूर्ति बनी थी तथा अन्य उपमन्दिरोंमे विभिन्न तीर्थंकरोंकी मूर्तिया स्थापित थी।

इनके अतिरिक्त कुमारपालने केवल पाटनमे ही चौविस तीर्थंकरोंके लिए चौविस जैनमन्दिर बनवाये, जिनमे त्रिविहारका मन्दिर प्रसिद्ध था। पाटनके बाहर राज्यके विभिन्न स्थानोंमें उसने इतने अधिक जैन मन्दिरोंका निर्माण कराया कि उनकी निश्चित सख्याका अनुमान करना भी कठिन है। इनमसे जसदेव पुत्र सुबेदार अभयके निरीक्षणमें तरग पहाडीपर बना अजितनाथका विशाल मन्दिर उल्लेख्य है। यद्यपि आज ये स्मारक अपने पूर्व रूपमें अवस्थित नही, तथापि ध्वसावशेष भी अपने समयके जीते जागते अवशष हैं तथा कुमारपालके इतिहास निर्माणमें बहुत सहायक है।

मुद्राए

सिक्कोका जहा तक सम्बन्ध है, पूर्व-मध्यकाल तथा उत्तरार्ध मध्यकाल दोनोंमे ही कुछ विचित्र स्थिति है। यह आश्चर्यकी बात है कि वल्लभीके मैत्रिकोंके अतिरिक्त किसी वशकी मुद्राए गुजरातमे नही प्राप्त होती।

'प्रो० ओ०, खड १, भाग २, पृ० ४०।

जो प्राप्त हुई है वे भी गिनतीकी है। ये मुद्राए ब्रिटिश म्युजियमम रही हैं। इनम कोई स्वरूप साम्य नही हैं। इसके एक ओर वृषभका आकार बना हुआ है। यह और भी आश्चर्यकी बात है कि अनहिलवाडके चौलुक्यो-की कोई मुद्राए नही प्राप्त होती हैं। गुजरात तथा पाटनके लोग इस बातका गम्भीरतासे अनुभव ही नही करते।[1] पुरातत्ववेत्ता श्री एच० डी० सनकालिया जब अपने अनुसन्धानके दौरेपर गये थे और जब उन्होने पाटनके लोगोंसे चौलुक्योंके सिक्कोंके सम्बन्धमें प्रश्न किया तो लोग आश्चर्य करते थे।[2] कई वर्ष पहले सहस्रलिंग तालावके निकट, नगरकी सीमाओंके बाहर जब एक सडकका निर्माण हो रहा था तो सागर अप्सराके श्री मुनि पुण्य विजयजीको कुछ मुद्राओंका पता लगा था। दुर्भाग्यवश किसी मुद्रा विशेषज्ञको ये सिक्के नही दिखाये गये और बादमें उनका कोई पता न चला।[3] चौलुक्योने अवश्य ही मुद्राए अंकित करायी होंगी तथा उनका पर्याप्त प्रचलन होगा, इस तथ्यके समर्थनमें उत्तरप्रदेशसे प्राप्त एक सुवर्ण मुद्रासे यह धारणा और भी पुष्ट हो जाती है। उत्तरप्रदेशमें मिली उक्त सुवर्ण मुद्रा सिद्धराज जयसिंहकी बतायी जाती है।[4] इतने सुसम्पन्न कालम चौलुक्योंने अपनी मुद्राए न प्रचलित की होंगी, ऐसा स्वीकार करना समुचित नही प्रतीत होता है। इसलिए इस धारणाको बल मिलता है कि यदि उचित रूपसे उत्खन तथा अनुसन्धानका कार्य किया जाय—विशेषकर सहस्रलिंग तालावके निकट तो मुद्राओंके अतिरिक्त चौलुक्य-कालीन अन्य बहुतसी सामग्री भी प्रकाशम आवेगी।

---

[1] आर्कलाजी आव गुजरात, अध्याय ८, पृ० १९०।

[2] आर्कलाजी आव गुजरात, अध्याय ८, पृ० १९०।

[3] वही।

[4] *जे० आर० ए० एस० बी, लेटर्स, ३, १९३७, न० २, आर्टि-किल।*

विदेशी इतिहासकारोंके विवरण

चौलुक्य उस कालमें शासन कर रहे थे, जब मुसलिम भारतके पश्चिमोत्तर भागपर आक्रमण कर विजय प्राप्त कर रहे थे। कुमारपालके पहले चौलुक्यों और मुसलिमोंमें संघर्ष[1] हुआ था तथा कुमारपालके बाद भीम द्वितीयके शासनकालमें मुसलिमोंसे प्रत्यक्ष संघर्ष हुआ। कालान्तरमें अन्ततोगत्वा मुसलिमोंने चौलुक्योंको पराजित कर दिया। अनहिलवाडेमें स्थापित कुतुबुद्दीनका मुसलिम सेनागार या तो हटा लिया गया था अथवा उसका पददलन हो गया था। प्रसिद्ध मुसलिम इतिहासकार फरिश्ता लिखता है कि भीमदेवकी मृत्युके पचास वर्ष बाद तत्कालीन दिल्लीके शासकको उसकी परामर्शदात्री परिषद्ने यह सलाह दी कि कुतुबुद्दीन द्वारा विजित गुजरातके प्रदेश, जो अब स्वतन्त्र हो गये थे उन्हें पुनः अधीन किया जाय। परिषद्ने गुजरात तथा मालवा सेना भेजनेका परामर्श दिया था।

अलाउद्दीनके सैनिक अभियानके पहले तेरहवीं शताब्दीके अन्तके पूर्व तक अनहिलवाड़ा मुसलिमोंके अधीन न हुआ। मुसलिम विवरणोंमें भी चौलुक्योंका उल्लेख बहुत मिलता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि एक मुसलिम लेखकने कुमारपालको गुरुपाल[2] सम्बोधित किया है। अबुलफजलने भी लिखा है कि जयसिंहकी मृत्यु[3] तक कुमारपाल सोलंकी निर्वासनमें रहता था। इसीप्रकार जियाउद्दीन बरानीकी तारीख-ए-फिरोजशाही[4] निजामुद्दीनकी तबकाते-ए-अकबरी,[5] तारीख-ए-

---

[1] युद्धके १४ वर्ष पूर्व चामुंडराजकी सन् १०१०में मृत्यु हुई जब मुसलिम आक्रमण हुआ तो भीम शासनारूढ़ था।

[2] फोर्वस : रासमाला।

[3] आइने-अकबरी, खंड २, पृ० २६३।

[4] इलिएट, खंड ३, पृ० ९३।

[5] विबलिओथिका इनडिका : बी०के० कृत अनुवाद, १९१३।

फरिश्ता,[1] आइने-अकबरी,[2] तबकाते-नसीरी तथा मीराती-अहमदीसे चौलुक्य कुमारपालके समय तथा इतिहासका बहुत कुछ विवरण प्राप्त होता है।

विभिन्न सामग्रियो पर एक दृष्टि

इन प्रभूत साहित्यिक रचनाओ, शिलालेखो, स्मारको तथा अन्य प्राप्त साधनोकी सहायतासे चौलुक्यनरेश कुमारपालके इतिहासको प्रामाणिक और विधिवत ऐतिहासिक पद्धतिपर लिखा जा सकता है। साहित्यिक एव अर्ध-ऐतिहासिक ग्रन्थोसे कुमारपालके प्रारम्भिक जीवन, उसके सिहासनारूढ होने, चौहानो, परमारो तथा अन्य शक्तियोसे युद्ध, उसके जैनधर्ममें दीक्षित होने तथा अन्तमें उसके निधनका विवरण मिलता है। इन साहित्यिक साधनोंसे देशकी तत्कालीन आर्थिक तथा सामाजिक स्थितिपर भी पूर्ण प्रकाश पडता है। वस्तुत तत्कालीन साहित्यमें उल्लिखित एव चित्रित एतिहासिक तथ्य कुमारपालके इतिहासके अत्यन्त महत्त्वपूर्ण साधनोमें प्रमुख है।

इनके बाद कुमारपालके समयके विभिन्न शिलालेखो, प्रकीर्ण लेखो, तथा ताम्रपत्रोसे उसकालके शासन प्रबन्ध तथा देशकी विभिन्न परिस्थितियोका परिचय मिलता है। तत्कालीन साहित्यिक रचनाओमें भले ही अर्ध ऐतिहासिक तथ्य अकित हो, क्योकि उनमें कही-कही वास्तविक सत्यके साथ साथ कवित्वपूर्ण प्रशस्तिया भी रहती है किन्तु प्रकीर्ण लेखोके सम्बन्धमें ऐसी बात नही कही जा सकती। अधिकाश शिलालेख राजाज्ञाके रूपमें है अथवा उनमे राजकीय घोषणाए है। इनमसे कुछमें जैन मन्दिरोको दान देनेका भी उल्लेख है। शिलालेखोंसे बहुतसी महत्त्वपूर्ण बातोका पता लगता है। इन प्रकीर्ण लेखोंसे अनेक प्रशासकीय इकाइयोंके साथ ही विभिन्न राज्याधिकारियोंके नाम भी विदित होते है। कुमारपालने जिन अनेक युद्धोमें भाग लिया था उनके विवरण भी, इन्हीसे प्राप्त होते

---

[1] ब्रिग्स द्वारा अनूदित, खड १।

[2] ब्लोयमन जेरट, खड २।

है। वास्तवमें कुमारपाल और उसके समयके इतिहासकी प्रामाणिक रूपरेखा प्रस्तुत करनेमें उसके शिलालेख ही प्रधान रूपसे सहायक हैं।

कुमारपाल महान निर्माता था। जैनधर्ममें दीक्षित होनेके परिणाम-स्वरूप उसने अनेक विशाल तथा भव्य विहार एवं जैन मन्दिरोंका निर्माण कराया। यद्यपि आज ये समस्त स्मारक अपने पूर्वरूपमें विद्यमान नहीं तथापि उनके ध्वंसावशेष अब भी तत्कालीन इतिहासकी गौरव-गाथा मौन भाषामें कहते हैं। इन स्मारकोंमें कुछके ध्वस हैं, कुछके अल्प अवशेष और बहुत कुछ तो काल कवलित हो गये हैं। इनका क्षेत्र मुख्य रूपसे पाटन तथा गुजरातके विभिन्न स्थानमें विस्तीर्ण है। दुर्भाग्यसे चौलुक्यों-की मुद्राएं नहीं मिलतीं। उत्तरप्रदेशमें एक स्वर्ण मुद्रा मिली है जिसे सिद्धराज जयसिंहकी कहा जाता है। वस्तुतः यह अत्यन्त आश्चर्यकी बात है कि व्यापार एवं व्यवसायके ऐसे समुन्नत साम्राज्यके विधायकोंने अपने समयमें मुद्राएं प्रचलित न की हों। ऐसा कोई कारण नहीं जिससे इस समय सिक्कोंके प्रचलनके सम्बन्धमें सन्देह किया जा सके। सिक्कोंके सर्वथा अभाव एवं अप्राप्यताके लिए ऐतिहासिक घटनाएं उत्तरदायी हैं। इन दिनों यवनोंके अनेकानेक आक्रमण हुए जिनमें भयंकर लूटपाटकी घटनाएं हुईं। चौलुक्यों-के सिक्कोंकी दुष्प्राप्यताको इस प्रकार अच्छी तरहसे समझा जा सकता है।

कुमारपालके इतिहास निर्माणकी प्राप्य सामग्रियोंके सिंहावलोकनके प्रसंगमें विदेशी इतिहासकारों विशेषतः मुस्लिम इतिहासकारोंके विवरणोंका भी उल्लेख आवश्यक है। मुसलिम इतिहासज्ञोंने तत्कालीन राजनीतिक घटनाओंका तो उल्लेख किया ही है, विभिन्न राजाओं और उनकी तिथियों-के विषयमें भी लिखा है। अनेक मुसलिम इतिहास-लेखकोंने कुमार-पालका उल्लेख करते हुए जिन ऐतिहासिक तथ्योंको लिपिबद्ध किया है, उनकी पुष्टि अन्य ऐतिहासिक सामग्रियोंसे भी होती है। इस प्रकार चौलुक्य कुमारपालके प्रामाणिक इतिहासकी रूपरेखा और स्वरूपअंकनके

वंश की उत्पत्ति और लिपिक्रम

हैं। वास्तवमें कुमारपाल और उसके समयके इतिहासकी प्रामाणिक रूपरेखा प्रस्तुत करनेमें उसके शिलालेख ही प्रधान रूपसे सहायक हैं।

कुमारपाल महान निर्माता था। जैनधर्ममें दीक्षित होनेके परिणाम-स्वरूप उसने अनेक विशाल तथा भव्य विहार एवं जैन मंदिरोंका निर्माण कराया। यद्यपि आज ये समस्त स्मारक अपने पूर्वरूपमें विद्यमान नहीं तथापि उनके ध्वंसावशेष अब भी तत्कालीन इतिहासकी गौरव-गाथा मौन भाषामें कहते हैं। इन स्मारकोंमें कुछके ध्वंस हैं, कुछके अल्प अवशेष और बहुत कुछ तो कालकवलित हो गये हैं। इनका क्षेत्र मुख्य रूपसे पाटन तथा गुजरातके विभिन्न स्थानोंमें विस्तीर्ण है। दुर्भाग्यसे चौलुक्यों-की मुद्राएं नहीं मिलतीं। उत्तरप्रदेशमें एक स्वर्ण मुद्रा मिली है जिसे सिद्धराज जयसिंहकी कहा जाता है। वस्तुतः यह अत्यन्त आश्चर्यकी बात है कि व्यापार एवं व्यवसायके ऐसे समुन्नत साम्राज्यके विधायकोंने अपने समयमें मुद्राएं प्रचलित न की हों। ऐसा कोई कारण नहीं जिससे इस समय सिक्कोंके प्रचलनके सम्बन्धमें सन्देह किया जा सके। सिक्कोंके सर्वथा अभाव एवं अप्राप्यताके लिए ऐतिहासिक घटनाएं उत्तरदायी हैं। इन दिनों यवनोंके अनेकानेक आक्रमण हुए जिनमें भयंकर लूटपाटकी घटनाएं हुई। चौलुक्यों-के सिक्कोंकी दुष्प्राप्यताको इस प्रकार अच्छी तरहसे समझा जा सकता है।

कुमारपालके इतिहास निर्माणकी प्राप्य सामग्रियोंके सिंहावलोकनके प्रसंगमें विदेशी इतिहासकारों विशेषतः मुसलिम इतिहासकारोंके विवरणोंका भी उल्लेख आवश्यक है। मुसलिम इतिहासज्ञोंने तत्कालीन राजनीतिक घटनाओंका तो उल्लेख किया ही है, विभिन्न राजाओं और उनकी तिथियों-के विषयमें भी लिखा है। अनेक मुसलिम इतिहास-लेखकोंने कुमार-पालका उल्लेख करते हुए जिन ऐतिहासिक तथ्योंको लिपिबद्ध किया है, उनकी पुष्टि अन्य ऐतिहासिक सामग्रियोंसे भी होती है। इस प्रकार चौलुक्य कुमारपालके प्रामाणिक इतिहासकी रूपरेखा और स्वरूपअंकनके निमित्त प्रभूत सामग्री उपलब्ध है।

वंश की उत्पत्ति और तिथिक्रम

गुप्त साम्राज्य और पुष्यभूतियोंके पराभव तथा पतनके पश्चात् कोई ऐसा शक्तिसम्पन्न राजवंश न हुआ, जितना व्यापक विस्तार एवं विराट राजनीतिक प्रभुत्व अनहिलवाड़ेके चौलुक्योंका भारतमें हुआ। चौलुक्य शब्द चालुक्यका संस्कृत रूप है। गुजरातमें चौलुक्योंका लोकप्रसिद्ध सम्बोधन *"सोलंकी" अथवा "सोलकी" है। गुजरातके लोकगीतोंमें* अब तक गायक इसका प्रयोग करते रहे हैं। प्राचीन शिलालेखों, ताम्रपत्रों तथा समकालीन साहित्यमें इस वंशका नाम "चौलुक्य", "चालुक्य" अथवा "चुलुक" मिलता है। इसके अतिरिक्त चालुक्का चलुक्य, चालक्य, चलक्य, चौलुक्कि, चौलुक्क तथा चुलुग शब्दोंका प्रयोग भी इस वंशके सम्बोधनके रूपमें हुआ है।

लाट प्रदेशके राजा कीर्तिराज सोलंकीके ताम्रपत्रमें इस वंशका नाम चालुक्य[1] कहा गया है। उसके पौत्र त्रिलोचनपालके ताम्रपत्रमें वंशका नाम चौलुक्य[2] आया है। गुजरातके सोलंकी राजाओंके पुरोहित सोमेश्वरने अपनी कीर्तिकौमुदीमें "चौलुक्य" तथा "चुलुक्य"का प्रयोग किया है।

---

[1]वियना ओरियन्टल जर्नल, खंड ७, पृ० ८८।

[2]इत्यत्र भवेत्क्षत्र सन्ततिर्विनता किल। चौलुक्यात्प्रथिता न ध्या....इंडि० ऐंटी० खंड १२, पृ० २०१।

[3]अय चौलुक्य भूपालपाल यामास तत्पुरम्। कीर्तिकौमुदी २ : १। अणहिलपुरमस्ति स्वतिपालं प्रजानाम्।

हेमचन्द्रने गुजरातके सोलकी शासकोंके लिए चौलुक्य, चुलुक्य, चालुक्य, चुलुक्य तथा चुलुग[1]का व्यवहार किया है। कृष्ण कविने अपनी कृति रत्नमालामें चालुक्य, चुलुक्य, चुलुक, चौलुक्य शब्दोंका प्रयोग सोलकी शासकोंके लिए किया है।[1] पृथ्वीराज रासोमें सोलकी वंशके लिए चालुक्यका व्यवहार किया गया है।[1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि एक ही वंशके लिये विभिन्न लेखों तथा विभिन्न तत्कालीन साहित्यमें भिन्न-भिन्न वंश परिचायक शब्दोंका प्रयोग हुआ है। *इन शब्दोंमें कौन शब्द सोलकी (चौलुक्य) वंशके लिए सर्वथा उपयुक्त* है इसके निर्णय एवं निर्धारणके लिए समकालीन लेखकों, ताम्रपत्रों तथा शिलालेखोंकी प्रभूत सामग्री है। सभीके सम्यक् समालोचनके अनन्तर यह स्पष्ट है कि इस राजवंशके लिए सबसे अधिक तथा सर्वमान्य प्रयोग

अरजिरघुतुल्यै पाल्यमान चुलुक्यै : ३ :

विरजयति वस्तुपालश्चुलुक्य सचिवेषु कविषु च प्रवरः .. :१४:

—आबू स्थित वस्तुपाल तेजपाल मन्दिरमें सोमेश्वर रचित प्रशस्ति।

[1]कुन्तेन सर्वसारेणावधील्लस चुलुक्य राट् .द्वयाश्रय महाकाव्य, सर्ग ५:१२८।

उद्दालिआ दसणाणसिरी चालुक्क सुहडेहिं, सर्ग ६·८४।

जत्य चुलुक्कनि वाण परिमल जम्मो जसो कुसुनदाम १:२२, धवल-गहेय अइनिच्चलाकि दो वच्छओ चुलुगजश दीयओ। सर्ग २:९१।

कुमारपाल चरित।

[1]असो वंश चालुक्यको शुभ रीति, पुनोवंश चापोत्कटाको सप्रीति, रत्नमाला, पृ० २०। चौलुक्य वंश नृप भुवरनाम ——रत्नमाला, पृ० ४३।

[1]मुनि प्रगव्यो चालुक्क। ब्रह्मचारी व्रत धारिय—पृथ्वीराज रासोः आदिपर्व, पृ० ४९।

"चौलुक्य" शब्दका ही हुआ है। हेमचन्द्र, सोमेश्वर, यशपाल तथा अन्य तत्कालीन साहित्यकारोंके अतिरिक्त शिलालेखो और ताम्रपत्रोंमें जो आधुनिक कालमें किसी तथ्य अथवा घटनाकी मान्यताके लिए सर्वोपयुक्त प्रमाण माने जाते है, उक्त शब्दका ही बहुतायतसे प्रयोग हुआ है। यही नही, आठ चौलुक्य ताम्रपत्रोंमें जो चौलुक्योकी वशावली दी हुई है उन सभीमें एक ही शब्द "चौलुक्य"का व्यवहार किया गया है।[1]

उत्पत्तिका अग्निकुल सिद्धान्त

इसमें सन्देह नही कि अन्य भारतीय राजवशोकी अपेक्षा चौलुक्योका अकित तिथिक्रम अत्यधिक विश्वसनीय और प्रामाणिक है। चौलुक्योंकी उत्पत्ति विषयक विभिन्न सिद्धान्त है। इनमेंसे एक अग्निकुल सिद्धान्त है। इसके अनुसार कहा जाता है कि आबू पर्वतपर वशिष्ठ ऋषिने यज्ञ किया और उसकी वेदीसे प्रथम चौलुक्य अथवा चालुक्यकी उत्पत्ति हुई। किन्तु इस सिद्धान्तके समर्थनमें न कोई शिलालेख है और न ताम्रपत्र अथवा कोई ऐतिहासिक इतिवृत्त ही। पश्चिमी सोलकी राजा विक्रमादित्यके शिलालेखमें (विक्रम सवत् ११३३ और ११८३) यह लिखा है कि चालुक्य (सोलकी) वशकी उत्पत्ति चन्द्रवशसे हुई जो ब्रह्माके पुत्र अत्रि द्वारा आविर्भूत हुआ था।[2] यह शिलालेख बम्बई प्रान्तके धारवाड जिलेके गोहाद गाव स्थित वीरनारायण मन्दिरमें मिला है। उक्त सोलकी राजाके दूसरे उत्कीर्ण लेखसे भी उक्त कथनोकी ही पुष्टि होती है।[3] पूर्वीय सोलकी

---

[1]इडि० ऐंटी०, खड ६, पृ० १८१।

[2]ओ स्वस्ति समस्त जगत्प्रसूतेर्भगवतो ब्रह्मण· पुत्रस्यात्रेर्नेत्रिस मुत्पन्नस्य यामिनी कामिनी ललाम भूतस्य सोमस्यान्वये सत्यत्याग शौर्यादि गुण निलयः केवल निज ध्वजिनीजव क्षपित प्रतिपक्ष क्षितीश वंश श्रीमानस्ति चालुक्यवशः। इडि० ऐंटी०, खंड २१, पृ० १६७।

[3]कर्नाटक इन्सक्रि० खड १, पृ० ४१५।

राजा राजराजा प्रथम (वि० स० १०७६-११२०=सन् १०२२ १०६३)के एक ताम्रपत्रम यह लिखा है कि भगवान पुरुषोत्तमके नाभि-कमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए और उन्होंने अनेकानेक राजाओं तथा राजवशोकी उत्पत्ति की। इन राजवंशो और राजाओंने चक्रवर्ती सम्राटोकी भाति अयोध्याम शासन किया। इसी राजवशम राजा विजयादित्य हुआ। वह दक्षिण विजयके लिए गया और उमीके वशमें राजराजा[1] हुआ। इस कथनकी पुष्टि राजराजाके पिता राजा विमलादित्य (वि० स० १०७५=सन् १०१८)के एक ताम्रपत्र[2] द्वारा भी होती है।

चुलुक सिद्धान्त

चौलुक्योकी उत्पत्ति विषयम एक चुलुक सिद्धान्त भी है। कश्मीरी कवि विल्हणन अपने विक्रमाङ्कदेवचरित (वि० स० ११४३=सन् १०८५)म लिखा है कि ब्रह्माके चुलुक से एक वीर पुरुष उत्पन्न हुआ जिसके वशम हरित तथा मानव्य हुए। इन क्षत्रियोंने पहले अयोध्याम शासन किया और तदनन्तर दक्षिण दिशाम एकके बाद दूसरी विजय करते आग बढे।[3] यही सिद्धान्त अल्प परिवर्तनके साथ कुमारपालके

[1] इडि० ऐंटी०, खड १४, पृ० ५० ५५।

[2] इडि० ऐंटी०, खड ६, पृ० ३५१ ५८।

[3] सुधाकर चाधकल क्षपाया सप्रक्ष्य मूर्धानमिवानमन्तम्
तद्बिम्बवाय सरोजिनोना स्मितो मुख पकज वक्लमासीत ३६
ज्ञात्वा विधातुश्चुलुकात्मसूर्ति तेजस्विनोन्यस्य समस्त जतु
प्राणश्वर पकजिनीवधूना पूर्वाचल दुर्गमिवारुरोह ३७
जगाम याकेषु रयागनाम्ना परस्परादशन लेपनत्वम
सा चन्द्रिका चन्दनपककान्ति शीताशुशाणाफलके ममज्ज ३८

समयकी वडनगर प्रशस्ति (वि० सं० १२०८ : सन् ११५१) मे भी व्यक्त किया गया है। इसमे कहा गया है कि देवताओने नम्रतापूर्वक जब राक्षसोंके अपमानोंसे रक्षा करनेकी प्रार्थना ब्रह्मासे की तो उस समय वे सन्ध्यावन्दन करने जा रहे थे। उन्होने अपने "चुलुक"मे गंगाका पवित्र जल लेकर एक वीरकी उत्पत्ति की। उस वीरका नाम चौलुक्य था जिसने तीनों संसारको अपने यश एवं कीर्तिसे पवित्र किया। उससे एक जाति उत्पन्न हुई। इसमें एकसे एक शौर्यवान और वीर्यवान शासक हुए। पतनावस्थामें भी इनका वैभव इनसे विलग नही हुआ। यह जाति अपनी वीरताके कारण प्रख्यात हुई और इसने समस्त संसारके सर्वसाधारणोंको आशीर्वाद दिया।[1]

सोलंकी राजा कुलोतुंगके ताम्रपत्र तथा चोड़देव द्वितीय (वि० सं० १२००=सन् ११४३)के प्रकीर्ण लेखमें यह स्पष्ट लिखा है कि सोलंकी शासक चन्द्रवशी मानव्य गोत्री, तथा हरितके वंशज थे। मानव्य

संध्या समावौ भगवान्स्थितोथ शक्रेण वद्धाञ्जलिना प्रणम्य
..विज्ञापितः शेखर पारिजातद्विरेफनादविगुर्णवं चोभिः :३९:
विक्रमांकदेवचरितः सर्ग १ : ३६-३९।

[1]....नमस्यन्नपि निज चुलुके पुण्यगंगाम्बुपूर्णे।
सद्यो वीरं चुलुक्याह्वयमसृजमिदंयेन कीर्त्तिप्रवाहैः
पूतं त्रैलोक्यमेतन्नियतमनुहंरत्ये हेलो फलं श्री :२:
वंशकोपिततो बभूव विविधाश्चर्यैकलीलास्पद।
यस्यमाद् भुमि भृतोपि वीतगणिताः प्रादुर्भवंत्यन्वहं।
छायां यः प्रथित प्रताप महतीं धे विपन्नोपिसन्।
यो जन्यावधि सर्वदापि जगतो विश्वस्यदत्तेफलं :३:
वडनगर प्रशस्ति : श्लोक २-३, इपि० इंडि० खंड १, पृ० २९६।
[2]गौरीशंकर हीराचन्द ओझा : सोलंकी राजाओंका इतिहास, पृ० ६।

तथा हरित कौन थ यह उक्त ताम्रपत्रम उल्लिखित नही किन्तु पश्चिमी सोलकी राजा जयसिंह द्वितीय (वि० स० १०८२=सन् १०२८)के एक प्रकीर्ण लखम उनका इतिहास दिया हुआ ह। इसम कहा गया ह कि ब्रह्मासे मनु और मनुसे मानव्यका आविर्भाव हुआ। मानव्यके वशज ही मानव्य गोत्रिय कहलाय। मानव्यका पुत्र हरित था और उसका पुत्र पञ्चशिखी हरित हुआ। इसका पुत्र चालुक्य हुआ जिसका वश चालुक्य (सोलकी) वशके नामसे प्रसिद्ध हुआ।[1]

राजा पुरुषोत्तम[2] (वि० स० १३३० १३७५=सन् १२७३ १३१८) के दो उत्कीर्ण लेखोम लिखा है कि सोलकी राजा चन्द्रवशी थ। सोलकी राजराजाके दानपत्रम जहा उसके राज्यारोहणका वणन है (वि० स० १०७९=सन् १०२२) वहा लिखा है कि वह सोमवश तिलक[3] है। कलिंगतुम्भारानी एक तामिल काव्यम सोलकी राजा कुलोतुग चोडदेव प्रथमका एतिहासिक वणन है, उसमें लिखा है कि उसका जन्म चन्द्रवशमें हुआ था।[4] वीर चोडदेवके ताम्रपत्रमें (वि० स० ११४७=सन् १०९०) उसके पितामह राजराजाको सोमकुलभूषण[5] कहा गया है। अभिप्राय यह कि वह चन्द्रवशी राजा था। सोलकी राजा कुलोतुग चोडदेवके सामन्त बुद्धराजके दानपत्र (वि० स० १२२८=सन् ११७१)म चोडदेवके प्रख्यात प्रपितामह कुब्ज विष्णु (कुब्ज विष्णु वधन)को चन्द्रवशी कहा गया है।[6]

---

[1] (1) कर्नाटक इसक्रिपशन खड १, पृ० ४८।
(11) बाम्बे गजटियर खड १, भाग २, पृ० ३३९।

[2] गौरीशकर हीराचन्द ओझा सोलकी राजाओका इतिहास, पृ० ७।

[3] इडि० ऐंटी० खड १९, पृ० ३३८।

[4] इडि० ऐंटी० खड १, पृ० ५४।

[5] इडि० ऐंटी० खड ७, पृ० २६९।

हेमचन्द्रका अभिमत

शिलालेखो, ताम्रपत्रो तथा दानपत्रोंके इन प्रमाणोंके अतिरिक्त समकालीन ऐसे प्रमाण हैं जिनसे बिना किसी सन्देहके कहा जा सकता है कि सोलकी राजा चन्द्रवशी थ। यह पुष्ट प्रमाण हेमचन्द्रका है। अपने द्वयाश्रय काव्यमें उसने सोलकी राजा भीमदेव तथा चेदि नरेश कर्णदेवके दूताका मिलन कराया है। वार्ताके प्रसगम राजा भीमदेवके दूतन पूछा कि महाराज भीमदेव जानना चाहते हैं कि आप (चेदि नरेश कर्णदेव) मेरे मित्र हैं अथवा शत्रु। इस प्रश्नके उत्तरम चेदिराज कर्णदेवन कहा कि राजा भीमदेव अविजेय सोम (चन्द्र) वशके हैं।[1] जिन हर्षगनीके वस्तुपाल चरित (वि० स० १४९७=सन् १४४०)म सोलकीराज भीमदेव चन्द्रवशका भूषण कहा गया है।[2]

इस प्रकार पृथ्वीराजरासोमें वर्णित चौलुक्योकी उत्पत्तिकी अग्निकुल कथा, आधुनिक एतिहासिक विश्लेषणके द्वारा अतिरजित वर्णन तथा प्रशस्तिमात्र स्वीकार की जाती है। गुजरातके इतिहासके कुछ विशपज्ञ तो अग्निकुल उत्पत्तिकी कथाको किसी प्रकार स्वीकार ही नही करते। उनका तो रासोकी एतिहासिकतापर भी सन्देह है।[3] उत्पत्तिकी "चुलुक कथा के सम्बन्धमें यह कहा जाता है कि सस्कृत व्याकरणके अनुसार "चौलुक्य" शब्द 'चुलुक्य' से बना है और इस कारण प्राचीन लेखकोन ब्रह्माके 'चुलुक'से 'चौलुक्य'की उत्पत्तिकी कल्पना सहज ही कर ली होगी। इस विवादास्पद प्रश्नका निणय करनमें जहातक उत्कीर्ण लेखो तथा ताम्रपत्रोके प्रमाण मिलते हैं, यह स्वीकार करना समीचीन होगा कि चौलुक्य प्राचीन कालके चन्द्रवशी क्षत्रिय थ।

---

[1] द्वयाश्रय काव्य सर्ग ९, श्लोक ४०-५९।

[2] हर्षगनी कृत वस्तुपाल चरित्र ९ ७९।

[3] गौरीशकर हीराचन्द ओझा सोलकी राजाओका इतिहास, पृ० १२।

चौलुक्य वंशका मूलस्थान

चौलुक्य वंशके मूलस्थानके विषयमें लोगोंमें बहुत मतभेद है। कुछ विद्वान् इनका मूलस्थान उत्तरभारत बताते हैं, तो कुछ इस मतके हैं कि ये दक्षिणसे आये। श्री टाड[1]का कथन है कि भाटों तथा परम्परासे राजदरबारमें विरुदावली गानेवाले कवियोंकी रचनाओंमें सोलंकियोंको गंगा तटके शुल्के प्रसिद्ध राजकुमारके रूपमें चित्रित किया गया है। यह उस समयकी बात है जब राठौरोंने कन्नौजपर अधिकार नहीं किया था। वंशावली सूचीमें लाकोट जो आधुनिक लाहौर है, उनका स्थान कहा गया है। इसमें ये उसी शाखा (माध्वनी)के कहे गये हैं, जो चौहानोंकी शाखा थी। इतना निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि आठवीं सदीमें लगहस तथा टोगरा मुलतान और उसके निकटवर्ती प्रदेशमें रहते थे। ये भट्टिसोंके शत्रु थे। ये मालाबार तटपर कैलियन (कल्याण)के राजकुमार[3] थे, जिस नगरमें आज भी प्राचीन गौरवके चिह्न विद्यमान हैं। यही कैलियन (कल्याण)से सोलंकी वंशका एक वृक्ष अनहिलवाडा पुतलन (पाटन)के चौवुरस राजवंशमें पनपा। विक्रम सवत् ९८७ (९३१ ई०)में चौवुरस वंशके अन्तिम राजा विजराज तथा स्त्रियोंको उत्तराधिकारसे वंचित रखनेके अधिनियम, इन दोनोंकी अवमानना हुई। इसी समय युवक सोलंकी मूलराज

---

[1]टाड : राजस्थान, खंड १, भाग ७, पृ० १०४।

[2]सोलंकी गोत्राचार इस प्रकार है—"माध्वनि शाखा-भारद्वाज गोत्र गुरुत्त लोकोश नेकस-सरस्वती (नदी) सामवेद कपिलेश्वरदेव कर्दमन रिकेश्वर तीन प्रवर जेनार-कुजदेवी-"मंयाल पुत्र"—टाड : राजस्थानः पृष्ठ १०४।

[3]बम्बईके निकट, कल्याण शुद्ध रूप।

के सम्मुख सुदृढ़ चौलुक्य साम्राज्य स्थापित करनेके लिए मार्ग प्रशस्त हुआ।[1]

इस सम्बन्धमें श्री सी० वी० वैद्यका कथन है कि "इस प्रश्नके विषयमें सबसे पहले यह ध्यानमें रखना होगा कि यह "चौलुक्य" तथा दक्षिणका "चालुक्य" परिवार एक ही नहीं हैं अपितु पृथक्-पृथक् है। यद्यपि इन दोनोंमें साम्य है तथा प्राचीन कवियों तथा कथाकारोंने इन्हे एकही माना है। गोत्रकी भिन्नतासे ही परिवारकी पृथक्ताका परिचय मिलता है। छठी शताब्दीमें दक्षिणके चालुक्योंने अपना गोत्र मानव्य अंकित कराया है। जैलापा तथा अन्य स्थानोंके चौलुक्य इसी वंश तथा विवरणके हैं। दुर्भाग्यसे गुजरातके चौलुक्योंने अपने विवरणोंमें अपने गोत्र नहीं दिये हैं। फिर भी हम निश्चित रूपसे कह सकते हैं, जैसा कि १०वीं शतीके एक चेदि विवरणमें दिया गया है कि उनका गोत्र भारद्वाज था।[3] पृथ्वीराजरासोमें चँदने भी चौलुक्योंका यही गोत्र कहा है। रीवा तथा गुजरातके सोलंकी अब तक अपनेको इसी गोत्रका बताते हैं और इस प्रकार बिना सन्देह हमें भी यह निश्चय मानना चाहिए कि उनका गोत्र सदा भारद्वाज ही रहा है।[4]

वंशका संस्थापक : मूलराज

श्री एच० सी० रेका कथन है कि ७२०-९५६ ईस्वीमें कपोतक जो चावड़ाके नामसे अधिक प्रसिद्ध थे, पाचसारामें शासन कर रहे थे। वहाके

---

[1]यह जयसिंह सोलंकीका पुत्र था तथा कैलियनका प्रसिद्ध राजकुमार था। इसने भोजराजकी पुत्रीसे विवाह किया था। यह विवरण एक बिना शीर्षककी अपूर्ण भौगोलिक एवं ऐतिहासिक पुस्तकसे लिया गया है, जो अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। टाड : राजस्थान, खण्ड १, पृ० १०३।

[2]सी० वी० वैद्य : *मध्यकालीन भारत खण्ड ३, अध्याय ७, पृ० १९५।*

[3]*इंडि० एँटी० : खंड १, पृ० २५३।*

[4]एच० एम० एच० आई०, खंड ३, अध्याय ७, पृ० १९५-६।

अन्तिम सामन्तसिंह उर्फ भुवतके राज्यकालमें कन्नौजके कल्याणकल्पके शासक भुवनादित्यके तीन पुत्र, राजी, बीजा तथा दंडक भिक्षुकका वेष धारणकर सोमनाथकी तीर्थ यात्रा करने निकले। लौटते समय वे सामन्तसिंह द्वारा आयोजित रथ प्रदर्शनके समारोहमें उपस्थित हुए। राजीने रथ संचालन सम्बन्धी कलाकी कुछ ऐसी आलोचना की जिससे सामन्तसिंह प्रसन्न हो गया। इतना ही नहीं उसने राजीको किसी राजवंशका समझकर उससे अपनी बहन लीलादेवीका विवाह कर दिया। संयोगसे लीलादेवी गर्भवती ही मर गयी। उसका गर्भस्थ शिशु शस्त्रोपचारके उपरान्त निकाला गया। यह शस्त्रोपचार उस समय हुआ जब मूलग्रह था। यही शिशु मूलराज था। वह योग्य तथा शक्तिशाली राजकुमार निकला। इसने अपने चाचाकी हत्या कर राज्यसिंहासन हस्तगत कर लिया।[1]

इस कथासे सत्य तथा कल्पनाको पृथक करना कठिन है लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि इसमें कुछ तथ्य अवश्य है। ६३७ ईस्वीके चालुक्य पुलकेशी अवनीजनाश्रयके नौसेरी दानपत्रसे यह बात भलीप्रकार प्रमाणित हो जाती है कि आठवी शताब्दीके पूर्वार्धमें चावडा वंश गुजरातमें राज्य कर रहा था।[2] इससे यह भी पता चलता है कि ७३३ ईस्वीके कुछ पहले अरबों (ताजिकों)की सेनाने सैन्धव, कच्छेत्र, सौराष्ट्र, चौतक लोगोंको पराजित एवं पददलित किया था। मौर्य तथा गुर्जरनरेश नवासारिका (लाटप्रदेशमें)के सुदूर दक्षिण क्षेत्र तक पहुंचे थे। महिपालके हड़ाला-दानपत्रसे स्पष्ट है कि कैपस लोग पूर्वी काठियावाड तथा मध्य गुजरातमें ९१४ ईस्वी तक शासनाधिकारी रहे। यूना दानपत्रसे विदित होता है

---

[1] (i) बी० जी० खंड १, भाग १, पृ० १५६-५७, (ii) कुमारपाल चरित : निर्णयसागर प्रेस, बम्बई १९२६ (१-१५), (iii) ए० ए०के० खंड २, पृ० २६२।

[2] बाम्बे गजेटियर : खंड १, भाग २, पृ० १८७-८८ तथा ३७५।

कि ८९३ ई० तथा बादमें भी कन्नौजके शासकोंके चौलुक्य राज्याधिकारी गुजरातमें शासन कर रहे थे। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि इन्हीं अधीनस्थ शासकोंमें जिसका सम्बन्ध कल्याणीके चौलुक्योंसे रहा होगा, कन्नौजके प्रतिहारोंसे वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर पाचसेराके छोटे चावडा राज्यवंशको उखाड फेंकनेमें समर्थ एवं सफल हुआ हो। इसप्रकार कल्याणके एक राजकुमारकी राज्यपरम्परा कन्नौजमें प्रारम्भ हुआ। यह निश्चित मान लेना भी उचित न होगा कि दसवीं सदीके पूर्वार्धमें कन्नौज प्रान्तमें कल्याण नामक नगरका अस्तित्व था और वहाका शासन भी चौलुक्य राजवंशके अधीन था। इन अनुमानोंका ठीक ठीक महत्त्व चाहे जो हो, इस निर्णयपर आना उचित ही होगा कि गुजरातके चौलुक्योंका संस्थापक मूलराज, चावड राजकुमारीका पुत्र था और उसने अपने मामाको अपदस्थ कर अनहिलपाटकका[1] राज्य हस्तगत कर लिया। अधिकाश जैन ऐतिहासिक तिथिक्रमोंमें यह स्वीकार किया गया है कि गुजरातका प्रथम चौलुक्य शासक राजीका वंशज था। यह राजी कन्नौजकी राजधानी कल्याणके राजा भुवनादित्य तथा अनहिलवाडपाटनके अन्तिम चौड राजा अथवा चावडा राजाकी बहिन लीलादेवीका पुत्र था।[2]

मेरुतुंगका अभिमत है कि विक्रम संवत् ९९८में राजी अपने दो भाइयोंके साथ वेशपरिवर्तन कर सोमनाथपाटनकी यात्रा करने गया था। यात्रामें लौटते समय अणहिल्वाडाके रथ प्रदर्शन समारोहमें वे शामिल हुए। राजीसे रथ सचालन कलाकी आलोचना सुनकर वहाका राजा सामन्तसिंह अत्यधिक प्रसन्न हुआ। राजीके वंशका विवरण जानकर उसने अपनी

---

[1]डी० एच० एन० आई० : खड २। बादके विवरण पत्रोंमें "अणहिलपाटक", अनहिलवाडा या उनहिलपुरके नामसे प्रसिद्ध हुआ। सरस्वती नदीके तटपर अवस्थित आधुनिक पाटन।

[2]फोर्ब्स्. रासमाला, खड १, पृ० ४९।

वहिन ललितादेवीसे उसका विवाह कर दिया। प्रसवके समय ललिता-देवीकी मृत्यु हो गयी किन्तु शिशु शस्त्रोपचारके पश्चात् जीवित निकाल लिया गया। मूल नक्षत्रमें उसका जन्म हुआ था, इसीलिए उसका नाम मूलराज रखा गया। मूलराजकी शिक्षा-दीक्षा उसके मामाके यहा हुई तथा उसके मामाने उसे गोद ले लिया। मूलराज बड़ा हुआ, तो सामन्त-सिंह जब आसवके आवेगमें रहते तो बार बार इस आशयका कथन व्यक्त करते कि "मैं तुम्हें राज्यसत्ता सौंपकर पृथक हो जाऊंगा।" किन्तु जब सामन्तसिंह गम्भीर मुद्रामें होते थे तो कहते कि राज्यसत्ता छोड़नेकी, अभी मेरी इच्छा नही। कहते हैं कि यह बात विभिन्न मुद्राओंमें इतनी बार कही गयी कि मूलराज इससे ऊब उठा। एकदिन उसने अपने मामा सामन्त-सिंहकी हत्या कर डाली तथा राजसिंहासनपर अधिकार कर लिया।[1]

इतिहासकार फोर्वसने यह ऐतिहासिक विवरण कुछ अन्तरके साथ स्वीकार कर लिया है कि मूलराजका पिता कन्नौजका न था बल्कि दक्षिणके कल्याणका था जो स्थान दक्षिणमें महान चालुक्य राजवंशका केन्द्र था।[2] प्रसिद्ध इतिहासज्ञ श्री एलफिनिस्टनका भी यही मत है।[3] मूलराजकी माता चौड राजवंशकी राजकुमारी थी और उसका पिता चौलुक्य था, यह सभी प्राप्त सामग्रियोसे स्पष्ट है। किन्तु यदि मेरुतुंगके ऐतिहासिक तिथिक्रमसे उक्त कहानीकी तुलना की जाय तो उक्त कथाका व्यतिक्रम स्पष्ट हो जायगा। मेरुतुंगका कथन है कि सामन्तसिंह ९९१ विक्रम सवत्में राजसिंहासनपर आसीन हुआ और सात वर्षों तक ९९८ विक्रम संवत् तक राज्य करता रहा। उसी समय राजी अणहिल्वाड़ेमें ९९८ वि० सं०में, आया और उसने लीलादेवीसे विवाह किया। लीलादेवीसे उन्हें एक पुत्र

---

[1]प्रबन्धचिन्तामणि : पृ० १५-१६।

[2]रासमाला : खंड १, पृ० २४४।

[3]भारतका इतिहास : पृ० २४१, छठां संस्करण।

हुआ। उसका पालन पोषण उसके मामाके संरक्षणमें हुआ तथा उसने अपने मामाकी हत्या कर डाली।

अब प्रश्न उठता है कि इन समस्त घटनाओंके लिए बीस वर्षका समय तो चाहिये ही। लेकिन बताया जाता है कि राजी वि० सं० ९९८में पाटन आया तथा मूलराजने अपने मामाको उसी वर्ष अपदस्थ कर दिया। यदि कहा जाय कि राजीका पाटन आगमन पहले होना चाहिये तो भी स्थिति सुस्पष्ट नही होती। इसका कारण यह है कि सामन्तसिंहने केवल सात वर्षों तक शासन किया और उसके राज्यकालमें यह घटना सम्भवतः नही हुई। इस प्रकार पाटनमें राजी तथा राजसिंहासनारूढ सामन्तसिंहके मिलनकी घटना सत्यकी कसौटीपर खरी नही उतरती। घटनाओका यह विश्लेषण मेरुतुंगकी पूरी कथाको अपुष्ट जनश्रुति तथा कल्पनाके आधारपर खड़ा सिद्ध करता प्रतीत होता है। चावड़ा तथा चौलुक्य शासकोंके मिलनकी उक्त कहानी इसप्रकार कल्पितसी ही प्रतीत होती है। इस विषयमें द्व्याश्रय काव्यका मौन और भी सन्देहजनक है। यद्यपि यह कहा जाता है कि यह काव्य हेमचन्द्रकी ही अकेले रचना नही, फिर भी मेरुतुंगके ऐतिहासिक वृत्तसे यह अधिक प्रामाणिक तथा विश्वसनीय है।[1] द्व्याश्रयमें मात्र यही कहा गया है कि मूलराज चौलुक्य था। उसकी शक्ति अत्यधिक थी और वह वीर था। मूलराजके दानपत्र क्रमसंख्या १मे वंशकी उत्पत्तिके विषयमे कोई विशेष विवरण नही। यह अत्यन्त सक्षिप्त है फिर भी इससे मेरुतुगके मतका खडन हो जाता है। इसमे मूलराजने "अपनेको सोलंकियों (चालुकिकानव्य)का वशज बताया है तथा महान राजा राजीके वशका कहा है। इसमे यह भी कहा गया

[1]इडि० ऐंटी० : खंड ६, पृ० १८२।

[2]अणहिलवाड़ेके चौलुक्योंके एकादश दानपत्र : इंडि० ऐंटी० खंड ६, पृ० १८१।

है कि उसने सारस्वत मंडलपर (सरस्वती नदीसे सिंचित प्रदेश) अपने बाहुबलसे विजय प्राप्त की थी।"

चौलुक्य इतिहासपर नया प्रकाश

अब यह स्वीकार किया जा सकता है कि सामन्तसिंहकी हत्याको पंडितों तथा भाटोंने "बाहुबल तथा शक्तिसे प्राप्त विजय"का रूप दे दिया होगा, लेकिन मेरुतुंगकी कहानीमें इसका साम्य नहीं होता। उसने राजीको "महान् राजाओंमें महान्" नही स्वीकार किया है।

अनहिलवाड़ेके चौलुक्य राजवंशके संस्थापकके इतिहासपर कुमारपालके समयके शिलालेख वडनगर प्रशस्तिसे एक नवीन प्रकाश पड़ा है। इसमें चौलुक्य वंशकी उत्पत्तिका इतिहास है। इस शिलालेखमें कहा गया है कि "प्रसिद्ध वीर मूलराज राजाओंके मुकुटका ऐसा बहुमूल्य और बेजोड़ मोती था जिसने अपने वंशकी प्रसिद्धि चतुर्दिक फैलायी...." उसने चावडा वंशकी राजकुमारीके भाग्यको उत्कर्षके उच्चशिखरपर पहुंचाया। राज्यलक्ष्मी उसकी दासी थी। वह विद्वत् समूहके आह्लादका विषय था। उसके सम्बन्धी उससे प्रसन्न थे। ब्राह्मण, भाट तथा सेवक सभी उसके शौर्यपर मुग्ध थे। उसकी वीरताके कारण सभी क्षेत्रोंके राजाओंकी सौभाग्यलक्ष्मी उस समय उसकी असिकदर्में ही रहनेमें प्रसन्नताका अनुभव करती थी।[1] वंश उत्पत्तिका यह विवरण मूलराजके उस दानपत्र[2]से बहुत कुछ मिलता जुलता है जिसमें कहा गया है कि उसने अपने बाहुबलसे सरस्वती नदीसे सिंचित प्रदेशपर विजय प्राप्त की। इन प्रमाणोंसे अब यह स्वीकार करनेमें बल मिलता है कि प्रथम चौलुक्यने गुजरातपर

---

[1] वडनगर प्रशस्ति : श्लोक २से ६, इपी० इंडि० : खंड १, पृ० २९३-३०५।

[2] इंडि० ऐंटी० : खंड ६, पृ० १९२।

विजय प्राप्त की थी, न कि जैसा प्रबन्धोंमें वर्णन है कि उसने अपने निकट सम्बन्धी अन्तिम चावडा राजासे विश्वासघात कर उसकी हत्या की थी।[1]

वडनगर प्रशस्ति तथा मूलराजके दानपत्रके इन ठोस प्रामाणिक आधारों-पर गुजरातके चौलुक्य राजवंशकी उत्पत्तिकी रूपरेखा अंकित करना युक्ति-युक्त होगा। उत्कीर्ण लेखोंमें उक्त वर्णन, दानपत्र तथा अन्यत्र सर्वत्र मूलराज-को अनहिल्वाडेका प्रथम चौलुक्य राजा कहा गया है। इनसे इस तथ्यका भी स्पष्ट संकेत मिलता है कि मूलराजका पिता चौलुक्य वंशके मूलस्थानका राजा था तथा मूलराजने "राज्यकी खोजमें" उत्तरी गुजरातपर आक्रमण किया।

अब इस प्रश्नका उठना स्वाभाविक है कि राजीका मूलस्थान तथा राज्य कहाँ था? गुजरातके इतिहाससे पता चलता है कि विक्रम संवत् ७५२में कन्नौजमें कल्याण कटकमें भूराजा तथा भूवड (भूपति)ने जय-शेखरको पराजित कर गुजरातको अपने अधीन कर लिया। उसके बाद कर्णादित्य, चन्द्रादित्य, सोमादित्य तथा भुवनादित्य कल्याणके राज-सिंहासनपर आरूढ हुए। अन्तिम राजा भुवनादित्य राजीका पिता था। पाश्चात्य इतिहासकार श्री फोर्बस्, श्री एल्फिन्स्टन तथा अन्य लोगोंने उक्त कल्याणको दक्षिणी चौलुक्योंकी राजधानी माना है। उनका कथन है कि गुजराती उक्त स्थानकी जो अवस्थिति बताते हैं वह भ्रमात्मक है। इन यूरोपीय इतिहासकारोंके तर्कके पक्षमें यह तथ्य सबसे प्रबल है कि दक्षिण स्थित कल्याण आठ सदी पूर्व चौलुक्योंकी राजधानी थी, और कन्नौजमें इस नामके कोई प्रसिद्ध नगरका पता नहीं चलता किन्तु सोलंकी चौलुक्योंके शासनके मूलप्रदेशोंके निवासियोंका अभिमत, जैसा कि डाक्टर बूलरका कथन है उससे भी अधिक प्रबल है।[2]

---

[1]प्रबन्ध चिन्तामणि : पृ० १६।

[2]जी० बूलर, ए कन्ट्रीब्यूशन टू दी हिस्ट्री आव गुजरात, इंडि० एंटी० खंड ६, पृ० १८१।

मूलस्थान उत्तर भारत

अनहिलवाडेके चौलुक्योंका मूलस्थान उत्तरभारत अथवा दक्षिण-भारतमें था; इस सम्बन्धमें अन्तिम निर्णयके निमित्त निम्नलिखित तथ्योंकी ओर ध्यान देना आवश्यक है—

१. गुजरातके चालुक्य अपनेको चौलुक्य (सोलंकी) कहते हैं और अब इनके वंशका नामकरण चौलुक्य या चालिक्य अथवा चालक्य हो गया है। इसीलिए इनके आधुनिक वंशधरोंको "चालके" सम्बोधित किया जाता है। यद्यपि चौलुक्य और चालुक्य एक ही नामके दो रूप हैं तथापि यह बात समझमें नहीं आती कि पाटन राजवंशके संस्थापकने, यदि वह सीधे कल्याणसे आता जहां कि चालुक्य शब्द चलता है तो अपनेको "चौलुकिक" क्यों कहा? ठीक इसके विपरीत यदि वह दक्षिणके अपने बन्धुओंसे काफी वर्षों पूर्व विलग हो गया हो और उत्तर भारतमें रहनेवाले परिवारका हो तो यह अन्तर समझा जा सकता है।

२. दक्षिणी चालुक्योंके कुलदेवता विष्णु हैं जबकि उत्तरी चालुक्योंके कुलदेवता शिव रहे हैं।

३. दक्षिणी चालुक्योंका प्रतीक चिह्न शिवका नन्दी है।[1]

४. भूपतिसे राजी तकके चालुक्य नरेशोंकी वंशावली और दक्षिणी चालुक्योंके शिलालेखोंमें उत्कीर्ण वंशावलीमें साम्य नहीं है।

५. चौलुक्य वंशके प्रसिद्ध संस्थापक मूलराज तथा उसके दक्षिणी सम्बन्धियोंमें मैत्री सम्बन्ध न था। मलराजको सिंहासनारूढ़ होनेके पश्चात् तैलगानाके तैलपा द्वारा बरपके नेतृत्वमें भेजी हुई सेनासे सामना करना पड़ा था।

---

[1]इंडि० एंटी० : खंड ६, पृ० १८१।

६ मूलराज तथा उसके उत्तराधिकारियोने गुजरातमें ब्राह्मणोकी अनक बस्तियां बसायी। ये ब्राह्मण आज तक औदीच्य (उत्तरी) के नामसे प्रसिद्ध हैं। उसन इन ब्राह्मणोको पूर्वी काठियावाडमें सिंहपुर, स्तम्भतीर्थ या कैम्बल तथा अन्य अनेक ग्राम प्रदान किये जो बनस तथा साबलमतीके मध्यमें अवस्थित थे।[1] साधारणत यह नियम है कि जब कोई राजा नये प्रदेशोपर विजय प्राप्त करता है तो वह अपने मूलस्थानके निवासियोको बुलाकर उन्हें वहा बसाता है। इसप्रकार यदि मूलराज दक्षिण भारतसे आया होता तो वह तैलगाना तथा कर्नाटक ब्राह्मणोकी बस्तिया बसाता। फलस्वरूप औदिच्य (उत्तरी) ब्राह्मणोंके स्थानपर दक्षिणी ब्राह्मणोका बाहुल्य एव प्राधान्य रहता। पर ऐसा नही है। यदि जैसा कि गुजरातके ऐतिहासिक तिथिक्रम अकित करनेवाले कहते हैं वह स्वीकार कर लिया जाय कि चौलुक्य उत्तर भारतके थे, तो औदिच्य(उत्तरी) ब्राह्मणोकी बस्तियोके बसानेकी बात तत्काल समझम आ जाती है। यह तथ्य इतना युक्तियुक्त और न्यायसगत, है कि इससे गुजरातियोके ऐतिहासिक विवरणका प्रबल समर्थन प्राप्त होता है कि चौलुक्य उत्तरी भारतके ही थे और वे दक्षिण भारतसे नही आये थे।

अब प्रश्न आता है—कन्नौजम चौलुक्य राज्य तथा एक दूसरे कल्याणके अस्तित्वका। यह कोई असम्भव नही। आठवी शतीम यशोवर्धनके कालसे दसवी शताब्दीके अन्त तक जबकि राठौर आये कनौजका इतिहास अन्धकारमें है। कनौजके इतिहासका यह अन्धकार युग लगभग उसी कालका है जिसम भूपति तथा उसके उत्तराधिकारी हुए थ। भूपति सन् ६६५-६म शासन कर रहा था तथा सन् ६४१-४२म राज्यसिहासनपर आसीन हुआ। फिर यह भी बात है कि उनके पूर्वज उत्तरसे आये और उन्होंने अयोध्या तथा अन्य नगरोपर शासन किया था।[2] यह बात भी

---

[1]फोर्बस् · रासमाला, खड १, पृ० ६५।

[2]इडि० ऐंटी० : खड १४, पृ० ५०-५५।

ध्यान देने योग्य है कि अब तक कन्नौजके जिलामें चौलुक्य राजपूत है। दूसरे कल्याणकी स्थिति तथा अस्तित्वका जहा तक प्रश्न है यह ध्यानमें रखा जाना चाहिये कि यह नाम कई स्थानोका रहा है। इस नामके दो नगर तो प्राचीन तथा बहुत प्रसिद्ध हैं। इनमसे एक बम्बईके निकट कल्याण है जिसे यूनानियान कल्लिनी कहा है तथा दक्षिण कल्यान। यह पहले ही बताया जा चुका है कि चौलुक्य मलाबार तटके "कैल्यिन" (कल्याण) नामक नगरके राजकुमार थ, जिसके वैभवपूर्ण ध्वसावशेष अब तक विद्यमान है।[1] इन समस्त स्थितियोका विश्लेषण तथा गुजरातियोके कथनाको ध्यानमे रखकर यह स्वीकार करना उचित होगा कि मूलराज उस राजाका पुत्र था जो कान्यकुब्जमे शासन करता था। उसने गुजरातपर विजय प्राप्त की जो सम्भवत उसके पैतृक साम्राज्यका प्राचीन अधीनस्थ प्रदेश था। इस प्रकार अनहिलवाडमें चौलुक्य साम्राज्यका सस्थापक मूलराज दक्षिण भारतका नही, अपितु उत्तरी भारतवर्षका ही मूल निवासी था।

वशावली

अनहिल्वाडको चौलुक्योकी वशावली जाननेके लिए प्रभूत तथा प्रामाणिक सामग्री विद्यमान है। सोलकी चौलुक्योके सस्थापक मूलराजसे लेकर बारहवे तथा अन्तिम राजा त्रिभुवनपाल तककी सम्पूर्ण वशावलीके लिए प्रामाणिक इतिहास, शिलालेख तथा ताम्रपत्र है।[2] विश्वसनीय तथा लिखित इतिहासोमे मेरुतुगकी थरावली है, जिसमे वशावली तथा वशवृक्ष दिया गया है। यह एतिहासिक तिथिक्रम सहित है। यह सस्कृत भाषामे ह।[3] अनेक चौलुक्य नरेशोके शासनकालका उल्लेख

---

[1]यह स्थान बम्बईके निकट है। टाड राजस्थान - खड १, भाग १, पृ० १०४-५।

[2]इडि० एँटी० खड ६, पृ० १८१।

[3]जे० बी० आर० ए० एस० खड ९, पृ० १४७।

प्रबन्ध-चिन्तामणिमें भी दिया हुआ है। इसके अतिरिक्त अनेक जैन ग्रन्थकारोंने अपनी अर्ध-ऐतिहासिक रचनाओंमें चौलुक्य राजाओंकी वंशावलीका उल्लेख किया है।[1] किन्तु वंशावलीकी सबसे प्रामाणिक वृक्षावली शिलालेखों[2] तथा ताम्रपत्रों[3]से प्राप्त होती है। उक्त आठ भूमिदानपत्रोंमेंसे[4] सात (४से १० तक) में चौलुक्य राजाओंकी सम्पूर्ण वंशावली दी हुई है।

थेरावलीमें चौलुक्योंकी वंशावली इसप्रकार दी गयी है—श्री मूलराजका पुत्र वल्लभराज हुआ और वल्लभराजके पश्चात् उसका भाई दुर्लभराज उत्तराधिकारी हुआ। उसके बाद उसका भाई नानागिलाका पुत्र भीमदेव राज्यगद्दीका उत्तराधिकारी हुआ। भीमदेवके पश्चात् उसके पुत्र श्री कर्णदेवको राजगद्दीका उत्तराधिकार मिला। श्री कर्णदेवके पुत्र जयसिंह सिद्धराज हुए। जयसिंह सिद्धराजके बाद श्री त्रिभुवनपालका पुत्र श्री-कुमारपाल शासनारूढ हुआ। त्रिभुवनपाल, भीमदेवके पुत्र क्षेमराजके पुत्र देवपालका पुत्र था। कुमारपालके अनन्तर उसके भाई महिपालके पुत्र अजयपालको राज्यका उत्तराधिकार प्राप्त हुआ। उसके बाद लघु मूलराज हुआ और पश्चात् भीमदेव द्वितीयने शासन किया। चौलुक्य वंशके अन्तिम राजा त्रिभुवनपालका नाम थेरावलीमें नहीं दिया गया है।[5]

सोमप्रभाचार्यके कुमारपाल प्रतिबोधमें भी चौलुक्य नरेशोंकी वंशावली दी हुई है। इसमें लिखा हुआ है कि अनहिलपुर पाटनमें पहले चौलुक्य

---

[1]सोमप्रभाचार्य : कुमारपालप्रतिबोध।

[2]इंडि० ऐंटी० : खंड ६, पृ० १८१। चौलुक्य राजाओंके एकादश दानपत्र।

[3]इपि० इंडि० : खंड १, वडनगर प्रशस्ति, प्राची शिलालेख।

[4]इंडि० ऐंटी० : खंड ६, पृ० १८१।

[5]जे० बी० आर० ए० एस० : खंड ९, पृ० १४७।

वंशका राजा मूलराज शासन करता था। उसके बाद उसके उत्तराधिकारी क्रमश इस प्रकार हुए—चामुंडराज, वल्लभराज, दुर्लभराज, भीमराज, कर्णदेव तथा जयसिंहदेव। जयसिंहदेवका उत्तराधिकारी कुमारपाल हुआ जो भीमराजका प्रपौत्र था। भीमराजको क्षेमराज नामक पुत्र था। क्षेमराजका पुत्र देवप्रसाद था। इसी देवप्रसादका पुत्र त्रिभुवनपाल था, जो कुमारपालका पिता था।[1]

इन ग्रन्थोंमे उल्लिखित विवरणोंके अतिरिक्त चौलुक्योंकी वंशावलीका प्रामाणिक विवरण अन्य सूत्रोंसे भी मिलता है। ये हैं गुजरातके चौलुक्य नरेशोंके सात ताम्रपत्र[2] जिनमें चौलुक्य राजवंशकी सम्पूर्ण वंशावली दी हुई है—

१ मूलराज प्रथम
२ चामुंडराज
३ वल्लभराज
४ दुर्लभराज
५ भीमदेव प्रथम[2]
६ कर्णदेव, त्रैलोक्यमल्ल
७ जयसिंहदेव
८ कुमारपालदेव
९ अजयपाल, महामाहेश्वर
१० मूलराज द्वितीय
११ भीमदेव
१२ जयसिंह
१३ त्रिभुवनपालदेव

---

[1]कुमारपालप्रतिबोध, पृ० ४-५।

[2]इंडि० ऐंटी० खंड ६, पृ० १८१ तथा मूल ताम्रपत्र।

वशावली सम्बन्धी इन ताम्रपत्रोका विश्लेषण करनेपर यह स्पष्ट है कि थोडे बहुत अन्तरके अतिरिक्त सभीमें साम्य है। इसप्रकार दानपत्र ४ तथा ३में जो अत्यल्प अन्तर है, वह नगण्य है। ५वें दानपत्रका प्रथम पत्र उन्ही राजाओका उल्लेख करता है जिनका विवरण दानपत्रकी ४ क्रमसख्याके सातवे पत्रमें मिलता है। इन दोनोमे ही जयसिंहका नामोल्लेख नही हुआ है। छठवें दानपत्रके प्रथम पत्रकी वशावली तथा विक्रम सवत् १२८३के ५वें दानपत्रमें उल्लिखित वशवृक्षमे जयसिंहके विवरणके अतिरिक्त कोई अन्तर नही। दानपत्र ७ १ तथा वि० स० १२८३के ५वे दानपत्रमे वि० स० १२६३के ३रे दानपत्रके अनुसार जयसिंह तथा मूलराज द्वितीयका विवरण है। दानपत्र ८ १की वशावली तथा वि० स० १२८८के ७वे दानपत्रमे भी साम्य है। कुछ अन्तर है तो इतना ही कि एकमें मूलराज द्वितीयकी तुलना म्लेच्छोके अन्धकारसे व्याप्त ससारमे प्रकाश फैलानेवाले प्रात रविसे की गयी है। दानपत्र ९ १की वशावलीका क्रम वि० स० १२९५ के ८वें दानपत्रसे प्राय. मिलता जुलता है। अन्तर एकमें केवल यह है कि चौलुक्य वशके नवम राजा अजयपालको महामाहेश्वरकी उपाधि दी गयी है। इसीप्रकार दानपत्र सख्या १०'१की वशावली तथा वि० स० १२६६के दानलेखमें वशके ग्यारह राजाओकी नामावलीमे साम्य है। प्रथममें त्रिभुवनपालदेवका नाम नही है।

कुमारपालके समयकी वडनगर प्रशस्ति तथा प्राची शिलालेखोमे चौलुक्य राजाओकी वशावली कुमारपाल तक दी हुई है। वडनगर प्रशस्तिमे गुजरातके चौलुक्य राजाओका क्रम इस प्रकार है—१. मूलराज, २ उसका पुत्र चामुडराज, ३ उसका पुत्र वल्लभराज, ४. उसका भाई दुर्लभराज, ५ भीमदेव, ६ उसका पुत्र कर्ण, ७ उसका पुत्र जयसिंह सिद्धराज और ८. कुमारपाल। प्राची शिलालेखमें चौलुक्य राजाओकी यही वशावली कुमारपाल तक अकित है। अन्तर केवल इतना है कि इसमें वल्लभराजका नामोल्लेख नही हुआ है।

वंशावली सम्बन्धी इन समस्त सामग्रियोंपर विचार तथा विश्लेषणके अनन्तर चौलुक्य राजाओंका वंशवृक्ष निम्नलिखित प्रकार स्थापित करना उचित होगा—

१. मूलराज प्रथम, नरेश राजीका पुत्र
- २. चामुंडराज
  - ३. वल्लभराज
  - ४. दुर्लभराज
  - नागदेव
    - ५. भीमदेव
      - ६. कर्ण
        - ७. जयसिंह सिद्धराज
      - हरिपाल
        - त्रिभुवनपाल
          - ८. कुमारपाल
          - महिपाल
            - ९. अजयपाल
              - १०. मूलराज द्वितीय
              - ११. भीमदेव द्वितीय
                - १२. त्रिभुवनपाल
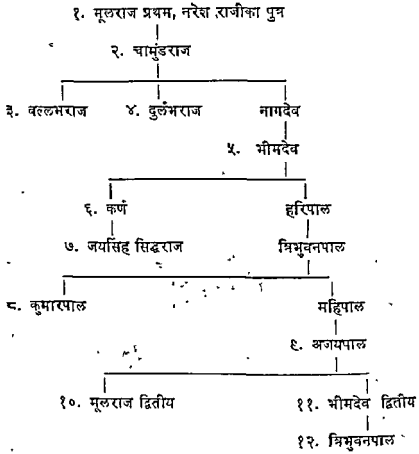
तिथिक्रम

मेरुतुंगकी थेरावलीसे विदित होता है कि विक्रम संवत् १०१७में चौलुक्य श्रीमूलराजने उत्तराधिकार प्राप्त किया तथा ३५ वर्षों तक

शासन किया। उसके पश्चात् विक्रम संवत् १०५२में उसका पुत्र वल्लभराज शासनारूढ हुआ और १४ वर्षों तक राज्य करता रहा। वि० सं० १०६६में उसका भाई दुर्लभ उत्तराधिकारी हुआ और वह १२ वर्षों पर्यन्त शासन करता रहा। वि० सं० १०७८में उसके भाई नागदेवके पुत्र भीमदेवने उत्तराधिकार प्राप्त किया तथा ४२ वर्षों तक सुदीर्घ शासन किया। वि० सं० ११२०में उसका पुत्र श्रीकर्णदेव राजगद्दीपर बैठा और ३० वर्षों तक शासनारूढ रहा। मेरुतुंगका कथन है कि वि० सं० ११३० कार्तिक शुद्ध तृतीयासे तीन दिन तक पादुका राज्य था। उसी वर्ष मार्गशीर्ष शुद्ध ४को त्रिभुवनपालका पुत्र कुमारपाल राज्याधिकारी हुआ तथा वि० सं० १२२९ पौष, शुद्ध द्वादशी तक शासन करता रहा। कुमारपालने ३० वर्ष, १ मास तथा ७ दिनोंकी अवधिपर्यन्त राज्य किया। कुमारपालके बाद उसी दिन उसके भाई महिपालका पुत्र अजयपाल राज्यगद्दीपर बैठा। ३ वर्ष, २ मासके पश्चात् विक्रम संवत् १२३२, फाल्गुन शुद्ध द्वादशीको लघु मूलराज (मूलराज द्वितीय) राजगद्दीपर बैठा। वि० सं० १२३४की चैत्र सुदीसे २ वर्ष, १ मास तथा २ दिनों तक उसने शासन किया। इसी दिन भीमदेव द्वितीय शासनारूढ हुआ।

विभिन्न ऐतिहासिक सूत्रोंसे जो प्रामाणिक विवरण प्राप्त हुए हैं, उनके आधारपर चौलुक्य राजाओंका तिथिक्रम इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

राजाओंका क्रम	प्रबन्ध चिन्तामणि	कुमारपाल प्रबन्ध	पाटावलि	शासनावधि[1]
मूलराज	३५ वर्ष	३५ वर्ष	३५ वर्ष	सन् ९६१-९९६
चामुंडराज	१३ वर्ष	१३ वर्ष	१३ वर्ष	सन् ९९७-१००९

---

[1] इंडि० ऐंटी० : खंड ६, इपि० इंडि० : खंड ८ इसमें डाक्टर बूलर तथा अन्य विद्वान इससे सहमत हैं।

वल्लभराज	६ मास	६ मास	६ मास	सन् १००६-
दुर्लभराज	११ वर्ष ६ मास	११ वर्ष ६ मास	११ वर्ष ६ मास	सन् १००६-१०२१
भीमदेव	४२[1] वर्ष	४२ वर्ष	४२ वर्ष	सन् १०२१-१०६३
कर्णदेव	अलिखित	२६ वर्ष	२६ वर्ष	सन् १०६३-१०६३
जयसिंहदेव	४६ वर्ष	अलिखित	४८ वर्ष ८ मास १० दिन	सन् १०६३-११४२
कुमारपाल	३१ वर्ष	३१ वर्ष	३० वर्ष ८ मास २७ दिन	सन् ११४२-११७३
अजयपाल	३ वर्ष	...	३ वर्ष ११ मास २८ दिन	सन् ११७३-११७६
मूलराज द्वितीय	२ वर्ष	..	२ वर्ष १ मास २४ दिन	सन् ११७६-११७८
भीमदेवराज	६३ वर्ष	...	६५ वर्ष २ मास ८ दिन	सन् ११७८-१२४१
पादुकाराज	३ दिन	...	६ दिन	...
त्रिभुवनपाल	...	...	२ मास १२ दिन	सन् १२४१-१२४२

[1] एक प्रतिमें ५२ वर्ष दिया है।

उपर्युक्त विवचनके आधारपर कुमारपालके पारिवारिक सम्बन्धियो का क्रम इसप्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

रानी चकुलादवी=भीमदेव=उदयमति रानी
|
क्षमराज
|
देवपाल या देवप्रसाद अथवा हरिपाल
|
त्रिभुवनपाल=काश्मीरादेवी
|
महिपाल | कीर्तिपाल | कुमारपाल | प्रमल्देवी | देवलदेवी

वशावली तथा उक्त पारिवारिक सम्बन्ध सूत्रसे विदित होता है कि कुमारपालका पिता त्रिभुवनपाल था, उसकी माता थी काश्मीरादेवी। कुमारपालको महिपाल तथा कीर्तिपाल नामके दो भाई थ और दो बहिनें भी थी जिनके नाम क्रमश प्रमल्देवी तथा देवलदेवी थे।

प्रारम्भिक जीवन और शिक्षा-दीक्षा

विगत अध्यायमे हमें विदित हो चुका है कि कुमारपालका पिता त्रिभुवनपाल था और उसकी माताका नाम काश्मीरादेवी था। कुमारपालका जन्म विक्रम संवत् ११४६ अथवा सन् १०९२ ईस्वीमें हुआ था। कहा जाता है कि विक्रम संवत् ११९९ अथवा सन् ११४२ ईस्वीमें जब यह राजगद्दीपर आसीन हुआ तो उसकी अवस्था पचास वर्षकी थी।[1] इस गणनाके अनुसार भी कुमारपालके जन्मकी उक्त तिथि ही निश्चित प्रतीत होती है। कहा जाता है[2] कि कुमारपालके प्रपितामह क्षेमराजने जो भीमदेव प्रथमका पुत्र था, स्वेच्छासे राज्यगद्दीका त्याग कर दिया था।[3] किन्तु दूसरे सूत्रके आधारपर यह भी पता चलता है कि उसे उत्तराधिकारसे इसलिए वंचित कर दिया था कि भीमदेवने चकुलादेवी या बकुलादेवी नामकी नर्तकीको अपने रनिवासमें रख लिया था। प्रबन्ध चिन्तामणिके रचयिताका कथन है कि अणहिल्पुरके राजा भीमदेवने चकुलादेवीका जो यद्यपि क्षत्रिय नहीं थी अपितु वृत्तिसे नर्तकी थी, उसकी चारित्रिक दृढता तथा भक्तिके कारण अपने अन्तःपुरमें स्थान दिया था। क्षेमराजके पुत्र देवप्रसाद तथा भीमदेवके पुत्र कर्णदेवमें अत्यन्त घनिष्ठ मैत्री थी। कहा

[1] प्रबन्धचिन्तामणि : प्रकाश ६, पृ० ९५।

[2] वही, पुरातन प्रबन्ध संग्रह, परिशिष्ट १, पृ० १२३। "सपादलक्ष प्रहित क्षुरिकात पालिताब्द युगशीला बकुलादेवी वेश्या श्री भीमेनोढ़ा"।

[3] के० एम० मुन्शी · पाटनका प्रभुत्व, खंड १, पृ० ४२।

जाता है कि कर्णदेवकी मृत्युके समय देवप्रसादने अपने पुत्र त्रिभुवनपालको जयसिंहको सौंपकर अपनेको चितापर समर्पित कर दिया।[1]

शिक्षा-दीक्षा

कुमारपालकी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षाके सम्बन्धमें दुर्भाग्यसे कोई ऐसी प्रामाणिक सामग्री नहीं, जिसके आधारपर उसके शिक्षा क्रमकी रूपरेखा प्रस्तुत की जा सके। किन्तु कुमारपालका पालन पोषण जिस स्थिति विशेष तथा विशिष्ट वातावरणमें हुआ था, उससे हम उसकी शिक्षा-दीक्षाके स्वरूपका सकेत प्राप्त कर सकते हैं। कुमारपालका पिता त्रिभुवनपाल अपने राजपरिवारके शीर्षस्थ व्यक्तिका सदा विश्वस्त बना था। युद्धभूमिमें राजाके सम्मुख वह इसी अभिप्रायसे उपस्थित रहा करता था कि राजाके शरीरकी रक्षा प्राण देकर की जा सके। द्वयाश्रय काव्यमें इस बातका उल्लेख मिलता है कि सिद्धराजसे त्रिभुवनपालका सम्बन्ध बहुत अच्छा था और वह सिद्धराजके साथ रणभूमिमें जाया करता था। कुमारपालचरितमें भी इसका विवरण मिलता है कि वह सिद्धराज जयसिंहके राजदरबारमें जाया करता था। इन परिस्थितियोंमें इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि कुमारपालकी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा निस्सन्देह एक राजकुमारकी भांति ही हुई होगी।

मेरुतुंग तथा हेमचन्द्रने अणहिलपाटकका जो वर्णन तथा विवरण लिखा है उसमें सम्राटके पार्श्वमें युवराज अथवा उत्तराधिकारी राजकुमारका उल्लेख आया है।[2] इसका भी विवरण मिलता है कि राजधानीमें बहुतसे मन्दिर तथा उच्च शिक्षा प्रदान करनेवाले विद्यापीठ थे।[3]

---

[1] रासमाला : अध्याय ६, पृ० १०७।
[2] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३७।
[3] वही, पृ० २३९।

इस प्रकारका वर्णन आया है कि कुमारपाल प्रातःकालमें पठन-पाठन तथा सूतोंसे गाथा सुना करता था। राजदरबारसे भाटजन प्राचीनकालका इतिहास सुनाया करते थे। इतिहासका अध्ययन युवराजके लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होता था। कुमारपालने बाल्यकालमें अश्वारोहण, शस्त्र-सचालन तथा लक्ष्यभेदकी शिक्षा अवश्य ग्रहण की थी।[1] प्रौढ जीवनमें जब वह समरभूमिमें युद्ध करने गया और वहा उसने जैसा सफल नेतृत्व किया, विशेषकर जिस शौर्य तथा वीर्यप्रदर्शनके लिए उसे शाकम्भरी[2] भूपालविजेताकी उपाधि मिली थी, उसे देखते हुए यह स्वीकार करनेमे कोई सन्देह नही कि बाल्यावस्थामे कुमारपालने उक्त सैनिक शिक्षाए समुचित ढगसे प्राप्त की थी। प्राचीन कालमे पर्यटन शिक्षाका आवश्यक अग माना जाता था, जिसके बिना कोई शिक्षाक्रम पूर्ण हुआ नही मान्य किया जाता था। कुमारपालको भाग्यचक्रके कारण सात वर्षों तक सतत विभिन्न प्रदेशोमें पर्यटन करना पडा था। इसी भ्रमणके फलस्वरूप वह विभिन्न राजदरबारों, मन्त्रियो तथा विद्वानोसे सम्पर्क स्थापित कर सका और ये अनुभव उसे उस समय अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुए, जब वह अणहिलवाडेकी राज्यगद्दीपर शासनारूढ हुआ।

कुमारपालके प्रति सिद्धराजकी घृणा

जयसिंह सिद्धराज अपनी वृद्धावस्था पर्यन्त निःसन्तान रहे। इस अवस्थामे यह स्वाभाविक था कि कुमारपाल उस युवराजकी स्थितिमे होता, जिसे राज्यका उत्तराधिकार मिलनेवाला था। जैन इतिहासोंके अनुसार सिद्धराजको भगवान सोमनाथ, साधु हेमचन्द्र, माता अम्बिका

---

[1] द्वयाश्रय काव्य, प्रथम सर्ग, श्लोक ४८-४९।

[2] निज भुज विक्रम रणागण विनिर्जित, शाकम्भरी भूपाल इण्डि० ऐंटी० : खड ६, पृ० १८१।

कोडीनर[1] तथा ज्योतिषियोंने कह दिया था कि उसे पुत्र न होगा और कुमारपाल ही उसका उत्तराधिकारी होगा, किन्तु यह बात जयसिंहको तनिक अच्छी न लगती। वह कुमारपालसे अत्यधिक घृणा करने लगा और इस बातके लिए भी प्रयत्नशील हुआ कि कुमारपालकी हत्या कर डाले।[2] मेरुतुंगके कथनानुसार जयसिंहकी यह घृणा कुमारपालके नर्तकी चक्लादेवीका वंशज होनेके कारण थी। जिनमदनके विवरणके अनुसार जयसिंह सिद्धराज उक्त कार्यके लिए इस आशासे भी प्रयत्नशील था कि यदि उसकी हत्या हो जाती है तो भगवान शिव उसे एक पुत्ररत्न का वर दे सकते हैं। कुमारपालचरितके अनुसार तो यहां तक पता लगता है कि सिद्धराजने कुमारपालके सहित त्रिभुवनपालके समस्त परिवारकी हत्या कर देनेकी भी योजना बनायी थी। त्रिभुवनपालकी हत्या हुई किन्तु कुमारपाल बच निकला। सिद्धराजकी घृणासे क्लेशित तथा अपने बहनोई कृष्णदेवके परामर्शानुसार उसने परिवार छोड दिया और अज्ञातवास करने लगा।

कुमारपालका अज्ञातवास

प्रबन्ध चिन्तामणिके रचयिताने लिखा है कि कुमारपाल अनेक वर्षों तक साधुके वेशमें विभिन्न स्थानोंमे घूमता रहा। संयोगवश एक बार वह पाटन (अणहिलपुर)के एक मठमें आकर रहा। जिस दिन वह पाटन आया सिद्धराजके पिता कर्णदेवका वार्षिक श्राद्ध था। उसीदिन सिद्धराजने नगरके सभी सन्यासियोंको निमन्त्रण दिया था।[3] कुमारपालको

---

[1] अणहिलवाडा राजधानीका प्रसिद्ध जैनमन्दिर : बाम्बे गजेटियर।

[2] प्रभावकचरित : अध्याय २२, पृ० १९५-१९६ तथा प्रबन्ध चिन्तामणि प्रकाश : "भवदनन्तरमयं नृपो भविष्यति सिद्धनृपो विज्ञप्तस्तस्मिन्न्हीन जाता थिस्य सहिष्णुतया विनाशावसरं सततमन्वेषयामास"

[3] प्रबन्ध चिन्तामणि : प्रकाश ४, पृ० ७७।

भी सभी सन्यासियोंके साथ उपस्थित होना पडा। सिद्धराज जयसिंह सभी सन्यासियोंके समूहका एक एक कर श्रद्धाभक्तिके साथ चरण धो रहे थे। साधुवेशमे कुमारपालका जब वे चरण धोने लगे तो उनकी कोमलता तथा उसपर अंकित राजत्वके विशेष चिह्नोको देखकर आश्चर्यचकित रह गये। सिद्धराजकी मुखमुद्रापर इस घटनाके परिणामस्वरूप हुए परिवर्तनको कुमारपालने सावधानीसे देख लिया तथा तत्काल ही वहासे भाग निकला। सिद्धराजके सैनिकोने जब उसका पीछा किया तो वह पहले कुम्हारके घरमे जा छिपा और फिर एक किसानके खेतकी कटीली भाडियामें छिप गया। इसप्रकार उसने सैनिकोंसे पीछा छुडाया।

पलायनके समय जब वह एक वृक्षके नीचे विश्राम कर रहा था उसने देखा कि एक चूहा एक छिद्रसे एक एक कर इक्कीस रजत मुद्राए ला रहा है। बादमे चूहा जब उन रजत मुद्राओको फिर ले जाने लगा तो कुमारपालने उसे एक मुद्रा तो ले जाने दी और शेषको अपने अधिकारमे कर लिया। चूहा बिलसे बाहर आया और अपनी रजत मुद्राओको न पाकर इतना दुखित हुआ कि तत्काल वही उसके प्राण निकल गये। इस घटनाके कारण कुमारपालको बहुत क्लेश हुआ। एक बार जब वह अज्ञात दिशाकी ओर चला जा रहा था तो उसे एक भद्र महिलासे भेंट हुई जो अपने पिताके घर जा रही थी। महिलाने कुमारपालको भाईके नाते निमन्त्रित कर सुस्वादु भोजन कराया। इसीप्रकार यात्राके पश्चात् यात्रा करता हुआ कुमारपाल खम्भातकी खाडीमें स्तम्भतीर्थ जा पहुचा। यही प्रसिद्ध महान् जैनमुनि हेमचन्द्राचार्य उस समय निवास कर रहे थे।[1]

हेमाचार्यसे मिलन

स्तम्भतीर्थमें कुमारपाल मन्त्री उदयनके यहा सहायता मागने गया।

---

[1] प्रबन्ध चिन्तामणि : पृ० ७७ तथा पुरातन प्रबन्ध सग्रह : पृ० १२३।

उदयन भी उससे भेंट करनेके लिए मठमें गया। उसके प्रश्नोंके उत्तरमें हेमाचार्यने कुमारपालके अंगोंपर विशेष राजचिह्नोंको देखकर भविष्य-वाणी की कि कुमारपाल ही इस समस्त प्रदेशका भावी शासक होगा। यह देखकर कि कुमारपाल इस कथनपर विश्वास करनेमें सकोच कर रहा है उन्होंने अपनी भविष्यवाणीकी दो प्रतिलिपियां प्रस्तुत करायीं। एक कुमारपालको दी तथा दूसरी मन्त्री उदयनको। हेमाचार्यकी भविष्य-वाणी[1] यह थी कि यदि सवत् ११९९ कार्तिक मासके कृष्ण पक्षकी द्वितीया रविवारको जब चन्द्रमा हस्त नक्षत्रमें रहेगा, कुमारपाल सिंहा-सनारूढ न हुआ तो मैं इसके बादसे भविष्यवाणी करना ही छोड दूंगा। यह देख कुमारपाल तथा उदयनने स्वीकार किया कि यदि भविष्य-वाणी सत्यमें परिणत हुई तो वे उनकी आज्ञाका पालन करेंगे। हेमचन्द्रने उसी समय कुमारपालसे भी प्रतिज्ञा करा ली कि यदि वह राजा हुआ तो जैनधर्म स्वीकार कर लेगा। इसके बाद कुमारपाल उदयनके घर गया। उदयनने उसका आदर सत्कार किया तथा सभी साधनोंसे युक्त कर उसे मालवा भेजा।

मालवामें खडगेश्वरके मन्दिरके एक शिलापट्टमें जिसमें उसके शिलान्यासका विवरण उत्कीर्ण था, उसे एक श्लोक[2] दिखायी पडा जिसमें यह भाव व्यक्त थे कि जब ११ सौ ९९ वर्ष पूर्ण हो जायगे तो ओ विक्रम, तुम्हारे समान ही कुमार नामका प्रतापी राजा होगा।[3] इस उत्कीर्ण लेखको

---

[1] प्रबन्ध चिन्तामणि : पृ० १९४ : सं० ११९९ वर्षे कार्तिक वदि २ रवौ हस्त नक्षत्रे यदि भवतः पट्टाभिषेको न भवति तदातः परं निमित्तावलोक सन्यासः।

[2] प्रबन्ध चिन्तामणि : पृ० १९४, "पुण्ये वर्ष सहस्र शते वर्षाणां नव नवत्यधिके भवति कुमार नरेन्द्रस्तव विक्रम राज सदृश."।

[3] पुरातन-प्रबन्ध संग्रह : पृ० १२३।

पढकर वह अत्यधिक आश्चर्यचकित हुआ। उसी समय कुमारपालको विदित हुआ कि सिद्धराज जयसिंहका देहान्त हो गया। यह सुनकर वह *अणहिलपुरकी ओर चला।*

प्रभावकचरित्रमें कुमारपालका प्रारम्भिक जीवन

कुमारपालके प्रारम्भिक जीवनके सम्बन्धमे प्रभावकचरित्रका विवरण अल्पान्तरके साथ उक्त आशयका ही है। हेमचन्द्रने कुमारपालके भाग्योदयमें कितना योगदान दिया, उसका वर्णन इसमें मिलता है। कहते हैं कि जयसिंहको गुप्तचरो द्वारा विदित हो गया था कि कुमारपाल साधुवेशमें तीन सौ साधुओके साथ अणहिलवाडा आया है। कुमारपालको पकडनेके लिए ही राजाने सभी साधुओंको निमन्त्रित किया और सिद्धराज जयसिंहने सभी साधुओंके चरण धोनेका निश्चय किया। ऐसा करनेमें बाह्य रूपसे तो असीम भक्तिका प्रदर्शन था किन्तु वास्तवमे कुमारपालको उसके विशिष्ट राजचिह्नोके आधारपर पकडना ही उसका अभिप्रेत था। ज्योंही उसने कुमारपालके पैरका स्पर्श किया उसमें उसे कमल, छत्र तथा पताकाके विशिष्ट राजचिह्न अंकित मिले।[1] जयसिंहने अपने सेवकोंकी ओर सकेत किया। कुमारपालने यह देख लिया और तत्क्षण हेमचन्द्रके निवासमे जा छिपा। गुप्तचर उसका पीछा करते रहे। हेमचन्द्रने उसपर ताड वृक्ष फैला दिये। ताडके पत्रोको राज्याधिकारियोंने शीघ्रतामें नहीं देखा। जब तात्कालिक सकट दूर हो गया तो कुमारपाल अणहिलवाडेसे

[1] विज्ञप्रमन्यदाचारैर्जटाधरशत त्रयम्। अभ्यागादस्ति तन्मध्ये भ्रातृपुत्रो भवद्रिपुः॥ भोजनाय निमन्त्रयन्ते ते सर्वेऽपि तपोधनाः। पादयोर्यस्य पद्मानि ध्वजश्छत्रं सते द्विषन॥ श्रुत्वेत्या ह्लाम्यतान् राज्य तेषा प्राक्षालयत् स्वयम्। चरणौ भक्तितो यावत् तस्या प्यवसरोऽभवत्। पद्येषु दृश्यमानेषु पदयोर्हृष्टि सज्ञया। ख्यातेऽत्र तैर्नृपोक्षानात कुमारोऽपि बुबोध तत्।

भाग निकला। एक शैव ब्राह्मण वोसरीके साथ वह स्तम्भतीर्थ चला गया। यहा आकर उसने अपने मित्रोको मन्त्री उदयनके पास सहायताका सन्देश लेकर भेजा। उदयनने राजाके शत्रुको किसी प्रकारकी सहायता देना स्वीकार नही किया। रात्रिमें कुमारपाल बहुत क्षुधा पीडित हुआ। वह रातम ही एक जैनमठम आया। सयोगसे यहीं हेमचन्द्र चातुर्मास्य कर रहे थ। हेमचन्द्रन कुमारपालके विशिष्ट राजचिह्नोको पहचानकर और यह समझकर कि यही भावी राजा है उसका स्वागत किया।[1] हेमचन्द्रने भविष्यवाणी की कि सातवें वर्ष वह राज्य सिंहासनपर आसीन होगा। हेमचन्द्रकी प्रेरणासे ही उदयनने कुमारपालकी भोजन, वस्त्र तथा धनसे सहायता की।[2] इसके पश्चात् सात वर्षों तक कुमारपाल कापालिकके वेशमें अपनी पत्नी भोपालादेवीके साथ विभिन प्रदेशोम भ्रमण करता रहा।[3] ११९९ विक्रम सवत्‌म जयसिंहकी मृत्यु हुई।[4] कुमारपालको जब यह समाचार मिला तो वह सिंहासनपर अधिकार प्राप्त करनेके निमित्त अणहिलपुर वापस लौटा।[5]

कुमारपालका भ्रमण और जिनमदन

जिनमदनके "कुमारपालचरित्र"में कुमारपाल तथा हेमचन्द्रका मिलन बहुत पहले कराया गया है। कुमारपालके अज्ञातवास तथा भ्रमणकी

---

[1] प्रभावक चरित्र : अध्याय २२, श्लोक ३७६-३८४।

[2] वही,—'वरासन्युपवेश्योच्चे राजपुत्रास्त्वनिर्वृत.। अमुत सप्तमे वर्षे पृथ्वीपालो भविष्यसि।'

[3] वही, पृ० १९७।

[4] वही : द्वादशस्वथ वर्षाणा शतेषु विरतेषु च एकोनेषु महीनाथे सिद्धाधीशे दिवगते।

[5] वही : श्लोक ३९५-३९७।

कहानी जिनमदनने भी थोडे बहुत अन्तरके साथ उसी प्रकार कही है। उसने लिखा है कि जयसिंहकी दृष्टि कुमारपालके प्रति उस समयसे बदली जब वह उसके दरबारमें अपनी अधीनता प्रकट करने गया था। जयसिंहके दरबारमें उसने हेमचन्द्रको देखा। हेमचन्द्रसे मिलनेके लिए वह तत्काल मठमें गया। वहा हेमचन्द्रने कुमारपालको उपदेश दिया तथा प्रतिज्ञा करायी कि वह परदाराको बहिन समझेगा।[1]

कुमारपालके पलायनकी जो कथा जिनमदनने लिखी है उसमें प्रभावक-चरित्र तथा प्रबन्धचिन्तामणिमें वर्णित कथाका मिश्रण है। जिनमदन तथा मेरुतुग दोनों ही इसपर एकमत है कि पलायन और भ्रमण करते हुए कुमारपालने हेमचन्द्रसे पहले कच्छमें भेंट की। किन्तु कुमारपाल हेमचन्द्र-का यह मिलन कच्छके बाहरी द्वारपर स्थित एक मन्दिरमें होता है। यही उदयन भी हेमचन्द्रके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करने आता है। उदयनकी उपस्थितिमें कुमारपालके प्रश्न करनेपर कि आगन्तुक कौन है, हेमचन्द्रने पूर्वके इतिहासकी चर्चा की है। इसके पश्चात् हेमचन्द्रकी भविष्यवाणी होती है और जिस प्रकार मेरुतुगने लिखा है उसी प्रकार उदयनके यहा कुमारपालका आदर सत्कार होता है। जिनमदनने तो यहा तक लिखा है कि कुमारपाल बहुत दिनों तक उदयनका अतिथि रहा। जब जयसिंहको कुमारपालके कच्छमें रहनेकी बात ज्ञात हुई तो उसने कुमारपालको पकडनेके लिए सैनिक भेजे। पीछा करते हुए सैनिकोसे बचनेके लिए कुमारपाल हेमचन्द्रके मठमें भागा तथा वहा पाडुलिपिके समूहकी कोठरीमें छिप गया। पलायनकी अन्तिम कथा सम्भवत. प्रभावक-चरित्रमें वर्णित हेमचन्द्रकी सहायता विषयक कहानीकी पुनरावृत्ति है। सम्भवत जिनमदनने यह उचित नही समझा कि अणहिलपुरमें हेमचन्द्र-

---

[1] *जिनमदन : कुमारपाल चरित्र, पृ० ४४-५४। यह उपदेश ब्राह्मण साहित्यके अनेक उद्धरणोसे युक्त है।*

कुमारपाल मिलन हो और तत्काल बाद ही मच्छमें। इसीलिए उसने ताडपत्रोंमें छिपनेके प्रसगको मच्छकी घटना बताया है। इस घटना प्रसग-को वास्तविकताका रूप देनेके लिए उसने पाडुलिपियोंकी कोठरीका उल्लेख किया है। इसके पश्चात्‌के भ्रमणोंका विवरण जिनमदनने बहुत विस्तृत-रूपसे लिखा है। प्रभावकचरित्र तथा प्रबन्धचिन्तामणिमें इनका उल्लेख नही मिलता। निश्चय ही जिनमदनके इस विस्तृत विवरणोंका स्रोत पृथक रहा है। इस विवरणके अनुसार कुमारपाल वातपद्र (बड़ौदा)की ओर जाता है और तत्पश्चात् क्रमशः भृगुकच्छ (भडौंच) कोल्हापुर, कल्याण, कनेई तथा दक्षिणके अन्य नगरोंमें परिभ्रमण करता हुआ पैथान-प्रतिष्ठान होता हुआ अन्तमें मालवा पहुचता है। जिनमदनका यह वर्णन श्लोकबद्ध है और ऐसा प्रतीत होता है कि अनेक कुमारपालचरित्रोंके आधारपर यह प्रस्तुत किया गया है।[1]

मेरुतुंगकी प्रबन्धचिन्तामणि, प्रभावकचरित्र तथा जिनमदनके कुमार-पालमें, अज्ञातवास और पलायनकी मिलती जुलती ही कथाएं मिलती है। मेरुतुगका उक्त वर्णन प्रभावकचरित्रसे प्राय एकदम साम्य रखता है। इनके वर्णनमें जो कुछ अन्तर है, उनमें एक ध्यान देने योग्य यह है कि मेरुतुगकी कथामें हेमचन्द्र एक ही बार सामने आते है। इसमें न तो अणहिलपुरमे ताडकी पाडुलिपियोंमें छिपनेका कथा प्रसग उसने वर्णित किया है और न कुमारपालके सिंहासनारूढ होनेके पूर्व दूसरी भविष्यवाणीका उल्लेख। कुछ अन्तर सहित उसने हेमचन्द्र तथा कुमार-पालके स्तम्भतीर्थमें मिलनेकी कथाप्रसंगका ही विवरण दिया है।

मुसलिम इतिहासकी साक्षी

सम-सामयिक देशके इन विवरणोंके अतिरिक्त विदेशी इतिहासकारने

---

[1] जिनमदन : कुमारपाल चरित्र, पृ० ५८-८३। इसमें हेमचन्द्र तथा उदयनके मिलनका भी विवरण है।

भी कुमारपालके पलायनकी घटनाका उल्लेख किया है। इसमें कहा गया है कि कुमारपालको अपने प्रारम्भिक जीवनमें वेश बदलकर जयसिंहकी मृत्यु तक अनेकानेक देशोंका परिभ्रमण करना पड़ा था। अबुल फजलने अपनी आईन ए-अकबरीमें[1] लिखा है कि कुमारपाल, सोलंकीको अपने प्राणके भयसे जयसिंहके मृत्यु पर्यन्त निर्वासनमें रहना पड़ा था।[1]

उपलब्ध विवरणोंका विश्लेषण

संस्कृत, प्राकृत तथा जैनग्रन्थोंमें अल्पाधिक अन्तरके साथ कुमारपालके अज्ञातवास, पलायन और परिभ्रमणके जो वर्णन मिलते हैं, उनसे इस निश्चित निष्कर्षपर आना स्वाभाविक है कि कुमारपालका प्रारम्भिक जीवन राजनीतिक था। इस कालमें उसे अनेकानेक संकटों और कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। जैनग्रन्थोंमें कुमारपालके भाग्योदय तथा उसको हेमचन्द्र द्वारा दी गयी सहायताके जो विवरण मिलते हैं, उससे इसमें सन्देह नहीं रह जाता कि जैनमुनि हेमचन्द्रने कुमारपालको महान् सहायता प्रदान की थी। जिस समय कुमारपाल आश्रयविहीन हो अज्ञातवास तथा असहायावस्थामें इधर-उधर भ्रमण कर रहा था, उस समय न केवल हेमचन्द्रने उसकी सहायता की, अपितु उसका पथ-प्रदर्शन भी किया। वस्तुतः उस समय जैनमुनि श्रीहेमचन्द्रके आदेशसे ही उदयनने राजा सिद्धराज जयसिंह द्वारा शत्रु समझे जानेवाले कुमारपालकी सहायता की। उदयनके यहाँ कुमारपालके लिए न केवल शरण तथा भोजनकी व्यवस्था हुई अपितु उसने कुमारपालको धनादिकी सहायता देकर मालवा भेजा। हेमचन्द्राचार्यने ही भविष्यवाणी की थी कि कुमारपाल गुजरातका भावी राजा होगा तथा सिद्धराज जयसिंहके पश्चात् उसका उत्तराधिकारी और सिंहासनाधिकारी होगा। जिन संकट तथा

---

[1] आइने-अकबरी : खंड २, पृ० २६३।

विषय परिस्थितियामें कुमारपाल वेश परिवर्तनकर विभ्रमित भ्रमण कर रहा था उनमें यदि जनमुनि हेमचन्द्रका प्रेरणा पथप्रदर्शन और सहायता न मिली होती तो सम्भवत उसके राजनीतिक जीवनकी विकासधारा कुछ और ही होती।

अणहिलपुर (पाटन) आगमन

सतत सात वर्षों तक साधु वेशम अनकानक आपत्तिया और विपत्तिया का सामना करता हुआ कुमारपाल अपनी पत्नी सहित जब विक्रम सवत ११९९म मालवाम था तो उसे सिद्धराज जयसिंहके देहान्तका समाचार विदित हुआ।[1] वह तत्काल ही राजगद्दीपर अधिकार करन अणहिलपुर लौटा। प्रबधचिन्तामणि तथा प्रभावकचरित्र दोनोम ही यह स्पष्ट रूपस लिखा है कि जब जयसिंह सिद्धराजकी मृत्यु हुई तो यह समाचार पाकर कुमारपाल अणहिलपुर वापस आया। सात वर्षों तक निरन्तर देश-देशान्तर तथा राजदरबारोंके भ्रमणस ज्ञानार्जन और अनुभवोका सग्रहकर वह अणहिलपुर (पाटन) लौटा।[2]

---

[1] प्रभाकर चरित्र अध्याय २२, श्लोक ३९१-४००।

[2] वही —प्रस्थापितो मालवके देश गत गुर्जरनाथ सिद्धाधिप परलोक गतमवगम्य —प्रबधचितामणि प्रकाश ४, पृ० ७८।

निर्वाचन और राज्याभिषेक

प्रबन्धचिन्तामणिकार मेरुतुगने लिखा है कि मालवामे जिस समय कुमारपाल अणहिलपुर लौटा तो उस समय रात्रिका समय हो गया था। उस समय वह बहुत ही भूखा था और उसके पासका सारा धन भी शेष हो गया था। उसने एक मिष्ठान्नगृहसे कुछ मागकर खाया और तब अपने बहनोई कान्हदेव (कृष्णदेव) के घर गया। कान्हदेव जयसिंह सिद्धराजके मन्त्रियोमे सर्वप्रमुख था और उसीको जयसिंहने योग्य तथा उपयुक्त शासकको सिंहासनारूढ करनेका कार्यभार सौंपा था।[1] राज्य दरबारसे आकर कान्हदेवने कुमारपालको देखा तो विशिष्ट सम्मानपूर्वक उसका स्वागत किया। फोर्वस्ने इस अवसरका वर्णन करते हुए लिखा है कि जैसे ही कान्हदेवने कुमारपालके आगमनका समाचार सुना वह राजमहलसे बाहर निकल आया और उसने कुमारपालका हार्दिक स्वागत किया और उसे आगेकर स्वय पीछे चलकर प्रासादके भीतर ले गया।[2]

राजसिंहासनके लिए निर्वाचन

दूसरे दिन प्रातकाल प्रस्तुत सेनाके साथ कान्हदेव (कृष्णदेव) कुमारपालको राजमहल ले गया। जयसिंहका उत्तराधिकारी कौन हो

---

[1] प्रबन्ध चिन्तामणि : प्रकाश ४, पृ० ७८।

[2] रासमाला : अध्याय ११, पृ० १७६।

इसी प्रश्नको हल करना था।[1] जब सभी राजदरबारी और प्रमुख सभामें एकत्र हुए तो पहले जयसिंहके एक युवक सम्बन्धी निर्वाचनके निमित्त गद्दीपर बैठाया गया। लेकिन यह युवक एकदम असावधान व्यक्तिसा प्रतीत होता था। उसने अपने पैरोंको उचित प्रकार वस्त्रसे ढका तक न था, इसलिए साधारण लोकज्ञानके अभावमें उसे राजगद्दीके अयोग्य समझा गया। उक्त पदके लिये एक अन्य व्यक्तिको भी राजसिंहासनपर बैठाया गया, किन्तु वह भी मान्य सभासदों और प्रमुखों द्वारा अनुपयुक्त ठहराया गया। जब वह सिंहासनपर बैठा तो बड़ी विनम्रताकी मुद्रामें, अपने दोनों हाथोंसे प्रणाम करता दृष्टिगत हुआ, इतना ही नहीं, जब उससे पूछा गया कि जयसिंह द्वारा छोड़े गये अठारह प्रदेशोंका शासन तुम किसप्रकार करोगे तो उसने उत्तर दिया आप लोगोंके परामर्श और आदेशसे। यह उत्तर जयसिंह सिद्धराजके शौर्यपूर्ण स्वरको सुननेवाले अभ्यस्त प्रधानोंके कानको प्रभावपूर्ण और उचित नहीं लगे। ऐसा विनम्र और प्रभावहीन व्यक्तित्व भला सर्वोच्च राजकीय पदके लिए कैसे मान्य हो सकता था ?

कान्हदेवने, जिसे ही मुख्यतः योग्य शासकका चुनाव करना था, कुमारपालको सभाके सम्मुख उपस्थित किया। कुमारपाल राजकीय गौरवके अनुरूप ज्योंही सिंहासनपर बैठा चारों ओर हर्षध्वनि छा गयी। उससे भी प्रश्न पूछा गया कि वह सिद्धराज द्वारा छोड़े गये राज्योंका शासन किस प्रकार करेगा ? इसका उत्तर उसने शब्दोंमें नहीं, अपितु पैरोंपर खड़े हो, नेत्रोंको आरक्त तथा अपनी असिको कक्षसे आधा बाहर निकालकर दिया।[2] राज्यपुरोहितने इसपर तत्काल ही राज्याभिषेक सम्बन्धी विविध संस्कार सम्पन्न किये। कान्हदेवने राजाके सम्मुख आदर तथा

---

[1] प्रबन्ध चिन्तामणि : प्रकाश ४, पृ० ७८।

[2] रासमाला, अध्याय ११, पृ० १७६।

श्रद्धाका भाव प्रदर्शित किया। राजभवन हर्षध्वनिसे गूज उठा। गुजरातके बडे बडे जागीरदारो तथा भूमिधरोने कुमारपालके सिहासनके सम्मुख नतमस्तक होकर अपनी अधीनता व्यक्त की। शखध्वनि तथा मगलवाद्यके मध्यमें इसप्रकार कुमारपाल जयसिह सिद्धराजका उत्तराधिकारी निर्वाचित और मान्य हुआ। जब सन् ११४२ ईस्वीम कुमारपाल सिहासनारूढ हुआ तो उसकी अवस्था पचास वर्षकी थी।[1]

प्रभावकचरित्रमें कुमारपालके राज्यारोहणकी एक भिन्न कथा वर्णित है। इसमें कहा गया है कि अणहिलपुर आनपर कुमारपाल एक श्रीमत सम्बा (?)से मिला। इस अज्ञात व्यक्तित्वके विषयमें कुछ प्रामाणिक पता नही चलता। श्रीमत सम्बा जैनमुनि हेमचन्द्रके पास इस अभिप्राय और आशयसे गया कि कुमारपालम, जयसिहके उत्तराधिकारी होनके विशिष्ट चिह्न एव लक्षणादि है अथवा नही। जैसे ही उसन वहा प्रवेश किया उसन देखा कि कुमारपाल मठके गद्दीदार सिंहासनपर बैठा था। हेमचन्द्रके अनुसार यह चिह्न ही वाछित राजचिह्न था। दूसरे दिन कुमारपाल अपने बहनोई कान्हदेवके साथ, जो सामन्त था और जिसके पास दस सहस्र सैनिकोकी सेना थी, राजमहल गया और राज्याधिकारी निर्वाचित किया गया।[2]

कुमारपालप्रतिबोधके रचयिता सोमप्रभाचार्यका मत है कि कुमारपालके समस्त शरीरपर राज्यचिह्न थ। इसलिए दरबारके सरदारोने ज्योतिषियो तथा ज्योतिष विज्ञानके विशषज्ञो सामुद्रिक, मौहूर्तिक, शाकुनिक तथा नैमित्तिकोंसे परामर्श कर और राज्यके प्रमुख मन्त्रियोंसे विचार विमर्श कर कुमारपालको सिहासनारूढ किया। कुमारपालका

---

[1] वही।

[2] *आयात् पुरान्तरा श्रीमत्साम्बस्य मिलतस्तत चित्त सदिग्ध राज्याप्ति* निमित्तान्वेषणादृत —प्रभावक चरित्र, २२, श्लोक ३५६, ४१७।

यह निर्वाचन सभीको इतना मनोपजनक प्रतीत हुआ कि निष्पक्ष निर्गुणाने भी इसे न्यायोचित स्वीकार किया तथा प्रसन्नता प्रकट की।[1]

राज्यारोहणकी तिथि और चुनाव

इसप्रकार सिद्धराज जयसिंहकी मृत्युके पश्चात् यद्यपि कुमारपाल बिना किसी संघर्षके सिंहासनारूढ़ हुआ, किन्तु राजगद्दीके लिए एक प्रकारका निर्वाचन संघर्ष तो अवश्य हुआ। यह बहुत सम्भव प्रतीत होता है कि सिद्धराजकी मृत्युके बाद जो स्थिति उत्पन्न हो गयी थी उसमें कुमारपालके बहनोई कान्हदवन उसके स्वत्वोंकी रक्षाका पूर्ण ध्यान रखा। राजगद्दीके तीन उम्मीदवार थ। कुमारपाल तथा अन्य दो। ये दोनों सम्भवत उसके भाई महिपाल तथा कीर्तिपाल ही थे।[2] राज्यमन्त्रि-परिषद्के सम्मुख ये दोनों भी कुमारपालके साथ ही, कौन शासक चुना जाय, इस प्रश्नका निर्णय करनेके लिए उपस्थित किये गये थे। राजसभा और प्रमुखोंके सम्मुख उत्तराधिकारीके चुनावमें ये दोनों ही राज्याधिकारके लिए अयोग्य समझे गये तथा कुमारपाल राजा निर्वाचित हुआ।

हेमचन्द्रके कुमारपालचरितमें भी इस बातका स्पष्ट उल्लेख हुआ है कि कुमारपाल अपने मित्रों तथा राज्यके प्रमुख मन्त्रियोंकी सहायतासे

---

[1] एसो जुग्गो रज्जस्स रज्जलक्खण सणाह सव्वगो
ता झत्ति ठविज्जउ निग्गुणेहि पज्जत्तमन्नेहि।
एव परुप्पर मतिऊण तह गिण्हिऊण सवाय।
सामुद्दिय मोहुत्तिय साउणिय नेमित्तिय-नराण।
रज्जमि परिट्ठवियो कुमारवालो पहाण पुरिसेहिं।
तत्तो भुवणमसेस परिओस-पर व सजाय।

कुमारपालप्रतिबोध, पृ० ५।

[2] रासमाला • अध्याय ११, पृ० १७६।

राजसिंहासनपर[1] अधिकार कर सका।[1] इसीप्रकार प्रभावकचरित्रके प्रणताका भी कथन है कि कुमारपालका राज्यपदके लिए निर्वाचन हुआ था।[2] इन स्पष्ट उल्लेखोको ध्यानमे रखकर हम इस निर्णयपर आते है कि सिंहासनारूढ होनेके पूर्व कुमारपालका वैधानिक निर्वाचन हुआ था। राज्य उत्तराधिकारके लिए वहा जो प्रतियोगिता हुई उसमें कुमारपालने अपनेको सबसे योग्य सिद्ध किया और इसीलिए राज्यके प्रधानोने उसे राजा निर्वाचित किया। यह भी कहा जाता है कि कुमारपालको राजसिंहासनारूढ करानेमें गुजरातके शक्तिशाली जैन दलका प्रमुख हाथ था। कुमारपालको दस सहस्र सेनापर प्रभुत्व रखनेवाले काह्डदेवका समर्थन प्राप्त था। यह तथ्य भी ध्यान देने योग्य है।

प्रबन्धचिन्तामणि,[3] प्रभावकचरित्र[4] तथा पुरातनप्रबन्धसग्रह[5] सभी इस तथ्यकी पुष्टि करते हैं कि कुमारपाल सामन्त कान्हदेवके साथ एक बडी सेना सहित राजदरबारमें गया था।[6] इससे स्पष्ट है कि राज्याधिकारके लिए कुमारपालके निर्वाचनके पीछे सशस्त्र सेनाका भी बल था। इसलिए वास्तविक अर्थमे उसे निर्वाचन नही कहा जा सकता। कुमारपाल-

---

[1] तत्थसिरि कुमर-वालो बाहाए सव्वओ वि धरिअ-धरो।
सुपरिट्ठव-परीवारो सुपइट्ठो आसि राइन्दो।
कुमारपाल चरित प्रथम सर्ग, पृ० १५।

[2] प्रभावक चरित्र अध्याय २२, ३५६, ४१७।

[3] प्रबन्ध चिन्तामणि . चतुर्थ, प्रकाश पृ० ७८ " प्रातस्तेन भावुकेन स्वसैन्य सन्नह्य नृपसौधमानीयाऽभिषेक"।

[4] प्रभावक चरित्र · २२ अध्याय, पृ० १९७: "तत्रास्ति कृष्णदेवाख्य सामन्तोऽश्वायुतस्थिति "

[5] पुरातन प्रबन्ध सग्रह : पृ० ३८।

[6] रासमाला, अध्याय ११, पृ० १७६।

का प्रभावशाली व्यक्तित्व, सम्पन्न जैनदलोका सहयोग और राज्याधिकारियो द्वारा प्रदत्त सैनिक सहायता, इन समस्त विशेष स्थितियोने कुमारपालको सिद्धराज जयसिंहका उत्तराधिकारी बनाने तथा राजसिंहासन प्राप्त करानेमें सहायता की, इसमे सन्देह नही।

विचारश्रेणीके अनुसार कुमारपाल मार्गशीर्ष शुद्ध चतुर्थीको सिंहासनारूढ हुआ और कुमारपालप्रबन्धके[1] मतानुसार मार्गशीर्ष कृष्ण चतुर्थीको। प्रबन्धचिन्तामणि[2] और कुमारपालप्रबन्धका अभिमत है कि राज्याभिषेकके समय कुमारपालकी अवस्था लगभग पचास वर्षकी थी। मेरुतुगकी थरावलीमें लिखा है कि मार्गशीर्ष शुद्ध चतुर्थीको श्रीकुमारपाल सिंहासनारूढ हुए।[3] इसप्रकार प्राप्य सभी विवरणोंके अनुसार राज्याभिषेकके समय सन् ११४२ ईस्वीमे कुमारपालकी अवस्था पचास वर्षकी थी।[5]

कुमारपालका राज्याभिषेक

सोमप्रभाचार्यने अपने कुमारपालप्रतिबोधमे कुमारपालके राज्याभिषेक सस्कार तथा समारोहका वर्णन किया है। यह विवरण अत्यन्त रोचक तथा तत्कालीन वातावरणकी अनुपम झाकी कराता है। इसमें कहा गया है जब कुमारपाल सिंहासनारूढ हुआ तो सुन्दर नर्तकिया नृत्य तथा गायनकलाका प्रदर्शन करने लगी। समस्त ससारमें मगलवाद्यका घोष होने लगा। राजप्रासादका प्रागण टूटी हुई मालाओसे आच्छादित हो

---

[1] वही।

[2] प्रबन्ध चिन्तामणि · चतुर्थ प्रकाश, पृ० ९५।

[3] रासमाला · ११ अध्याय, पृ० १७६।

[4] मेरुतुग : थेरावली, पृ० १४७ तथा बगाल रायल एशियाटिक सोसायटी जर्नल . खड १०।

[5] रासमाला : अध्याय ११, पृ० १७६।

गया था। उसका प्रभाव दिक् दिगान्तर तक फैल गया। इस प्रकार कुमारपालने अपना शासनकाल प्रारम्भ किया।[1] प्रभावकचरित्र, प्रबन्धचिन्तामणि तथा पुरातनप्रबन्धसंग्रहमें भी राज्याभिषेक संस्कार समारोहके विस्तृत वर्णन मिलते हैं।[2]

समसामयिक नाटक मोहराजपराजयमें यशपालने कुमारपालके राज्यारोहणके अवसरपर प्रजावर्गमें प्रसन्नताकी व्याप्त लहरका वर्णन किया है। इसमें कहा गया है कि सिद्धराजकी मृत्युसे शोकग्रस्त प्रजाके हृदयमें उसने आनन्दकी धारा प्रवाहित कर दी।[3] सिंहासनपर आसीन होनेके उपरान्त कुमारपाल उन लोगोंको नहीं भूला था जिन्होंने विपत्तिकालमें उसकी सहायता की थी। उन सभी सहायक लोगोंको सम्मानित

---

[1] तुट्टहार वहुरिय घरगण नच्चिय चारु विलास पणगण
निब्भर सद्द भरिय भुवणंतर वज्जिय मंगल तूर निरंतर।
साहिय दिसा चउक्को चउ व्विहोवाय धरिय चउ वण्णो
चउ वग्ग सेवण परो कुमर-नरिंदो कुणइ रज्जं।
कुमारपालप्रतिबोध, पृ० ५, श्लोक ६२, ६३।

[2] अभिषेकमिहैवास्य विदध्व ध्वस्तदुर्द्धिय
आसमुद्रावधि पृथ्वीपालयिष्यत्यसौ ध्रुवम्
अथ द्वादशधा तूर्यध्वनिडम्बररिताम्बरम्
चक्रे राज्याभिषेकोऽस्य भुवनत्रयमंगलम्
प्रभावक चरित्र, २२ अध्याय, पृ० १९७।

[3] एको य. सकल कुतूहलितया बभ्राम भूमंडल
प्रीत्या यत्र पतिंवर समभवत्साम्राज्य लक्ष्मी स्वयम्।
श्री सिद्धाधिपति प्रयोग विधुरामप्रीणयच्च प्रजा
कस्यासौ विदितो न गुर्जरपतिश्चौलुक्य वशध्वज·
• मोहराज पराजय : १, २८ पृ० १६।

पद प्रदान किये गये। कहा जाता है कि उस कुम्हारको जहा कुमारपालने शरण ली थी, सात सौ ग्राम चित्रकूट अथवा राजपुतानके निकट चिटोडा किलेके पास दिय गय। प्रबन्धचिन्तामणिकार मेरुतुगका कथन है कि उसके समयम उक्त कुम्हारके वशज विद्यमान थे और हीनवशमें उत्पन होनकी लज्जासे अपनेको सगरा पुकारते थ।[1] भीमसिंह जिसने कुमारपालकी जीवन रक्षा की थी उसका अगरक्षक नियुक्त किया गया। देवश्रीने राज्यारोहणके अवसरपर कुमारपालको तिलक किया और उसे देवपो[2] नामक ग्राम प्रदान किया गया था। वडौदाके कलूक वणिकको, जिसने कुमारपालको चना दिया था वातपद्र अथवा वडौदा ग्राम मिला। कुमारपालके चिरसाथी वोसारीको लतामडल अथवा दक्षिण गुजरातका राज्यपाल नियुक्त किया गया था।

राज्याभिषेकके पश्चात् कुमारपालने अपनी पत्नी भोपालदेवीको पटरानी बनाया। अपने सबसे पुराने समर्थक तथा प्रारम्भिक सहायक उदयनके पुत्र भागवत अथवा वहडको उसन अपना महामात्य (प्रधान सचिव) नियुक्त किया तथा अलिगको महाप्रधान बनाया।[3] उदयनका दूसरा पुत्र अहड या अर्पभट्ट कुमारपालके आदेशानुसार न चला तथा उसके अधीन न रहा।[4] वह साभरप्रदेशके राजाके यहा नौकरी करनके निमित्त भाग गया।[5]

---

[1] आलिग कुलालाय सप्तशती ग्राममिता विचित्रा चित्रकूटपट्टिका ददे। प्रबन्ध चिन्तामणि, चतुर्थ प्रकाश, पृ० ८०।

[2] कुमारपाल प्रबन्धके अनुसार धवलक्का अथवा धोलकर।

[3] कुमारपालप्रतिबन्धमें लिखा है कि उदयन महामात्य तथा भागवत सेनापतिके पदपर नियुक्त किये गये थे। उदयनके सबसे छोटे पुत्र सोल्लाने राजनीतिमें भाग नहीं लिया।

[4] रासमाला, अध्याय ११, पृ० १७७।

[5] साभरके अणक या अरुणोराजाने, कहते है कुमारपालकी बहनसे

कुमारपाल, जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, पचास वर्षकी अवस्थामें राजगद्दीपर बैठा।[1] अपने प्रारम्भिक जीवनमें विभिन्न देशों और राज्य-दरबारोंमें भ्रमणके फलस्वरूप अर्जित अनुभवोंके कारण, कुछ कालके अनन्तर ही कुमारपाल तथा उसकी राज्यसभाके अनेक पुराने उच्च अधिकारियोंमें प्रशासन सम्बन्धी नीति विषयक मतभेद उत्पन्न हो गया।[2] पुराने मन्त्रियोंने अनुभव किया कि इतने योग्य तथा प्रभावशाली शासकके अधीन होनेके परिणामस्वरूप उनका समस्त प्रभाव एवं प्रभुत्व समाप्त हो गया है। इसलिए उन्होंने राजाकी हत्या करने और अपने प्रभावमें रहनेवाले शासकको राजगद्दीपर बैठानेकी मन्त्रणा की। इसप्रकार सभी सरदारोंने मिलकर यह षड्यन्त्र रचा कि कुमारपालकी हत्या कर दी जाय। इस षड्यन्त्रको कार्यान्वित करनेके लिए उन्होंने, उस नगर द्वारपर हत्यारोंको एकत्र किया, जिससे उसी रात्रिको कुमारपाल प्रवेश करनेवाला था। किन्तु "पूर्वजन्मकृत सुकृतोंके फलस्वरूप" इस षड्यन्त्रका आभास कुमारपालको समय रहते लग गया और वह कार्यक्रममें पूर्व निश्चित मार्गसे न आकर दूसरे मार्गसे नगरमें आया। इसके पश्चात् कुमारपालने षड्यन्त्रकारियोंको मृत्युदंड दिया।[3]

थोड़े कालके पश्चात् ही कान्हदेवने, जिसने कुमारपालको राज-सिंहासनपर आसीन कराया था, अपनी सेवाओंको अत्यधिक बहुमूल्य समझकर, कुमारपालके प्रति अशिष्ट व्यवहार करना प्रारम्भ किया।

विवाह किया था। बहनके साथ दुर्व्यवहार करनेपर कुमारपालने उससे युद्ध किया। इसी नामके कुमारपालकी चाचीके पुत्र, बघेल वंशके पूर्वज तथा भीमपल्लीके प्रधानसे उक्त अर्णोराजाका कोई सम्बन्ध नहीं है, यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये।

[1] रासमाला : अध्याय ११, पृ० १७६।

[2] प्रबन्ध चिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश, पृ० ७८।

[3] वही।

यही नही, कान्हदेव कुमारपालकी पूर्वदशा तथा उसकी वशोत्पत्तिका उल्लेख कर राज्यसत्ताकी स्पष्ट अवज्ञा करने लगा। कुमारपालने जब इसका विरोध किया तो उसे और भी अशिष्ट उत्तर सुनना पड़ा। थोडे दिनोंके बाद कुमारपालने जब यह भलीप्रकार अनुभव कर लिया कि कान्हदेव सदा अवज्ञा करनका ही निश्चय कर चुका है तो उसने उसे भी मृत्युदड दिया। इस सम्बन्धम मेरुतुगने लिखा है कि कुमारपालने कान्हदेवसे अपनी आलोचनाए, व्यक्तिगत भेट-मुलाकात तक ही सीमित रखनेकी बात कही, किन्तु कान्हदेवके अपमानजनक व्यवहारका अन्त होते न देख अन्तमे उसकी आँख निकलवाकर उसे घर भिजवा दिया।[1] अवज्ञाके परिणामका यह उदाहरण उसकी राज्यसत्ताको सुदृढ करनेम बहुत प्रभावकारी सिद्ध हुआ और उस दिनसे फिर सभी सामन्त राजाज्ञाकी अवहेलना करनेका साहस न कर सके। उन्हे भलीप्रकार यह तथ्य समझम आ गया कि इस भावनासे दीपकको अगुलीसे स्पर्श करना भ्रमपूर्ण है कि हमने ही इसे ज्योतित किया है, इसलिए इसके प्रति अनुचित व्यवहारसे भी हमारा हाथ न जलेगा। और ठीक यही बात राजाके प्रति भी है।[2] अवज्ञा तथा अशिष्टताके प्रति कुमारपालके इन कठोर निश्चयो तथा दडोने, सभी प्रदेशो तथा अधीनस्थ राजाओपर उसका प्रभुत्व स्थापित कर दिया।[3]

कुमारपाल द्वारा उपाधिधारण

प्राचीनकालसे राजा-महाराजा अपनी राजशक्तिके प्रभाव और प्रतीक रूपम विभिन उपाधिया धारण किया करते है। ब्राह्मणोम

---

[1] वही, पृ० ७९।

[2] वही। आद्यो मयैवायमदीपि नून न तद्दहेन्मामावहेलितोऽपि। इति भ्रमादङ्गुलिपर्वणापि स्पृश्येत नो दीप इवावनीप.।

[3] वही। इति विमृशद्भि समन्तत. सामन्तैर्भयभ्रान्तचित्तैस्ततः प्रभृति स नृपति. प्रतिपदः सिषेवे।

कहा गया है कि पारमेष्ठ्यम्, राज्य, महाराज्य तथा स्वराज्यकी उपाधिया देवलोककी है, किन्तु शिलालेखो तथा उत्कीर्ण लेखोके अध्ययन और विश्लेपणसे ज्ञात होता है कि मर्त्यलोकके राजा-महाराजा भी इनमसे अधिकाश उपाधिया धारण किया करते थे। इस प्रकार ये उपाधिया केवल देवलोकके सम्राटो तथा शासको तक ही सीमित न थी।[1] पहले ये उपाधिया गुणोकी प्रतीक थी। बादमे ये किसी राज्य अथवा राजाकी वार्षिक आयकी अर्थबोधक हो गयी। शुक्रनीतिमें इन उपाधियोंके क्रमिक अर्थका विशद विवरण है।[2]

कुमारपालके सभी उत्कीर्ण लेखोमें अनेकानेक विशद् उपाधिया मिलती है, जिनसे उसकी महानशक्ति, शौर्य और सत्ताका बोध होता है। विभिन्न शिलालेखो तथा ताम्रपत्रोम कुमारपालकी निम्नलिखित उपाधियोका वर्णन मिलता है—कुमारपालको सभी राजाओमें सर्वशक्तिमान कहते हुए "समस्त राजावली"[3]की उपाधि दी गयी है। वह शिवभक्त "उमापति-वरलब्ध"[4], "परम भट्टारक"[5], "महाराजाधिराज", "परमेश्वर"[6], चक्रवर्ती,[7] गुर्जरधराधीश्वर[8] परमार्हत चौलुक्य[9]की विभिन्न उपाधियोंसे भी विभूषित किया गया था।

निश्चय ही कुमारपालकी ये उपाधिया उसकी महान राजसत्ता और उसके प्रभाव द्योतक हैं। इनमेंसे एक उपाधि निज भुज विक्रम रणागण

---

[1] मॅक्समूलर : वैदिक परिशिष्ट, चतुर्थ खड।

[2] शुक्रनीति : १ : १८४-७।

[3] गाला शिलालेख : पूना ओरियन्टलिस्ट, खड १, उपखड २, पृ० ४०।

[4] वही।

[5] जालोर शिलालेख : इपि० इडि० खड ९, पृ० ५४, ५५।

[6] वही।

[7] ए० एस० आई० डब्लू० सी०, १९०८, ५१, ५२।

[8] इपि० इडि० खड ९, पृ० ५४, ५५।

[9] वही।

विनिर्जित शाकंभरी भूपाल, (उसने समरभूमिमे शाकंभरी नरेशको पराजित किया था)का तो कुमारपालके अनेक शिलालेखोंमे उल्लेख हुआ है।[1]

इसप्रकार स्पष्ट है कि कुमारपालकी उपाधियां अत्यन्त विशद तथा महान सत्ताव्यक्त करनेवाली थी। और इनसे यह भी स्पष्ट है कि कुमारपाल अपने समयका एक महान राजा हो गया है। कुमारपालकी वीरता, उसकी महान राजकीय सत्ता, उसका साहित्य, संस्कृति तथा कलासे प्रेम उक्त उपाधियोंके अनुरूप भी रहा है, इसमे सन्देह नही। गुजरातके चौलुक्योंके पूर्व उत्तरीभारतमें गुप्तवंश तथा पुष्यभूति राज्यवंशकी महान राज्यशक्ति थी। गुप्तवंशके राजाओंने भी परमभट्टारक महाराजाधिराज जैसी उपाधियां ग्रहण की थी। इसप्रकार राजा-महाराजाओं द्वारा उपाधि ग्रहणकी प्रथा तथा परम्परा बहुत प्राचीन चली आ रही थी। अतः यह स्वाभाविक ही था कि महान विजेता कुमारपाल, जिसके समयमें गुजरातके चौलुक्योंकी राजशक्ति चरम उत्कर्षपर पहुंच गयी थी, प्राचीन राजकीय परम्परानुसार विशद उपाधियां ग्रहण करता।

गुर्जराधिप चौलुक्य कुमारपालकी विभिन्न उपाधियोंके विवेचन तथा विश्लेषण करनेपर हम इस निष्कर्षपर पहुंचते हैं कि उसने "समस्त राजावली"की उपाधि इसलिए ग्रहण की क्योंकि वह संघटित तथा पंक्तिबद्ध राजाओंका प्रतीक था और उनमें सर्वशक्तिशाली था। महाराजाधिराज, परमेश्वर, परमभट्टारक तथा चक्रवर्ती उपाधियां उसकी व्यापक और विशद राजकीय सत्ताकी द्योतक थी। 'निज भुज विक्रम रणांगण विनिर्जित शाकंभरी भूपाल' उपाधि कुमारपाल द्वारा रणभूमिमें शाकंभरी नरेशको पराजित करनेकी घटनाका स्मारक है और अन्तमे "उमापति वरलब्ध" तथा 'परमार्हत चौलुक्य" क्रमशः उसकी शिवभक्ति तथा जैनधर्मके प्रति असीम प्रेम एवं श्रद्धाभक्तिकी परिचायक है।

---

[1] ए० एस० आई० डब्लू० सी०: १९०८-५१-५२।

सैनिक अभियान और साम्राज्य विस्तार

गुजरातके इतिहासकारोंका अभिमत है कि कुमारपाल अपने पूर्वजोंकी भाँति महान योद्धा था। जयसिंहसूरिके कुमारपालचरितमें उसके दिग्विजयका विशद वर्णन मिलता है। इस ग्रन्थके सम्पूर्ण चौथे सर्गमें कुमारपालके विजयी सैनिक अभियानोंका विस्तृत उल्लेख है। इसमें कहा गया है कि कुमारपाल पहले जावालपुर[1] (आधुनिक जालोर) पहुँचा। यहाँके नायकने उसका स्वागत किया। जावालीपुरसे कुमारपाल सपादलक्ष प्रदेशपर आक्रमण करनेके लिए आगे बढ़ा। सपादलक्षके (शाकम्भरी) राजा अरुणोराजाने जो कुमारपालका बहनोई भी था, उसका अत्यन्त आदर सत्कारपूर्वक अर्चन किया। यहाँसे कुमारपालने कुरुमण्डलकी दिशामें प्रस्थान किया और मन्दाकिनी (गंगा)के तटपर जाकर रुका। इसके अनन्तर गुर्जरनरेश कुमारपाल मालवाकी ओर अग्रसर हुआ। मालवाकी दिशामें सैनिक अभियानके मध्यमें चित्रकूटके अधिपतिने उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट की। अवन्ती देश पहुँचकर कुमारपालने इस प्रदेशके शासकको बन्दी बनाया। इसके बाद उसके सैनिक अभियानकी दिशा नर्मदा तटके किनारे-किनारे हुई। रेवत्तूरमें थोड़ा विश्राम करनेके पश्चात् उसने नदी पार की तथा आभीर-विषयमें प्रवेशकर प्रकाशनगरीके अधिपतिको अधीनस्थ होनेके लिए बाध्य किया। कुमारपालका सुदूर दक्षिण

---

[1] कहीं कहीं "जावालीपुर" उच्चारण है। डी० एच० एन० आई० : खंड २, पृ० ९८२।

अभियान विन्ध्य पर्वतोंके कारण अवरुद्ध रहा। फिर भी उसने इस क्षेत्रके छोटे-छोटे ग्रामपतियोंसे कर वसूला तथा पश्चिम दिशाकी ओर मुड़कर लाटप्रदेशके अधिपतिको अपने अधीनस्थ किया।

लाटप्रदेशसे कुमारपाल पश्चिमोत्तर दिशामें आगे बढ़ा तथा उसने सौराष्ट्र विषयके प्रधानको पराजित किया। सौराष्ट्रसे उसने कच्छमें प्रवेश किया। यहाके प्रधान दामकको पराजित कर कुमारपाल पंचनदधिप नौमाघन समुद्धातासे युद्ध करने गया। उसपर विजय प्राप्त कर कुमारपाल मूलस्थान (आधुनिक मुल्तान)के राजा मूलराजपर आक्रमण करने गया। मूलराजसे भीषण युद्ध कर तथा विजयश्री हस्तगत कर चौलुक्य नरेश कुमारपाल शव प्रदेशसे जालधर और मरुस्थान होता हुआ लौटा। इसके आगे जयसिंहने शाकम्भरी नरेश अरणोराजा और कुमारपालके बीच हुए युद्धका विस्तृत विवरण दिया है। जयसिंहका कथन है कि इस युद्धका कारण, अरणोराजाका कुमारपालकी बहिन देवल्देवीके प्रति दुर्व्यवहार था। कहते हैं कि चौहान राज्यको छोड़कर वह चली आयी और अपने भाई कुमारपालसे असद्व्यवहारकी शिकायत की। इसीकारण कुमारपालने चौहान राज्यपर आक्रमण किया और अरणोराजाको रणभूमिमें पराजित किया, किन्तु अन्तमें उसे ही सिंहासनारूढ़ किया।[1]

यशपालके तत्कालीन नाटय मोहराजपराजयसे भी इस तथ्यकी पुष्टि होती है कि गुर्जराधिप कुमारपालने अपने शौर्य-वीर्यसे साभरप्रदेशके अधिपतिको पराजित किया था।[2] साभरके राजाके पक्षमें रहनेवाले एक प्रसिद्ध राजा त्यागभट्टने कुमारपालके विरुद्ध सैनिक आक्रमण किया।

---

[1] कुमारपाल चरित : जयसिंह, चतुर्थ सर्ग पृ० १७०।

[2] देवगुज्जर नरेसर परक्कमक्कंत सायंभरी भूपाल—मोहराजपराजयः चतुर्थ अंक पृ० १०६।

इस आक्रमणको कुमारपालने पूर्णतया विफल ही नही किया अपितु त्याग-भट्टको पराजित करनेमें भी पूर्ण सफलता प्राप्त की।[1]

द्वयाश्रय काव्यमें हेमचन्द्रने कुमारपाल द्वारा श्रीनगर, काची तथा तिलगानापर विजय प्राप्त कर राज्य विस्तारको व्यापक करनेकी घटनाका सक्षेपमें विवरण दिया है।[2] कुमारपालके इन सैनिक अभियानोमें पश्चिमोत्तरसे सिन्धुके राजाने भी अपनी सेवाए अर्पित की थी।[3] द्वयाश्रय महाकाव्यके प्राकृत भागमें कुमारपालके सम्मुख अन्य प्रदेशोके राजाओ द्वारा अधीनता स्वीकार करनेकी घटनाका उल्लेख बहुत ही सक्षेपमें किया गया है। जवणके राजाने कुमारपालके भयसे सभी राग रगका परित्याग कर दिया था।[4] उव्वस्वरने कुमारपालको प्रचुर धनराशिकी भटके साथ उत्तम कोटिके अश्व प्रदान किये थे।[5] वाराणसीका राजा कुमारपालसे

---

[1] धन्यस्त्यागभट कुमारतिलक शाकम्भरीमाश्रितो
योऽसौतस्य कुमारपाल नृपतेश्चौलुक्य चडामणे ।
युद्धायाभिमुखोऽभवज्जय विधि स्त्वास्य विधि प्रेक्षते
प्रोद्गर्जन विफल शरद्घन इव त्व केवल वल्गसि ॥
—मोहराजपराजय अक ५, श्लोक ३६।

[2] पहु सिरि नयर सिरीए जुज्जसि जुप्पसि तिलग लच्छीए
जुज्जसि कचि सिरीए भुजन्तो दाहिणि इण्हि ७२ ।

[3] सिंधु वई तुह चमाण वेलिल्लो तुमइ विन्न चड्डुणओ
न जिमई दिवसे जमई निसाइ पश्छिम दिसाइ तह ७३

[4] तम्बोल न समाणई कम्मग-काले वि नण्हए जवणो
विसए अ नोव भुजइ भएण तुट्ट वसुट्ट कम्मवण ७५

[5] मणि गहिअ कणय घडिआहरणे उव्वेसरो वर-तुरगे
सगलिअ लक्ख सखे पेसइ तुह रिउ असघडियो ७५

मिलनेके लिए सदा उसके प्रासाद द्वारपर अवस्थित रहा करता था।[1] मगध देशसे बहुमूल्य रत्नोंकी तथा गौड देशसे श्रेष्ठतम हाथियोंकी भेंट कुमारपालके समक्ष आती थी। उसकी सेनाने कान्यकुब्ज प्रदेशको पादाक्रान्त कर वहाके राजाको आतकित कर दिया था। दशर्न देशकी तो अत्यधिक शोचनीय स्थिति हो गयी थी। वहाका राजा भयत्रस्त होकर मृत्युको प्राप्त हुआ। इस प्रदेशका सारा धन कुमारपालके सैनिक ले गये तथा दशर्न देशके अनेकानेक सेनापति युद्धमें हत हुए। चेदिराज (त्रिपुरी, त्रिपुरा)की शक्ति तथा गर्वका मर्दन कर कुमारपालकी सेनाने रेवा नदीके तटपर अपना शिविर स्थापित किया। सैनिको द्वारा रेवा नदीके घडियालोको मारने तथा यहाके उपवनोको क्षतिग्रस्त करनेका भी उल्लेख मिलता है। इसके अनन्तर कुमारपालकी सेनाने यमुना नदी पार की और मथुराके राजापर आक्रमण किया। मथुराका राजा अपनी निर्बल स्थितिको अच्छी तरह समझता था। उसने स्वर्णराशिकी भेंट द्वारा आक्रामकोको सन्तुष्ट किया और अपने नगरकी रक्षा की। कुमारपालकी व्यापक प्रभुता तथा महत्ताका परिचय इस तथ्यसे भी मिल जाता है कि "जगलराज", "तुर्क मुसलमानोका शासक" तथा "दिल्लीके सम्राट" भी उसकी प्रशसा और प्रशस्ति किया करते थे। षष्ठ सर्गके अन्तमें कविने जगलराजको कुमारपालकी प्रशस्ति करते हुए अकित किया है।[2]

---

[1] हरिस मुरिआणणो सो महि मडण कासि-रोडयोराया
टिविडिक्कइ तुह वारं हय चिंचिअ हत्थि चिंचइअं :७६:

[2] नीपाइअ जय कज अविअट्टिअ विक्कमं बलं तुज्झ
अविलोहिअ जय मदुराहिवस्स फंसायही विजयं :८८:
अविसंवाइ परिक्खा तणु पक्खोडण झडन्त पंसु कणा
णीहरिअ नक्क चक्कं तुट्ट तुरधा जंउणमुत्तिन्ना :८९:

चौहानोंके विरुद्ध युद्ध

द्वयाश्रय काव्यमें कुमारपाल तथा अण अथवा अणकसे युद्धका जो वर्णन मिलता है, वह भिन्न है। इसमें कहा गया है कि उदयनके एक दूसरे पुत्र वहडने, जो सिद्धराज जयसिंहका अत्यन्त विश्वासपात्र था, कुमारपालके अधीनत्व और आदेशोंपर कार्य करना अस्वीकार कर दिया। वहड कुमारपालकी सेवामें न रहकर, नागोरके राजा "अण" या जिसे मेरुतुगने "अणक" कहा है, के यहा चला गया। अणो या अणक बीसलदेव चौहानका पौत्र था। लक्षग्रामोंके राजा "अण"ने जब सिद्धराज जयसिंहकी मृत्युका समाचार सुना तो उसने सोचा कि नये और निर्बल सिंहासनाधिकारी कुमारपालके नेतृत्वमें इस समय गुजरातकी सरकार है। अब अपनेको स्वतन्त्र करनेका उपयुक्त समय आ गया है। इतना ही नही, अणने किसीसे कुछ प्रतिज्ञा करा और किसीको धमकी देकर, उज्जयनीके राजा वल्लाल तथा पश्चिमी गुजरातके राजाओंसे मैत्री कर ली। कुमारपालके गुप्तचरोंने उसे सूचना दी कि अणराजा सेना लेकर गुजरातके पश्चिमी सीमान्तकी दिशामें अग्रसर हो रहा है। उसकी सेनामें अनेक सेनापति विदेशी भाषाओंके भी ज्ञाता थे। अण राजाको कुयागम (कुठकोट)के राजाका सहयोग मिल गया तथा अणहिल्वाडेकी सेनाका एक सैनिक वहड भी उसके पक्षमें जा मिला था। उज्जयिनीराज देश-देशान्तरमें भ्रमणशील व्यवसा-

---

रिउ अक्कन्दावणयं अंखिजमाण हयमजूरिएभकुल
अविसूरन्त चमूवं पत्तं मद्दुराइ तुह सेन्न ९०:
सगलिल अन्ल जस भर जगल वइणोवसप्पिउ दिण्णा
तुह रिउ भलावण घण पयाव सतप्पि एण गया :९४:
तइ पेल्लिओ तुरुक्को टिल्लो नाहो गलत्थिओ तह य
अड्डक्खिओ अ कासी रिउ घत्तण छुह महाएस .९६:
द्वयाश्रय काव्य : सर्ग चतुर्थ, पृ० २१३, २१६।

यियोंसे गुजरातकी वास्तविक स्थितिसे परिचित हो चुका था। उसने मालवनरेश बल्लालसे एक सैनिक अभिसन्धि कर ली थी। उसने सैनिक आक्रमणकी योजना बनायी थी कि जैसे ही अणराजा आक्रमण कर प्रगति करेगा, वह पूर्व दिशाकी ओरसे गुजरातके विरुद्ध युद्ध घोषित कर देगा। कुमारपालको जब यह स्थिति विदित हुई तो उसके शोकका पारावार न रहा।

कुमारपालका सैनिक संघटन

इस अवसरपर कुमारपालकी सहायता तथा सहयोगके लिए भी अनेकानेक राजा आगे आये। कुमारपालको कूली जातिके लोगोंका भी सहयोग प्राप्त हुआ जो प्रसिद्ध अश्वारोही माने जाते थे। पहाड़ी जातिके लोग भी चारों ओरसे कुमारपालके साथ आ गये। कुमारपालके अधीनस्थ कच्छकी जनताने भी उसका साथ देना निश्चय किया। कच्छके साथ ही सिन्धुकी जनता भी सहयोगके लिए प्रस्तुत हो गयी। जैसे ही कुमारपाल आबूकी ओर अग्रसर हुआ उसके साथ मृगचर्मका वस्त्र धारण करनेवाले पहाडी भी आ मिले। आबूका परमार राजा विक्रमसिंह, जो जालधर देशकी जनताका नेता था, कुमारपालके साथ हो गया और उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। अणराजाने कुमारपालके आगमनकी सूचना पाकर अपने मन्त्रियोंके परामर्शकी अवहेलना कर युद्ध करनेका निश्चय किया। किन्तु अभी उसकी सेना युद्धके लिए प्रस्तुत भी न थी कि रणभेरी सुनाई पडी और गुजरातकी सेना पर्वतोंकी ओरसे प्रवेश करने लगी।

मेरुतुंग तथा हेमचन्द्र दोनों ही इस बातपर एकमत हैं कि सपादलक्षके राजाने ही पहले आक्रमण किया था। मेरुतुंगका यह भी कथन है कि गुजरातपर आक्रमण करनेके लिए चौहान नरेशको वहडने ही प्रेरणा तथा प्रोत्साहन दिया था। वहड कुमारपालके विरुद्ध युद्ध करना चाहता था।

उसने उन प्रदेशोंके सरकारी अधिकारियोंको बहुमूल्य भेंट तथा रिश्वत देकर अपनी ओर मिला लिया था। वहडने सपादलक्षके राजाको साथ लाकर गुजरातके सीमान्तपर एक शक्तिशाली सेना खड़ी कर दी थी।[१] किन्तु वहडके ये सभी प्रयत्न, जिनके द्वारा वह कुमारपालको पराजित तथा पदाक्रान्त करनेकी योजना बना चुका था, एक विचित्र घटनाके कारण विफल हो गये। कुमारपालके पास रणभूमिमें कौशल प्रदर्शित करनेवाला कल्हपचानन नामका एक अत्यन्त श्रेष्ठ हाथी था। इस हाथीके महावतका नाम कालिग था। इसे वहडने धन देकर अपनी ओर मिला लिया था। संयोगसे एक बार कुमारपालकी डाट फटकार उसे बहुत अप्रिय लगी और वह अपना कार्य छोड़कर चला गया। उसके रिक्त स्थानपर सामल नामका हस्तिचालक, जो अपने कौशल तथा ईमानदारीके लिए प्रसिद्ध था, नियुक्त किया गया। रणक्षेत्रमें जब कुमारपाल तथा अर्णककी सेनाका संघर्ष प्रारम्भ होनेवाला ही था कि कुमारपालके गुप्तचरोंने सूचना दी कि उसकी सेनामें असन्तोष फैला दिया गया है। इस विषम घड़ीमें वीर कुमारपाल विचलित नहीं हुआ बल्कि ठीक इसके विपरीत साहस एवं दृढ़तासे अर्णकसे अकेले ही सामना करनेका निश्चय किया। उसने सामलको अपना हाथी आगे बढ़ानेकी आज्ञा दी। यह देख कि सामल उसकी आज्ञाका पालन करनेमें द्विधासे काम ले रहा है कुमारपालने उसपर विश्वासघातीका आरोप लगाया। सामलने इस आरोपको अस्वीकार करते हुए अपनी कठिनाईका स्पष्टीकरण करते हुए कहा कि विपक्षी दलकी सेनामें वहड भी हाथीपर सवार है। इसकी आवाज ऐसी है, जिससे हाथी भी आतंकित हो जाते हैं। उसने अपने वस्त्रोंसे हाथीके दोनों कानोंको बांधकर उक्त बाधा हटा दी और उसके अनन्तर कुमारपाल रणभूमिमें अर्णकके विरुद्ध अग्रसर हुआ।

---

[१] प्रबन्ध चिन्तामणि : पृष्ठ १२०।

अरुणोराजाकी पराजय

बहडकी हाथीके महावतके परिवर्तनकी स्थिति ज्ञात न थी। उसे पूर्ण विश्वास था कि हस्तिचालकसे अवश्य सहायता मिलेगी। यह सोचकर उसने अपना हाथी कुमारपालकी ओर बढ़ाया और हाथमें तलवार लेकर उसके मस्तकपर चढ़ जानेका प्रयत्न किया। सामलने इस आक्रमणकी चालको तत्काल समझ लिया और अपने हाथीको तनिकसा पीछे हट जानेका आदेश दिया। इस प्रकार बहड दो हाथियोंके मध्य गिर पडा और कुमारपालके पैदल सैनिकों द्वारा पकड़कर बन्दी बना लिया गया।[1] इसके अनन्तर तत्काल कुमारपाल अरुणोकी ओर बढा। उसके निकट जाकर सिद्धराजके उत्तराधिकारी कुमारपालने कहा "जब तुम इतने वीर योद्धा थे तो सिद्धराजके सम्मुख क्यों नतमस्तक हुए थे। पूर्वकालमें तुम्हारा वह कार्य निश्चय ही बुद्धिमत्तापूर्ण था। यदि अब मैं तुम्हें पराजित नहीं करता तो सिद्धराजकी धवल कीर्तिका प्रकाश मन्द पड़ता जायगा।"[2]

इस प्रकार दोनों राजाओंमें युद्ध हुआ। दोनों पक्षोंकी सेनाओंमें भी भीषण रण सघर्ष हुआ। कुमारपालने अरुणोराजाको क्षत्रियोंकी भांति युद्ध करनेकी चुनौती देकर ठीक उसके मुखपर ही बाण छोडा। बाणसे आहत होकर जब वह हाथीके सामने गिर पडा तो कुमारपालने अपने परिधानको वायुमें प्रसन्नतापूर्वक फहराकर विजयकी घोषणा की। जब अरुणोराजाके पक्षके दोनों नेता इस प्रकार पराजित हो गये तो सभीने कुमारपालकी अधीनता स्वीकार कर ली। कुमारपालको इस युद्धमें पूर्ण विजय प्राप्त हुई।

---

[1] प्रभावक चरित्र ' अध्याय २२, पृ० २०१, २०२।

[2] रासमाला : अध्याय ११, पृ०१७७।

साहित्य और शिलालेखोंमें वर्णन

कुमारपालकी अरुणोराजापर इस विजय घटनाका उल्लेख वसन्त विलास[1] वस्तुपाल तेजपाल प्रशस्ति[2] तथा सुकृत कीर्तिकल्लोलिनीमें[3] हुआ है। साहित्यमें उल्लिखित कुमारपाल तथा अरुणोराजाके इस युद्धका शिलालेखो और उत्कीर्ण लेखोमे भी वर्णन है। किराडू[4] (वि० स० १२०९) तथा रतनपुर प्रस्तर लेखोंमे इस बातका स्पष्ट उल्लेख है कि नाडुल्य चौहानोका प्रदेश कुमारपालके साम्राज्यके अन्तर्गत कर लिया गया था। भटुड शिलालेख[5] में यह अंकित है कि विक्रम सवत १२१०-१६मे कुमारपालका एक दण्डनायक नाडुल्य प्रदेशमे नियुक्त किया गया था। अनहिलपाटक तथा शाकभरी राज्योके मध्य चौहानोका नाडुल्य राज्य

---

[1] गायकवाड ओरियटल सिरीज : सख्या ७, ३, २९।

[2] जैन धर्मसूरीचकार सहसाऽर्णोराजमत्रासयद्
बाणैः कुंकणमग्रहोदपि गुरुचक्रेस्मरध्वसिनम्
इत्य यस्य परिक्षतक्षितिभृतो हसावलीनिर्मलै
रामस्येव निरन्तर नवयशः पूरैर्दिश. पूरिताः
गा० ओ० सिरीज : सख्या १० : परिशिष्ट १, पृ० ५८।

[3] कथ्यन्ते न महीभृतः कति महीयासो महीशेखरा
माहात्म्य स्तुमहे तु हेतुनिगमा देतस्य चेलोहरम्
मर्यादा मतिलघयन् रसल सद्यदद्वाहिनी वाहितो
ऽर्णो राजः स जगाम जागल महीभागेषु भग्नोन्नतिः
गा० ओ० सिरीज : सख्या १० : परिशिष्ट २, पृ० ६७।

[4] इपि० इडि० : खड ११, पृ० ४४।

[5] प्राकृत सस्कृत शिलालेख : भावनगर पुरातत्व विभाग, २०५-७।

[6] आर्कलाजिकल सर्वे आव इडिया वेस्टर्न सर्किल, १९०८, ५१-५२।

था। चौलुक्योंकी राज्यसीमामें नाडुल्य निश्चित रूपसे सफल युद्ध द्वारा ही मिलाया गया होगा। इस तथ्यका समर्थन कुमारपालके चित्तौरगढ़ उत्कीर्ण लेखसे भी होता है, और जिसका काल वि० सं० १२२० है।[1] इस उत्कीर्ण लेखमें यह लिखा हुआ है कि कुमारपालने सपादलक्ष प्रदेशको पदाक्रान्तकर शाकंभरी नरेशको पराजित किया और उदयपुर चित्तौरके सालिपुरा स्थानमें अपना विशाल शिविर स्थापित किया।[2] वडनगर प्रशस्तिके उत्कीर्ण लेखमें कुमारपालका उल्लेख करते हुए उसकी दो सैनिक विजयोंकी अत्यधिक प्रशंसा की गयी है। इनमें एक तो राजपूतानाके शाकंभरी साभर प्रदेशके अधिपति अर्णोराजा (श्लोक १७)पर है और दूसरी विजय पूर्व दिशाके मालवराजपर है। इसी प्रशस्ति द्वारा हमें विदित होता है कि विक्रम संवत् १२०८के पूर्वमें ये युद्ध समाप्त हो गये थे।[3] अब तक नाडोल दानपत्रके आधारपर यही कहा जा सकता था कि अर्णोराजा वि० सं० १२१३के पूर्व विजित हो गया था।[4]

इस घटनाका उल्लेख कुमारपालके वि० स० १२०७के चित्तौरगढ़ शिलालेखमें भी हुआ है।[5] इसमें कहा गया है कि उक्त घटना अभी हालकी है। कुमारपालके पाली शिलालेखमें जो वि० सं० १२०९का है, यह अंकित है कि उसने शाकम्भरी नरेशको पराजित किया था।[6] अर्णोराजाको

---

[1] वही, १९०५-६, ६१।

[2] इस शिलालेखमें वर्णित "सालिपुरा" नामक स्थानका जहाँ कुमारपालने शिविर स्थापित किया था, अभी तक ठीक ठीक पता नहीं लग सका है। इपि० इंडि० खंड २, पृ० ४२१-२४।

[3] इपि० इंडि० खंड १, पृ० २९६, श्लोक १४, १८।

[4] इंडि० एँटी० : खंड ४१, पृ० २०२-३।

[5] इपि० इंडि० पृ० ४२१, सूची, संख्या २७९।

[6] आर्कलाजिकल सर्वे आव इण्डिया, वेस्टर्न सरकिल, १९०७-८ :

पराजित करनेपर कुमारपालको जो उपाधि दी गयी थी, उसका अन्य उत्कीर्ण लेखोंमें भी उल्लेख है।[1]

मालव विजय

शाकंभरीके चौहानोंसे जो युद्ध हुआ, उसके कारण कुमारपालको पूर्वीय सीमान्तपर दो और युद्ध करने पड़े। द्वयाश्रय काव्यमें लिखा है कि अर्णोराजा पर विजय प्राप्त करनेके पश्चात् कुमारपालको यह परामर्श दिया गया कि वह मालवाधिपति वल्लालको पराजितकर यश अर्जन करे। कुमारपालके मन्त्रियोंने उसे मालवापर आक्रमण करनेका परामर्श क्यों दिया, इसका उल्लेख हेमचन्द्रने एक अन्य स्थलपर किया है। उसने लिखा है कि अर्णोराजा गुजरातके सीमान्तकी ओर बढ आया और उसने अवन्ति नरेश वल्लालसे अभिसन्धि कर ली थी। इसके अन्तर्गत यह योजना बनी कि उत्तर तथा पूर्व दोनो दिशाओंसे चौलुक्य राज्यपर एक साथ ही आक्रमण किया जाय।[2] जब चौलुक्य नरेश कुमारपाल पाटन लौटा तो उसे यह समाचार मिला कि विजय तथा कृष्ण जिन्हे उसने वल्लालका प्रतिरोध करनेके लिए भेजा था (और स्वयं अणके विरुद्ध सेना लेकर गया था) उज्जयिनी नरेशके पक्षमें जा मिले। उज्जयिनी नरेश अब उसकी राज्यकी सीमामें प्रवेशकर अणहिलपुरकी ओर अग्रसर हो रहा था।

कुमारपाल तत्काल ही अपनी सेना एकत्र कर वल्लालका सामना करनेके लिए रवाना हुआ। हाथीपर सवार कुमारपालने वल्लालपर

"....प्रौढ़ प्रताप निजभुजविक्रमरणांगण विनिर्जित शाकंभरी भूपाल श्रीमत्कुमारपाल देव"।

[1] भीमदेव द्वितीयका दान लेख वि० सं० १२६६, इंडि० एंटी० खंड १८, पृ० ११३।

[2] इंडि० एंटी० खंड ४, पृ० २६८।

प्रहार कर उसे पराजित किया।[1] वसन्तविलासमें भी वल्लालपर कुमारपालकी विजयका उल्लेख हुआ है।[2] कीर्तिकौमुदीसे विदित होता है कि कुमारपालने वल्लालका शिरच्छेद कर दिया था।[3] साहित्यके इन ग्रन्थोंमें वर्णित इस घटनाकी पुष्टि शिलालेखोंसे भी होती है। दोहाद[4] प्रस्तर स्तम्भमें जयसिंहके समयका वि० स० ११९६का एक उत्कीर्ण लेख है। इसीमें विक्रम संवत् १२०२का भी एक लेख उत्कीर्ण है। आश्चर्यकी बात यह है कि इसमें महामंडलेश्वर वपनदेवका नामोल्लेख नहीं है। दोहद क्षेत्रकी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण अवस्थितिको देखते हुए यह सम्भव है कि सन् ११४०-११४६के मध्य इसपर चौलुक्योंका अधिकार न रह गया हो। जो हो, शिलालेखके लिखनेवालेने चाहे जिस कारणसे कुमारपालका इसमें नामोल्लेख न किया हो, इसमें कोई सन्देह नहीं कि सन् ११६३ ईस्वीके कुछ पूर्व ही यह प्रदेश पुनः चौलुक्योंके अधीन आ गया था।

कुमारपालके दो उदयपुर प्रकीर्ण लेखोंमें जिनका काल क्रमशः वि० सं० १२२० तथा १२२२ है, यह स्पष्ट अंकित है कि वह अपने पूर्वाधिकारी की भांति ही पुनः मालवाधिपति भी था।[5] ये शिलालेख अणहिलपाटकके कुमारपालके समयके हैं, जो 'शाकंभरी तथा अवन्तिके अधिपतियोंको समरभूमिमें पराजित कर चुका' था। भाव बृहस्पतिकी प्रशस्तिमें भी कुमारपालको "वल्लाल गजके मस्तकपर उछलनेवाला सिंह" कहा गया है।[6] वडनगर प्रशस्तिमें भी इस बातका उल्लेख है कि चौलुक्यराजने

[1] वही।

[2] वसन्तविलास : ३, २९।

[3] बम्बई गजेटियर : खंड १, उपखंड १, पृ० १८५।

[4] इंडि० ऐंटी० खंड १०, पृ० १५९।

[5] इंडि० ऐंटी० खंड १८, पृ० ३४१-४४।

[6] भावनगर शिलालेख, पृ० १८६।

देवी दुर्गाको मालवाधिपतिका कमल मस्तक, जो उसके द्वारपर लटका दिया गया था, अर्पण कर प्रसन्न किया था।[1] इस शिलालेखसे स्पष्ट है कि वल्लाल सन् ११५१के कुछ दिन पूर्व मारा गया था।[2] ऐतिहासिक परम्परासे मालवनरेश वल्लालकी पहचान करना कठिन है। परमारोंके प्रकाशित विवरणोंकी वंशावलीमें उक्त नाम नहीं आया है। जैसा ल्यूडर्सने कहा है सम्भव है वल्लालने अचानक ही सन् ११३५-११४४ ईस्वीमें मालवाकी राजगद्दीपर अधिकार कर लेनेमें सफलता प्राप्त कर ली हो।[3] कुमारपालकी कठिनाइयोंसे लाभ उठानेके विचारसे अणहिलपाटककी गद्दीपर उसके बैठते ही वल्लालने अपनेको स्वतन्त्र घोषित कर दिया हो। इतना ही नहीं, उसने गुजरातके विरुद्ध सैनिक आक्रमण करनेवाले शाकम्भरीके चौहानोंसे सन्धि कर ली हो और अपने राज्यके परम्परागत शत्रुसे लोहा लेनेके लिए प्रस्तुत हो गया हो। वडनगर प्रशस्तिमें पूर्व दिशाके अधिपति मालव शासकपर कुमारपालकी प्रसिद्ध विजयका उल्लेख हुआ है। इसमें यह भी कहा गया है कि मालव नरेश अपने देशकी सुरक्षा करते हुए हत हुआ। उसका सिर कुमारपालके राजप्रासादके द्वारपर लटकाया गया था। उसी उत्कीर्ण लेखके आधारपर निश्चित रूपसे कहा

---

[1] इपि० इंडि० खंड १, पृ० ३०२, श्लोक १५ तथा देखिये उत्तरी भारतके राजवंशका इतिहास' खंड २, पृ० ८८६।

[2] वेरावल शिलालेखके आधारपर ल्यूडर्सका मत है कि वल्लाल सन् ११६९के पूर्व मरा होगा। इपि० इंडि० खंड ८, पृ० २०२। किन्तु वडनगर शिलालेखका मालवाधिपति ही निश्चित रूपसे बादके विवरणोंका वल्लाल रहा। इसलिए उसके निधन कालकी अवधि १८ वर्ष पूर्व निश्चित की जा सकती है।

[3] इपि० इंडि० खंड ७, पृ० २०२-८। यशोवर्मनकी अन्तिम तथा लक्ष्मीवर्मनकी प्रारम्भिक तिथियाँ।

जा सकता है कि मालवासे युद्ध विक्रम संवत् १२०८के पूर्व समाप्त हो गया था। इस उत्कीर्ण लेखकी सहायतासे हम दो बातोंका पता चलता है। एक तो यह कि जयसिंहने मालवाको पहले ही अपने गुजरात राज्यमें मिला लिया था। दूसरी बात यह कि वहां हुए विद्रोहका दमन पांच वर्ष पहले ही किया जा चुका था। कीर्तिकौमुदीके अनुसार कुमारपालने गुजरातपर आक्रमण करनेवाले मालवराज वल्लालका शिरच्छेद कर दिया था। इस संघर्षका परिणाम यह हुआ कि मालवा पुनः पहलेकी भांति अनहिलवाडके राजाओंके अधीन हो गया। भिल्साके निकट उदयपुरमें तथा उदयादित्यके मन्दिरमें अनेक प्रकीर्ण लेख मिले हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि कुमारपालने सम्पूर्ण मालवाको विजित किया था। ये शिलालेख जिस व्यक्तिने अंकित कराये हैं, उसने अपनेको कुमारपालका सेनापति कहा है।

परमारोंके विरुद्ध युद्ध

कुमारपालको अर्णोराजा चौहानके विरुद्ध आक्रमणके सिलसिलेमें जो दूसरा युद्ध करना पड़ा, वह आबूके चन्द्रावती प्रदेशके परमारोंके विरुद्ध था। कुमारपालचरितमें उल्लेख मिलता है कि जब कुमारपाल अर्णोराजासे युद्धरत था, चन्द्रावतीके अधिपति विक्रमसिंहने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया। इसलिए कुमारपालने उत्तरी शासक (अर्णोराजा)को पराजित कर चन्द्रावतीपर आक्रमण किया और इस नगरपर अपना पूर्ण अधिकार कर यहांके शासकको बन्दी बनाया।[1]

[1] द्वयाश्रय काव्य . ४, ४२१—५२ में इस आशयका कथन मिलता है कि आबूके परमार शासक विक्रमसिंहने उस समय कुमारपालका अपनी राजधानीमें स्वागत किया था, जब वह सपादलक्षके "अर्ण"के विरुद्ध युद्ध करने जा रहा था। इंडि० ऐंटी० खंड ४, पृ० २६७।

हेमचन्द्रके विवरणके आधारपर कहा जा सकता है कि जब कुमारपाल अर्णोराजाके विरुद्ध युद्ध करने जा रहा था तो आबू राज्यके शासक विक्रमसिंहका स्वागत-सत्कार मैत्रीभावका दिखावा मात्र था। बादके घटनाक्रममे हमे विदित होता है कि चन्द्रावतीके शासक विक्रमसिंहने युद्धमे अर्णोराजाका पक्ष ग्रहण किया था और कुमारपालने इसके लिए उसे दण्डित किया था। विक्रमसिंहको अनहिल्वाडेमे एकत्र बहत्तर अधीनस्थ शासकोंके सम्मुख अपमानितकर बन्दीगृह भेज दिया गया। विक्रमसिंहकी राजगद्दीपर उसके भ्रातृपुत्र यशोधवलको आसीन कराया गया।[1] इस घटनाकी पुष्टि तेजपालके विक्रम सवत् १२८७की आबू पहाडी प्रशस्तिसे भी होती है। इसमे कहा गया है कि अर्बुद परमार यशोधवलने यह विदित होते ही कि बल्लाल, चौलुक्यराज कुमारपालका विरोधी तथा शत्रु हो गया है, मालवाधिप बल्लालको तत्काल हत कर दिया।[2] प्रशस्तिके इस उल्लेखसे इस निर्णयपर पहुचा जा सकता है कि यशोधवल कुमारपालका अधीनस्थ शासक था।

कोंकणके मल्लिकार्जुनसे संघर्ष

इसके पश्चात् कुमारपालकी सेनाने, दक्षिण कोकणके राजा मल्लिकार्जुनसे युद्ध किया। उत्तरी कोकणके राजाओकी प्रकाशित सूचीसे विदित होता है कि सन् ११६० ईस्वीमें शिलाहार वश राज्यारूढ था। मल्लिकार्जुनके विरुद्ध कुमारपालको अपनी सेना क्यो भेजनी पडी, यह घटना इसप्रकार है—एक दिन कुमारपाल अपनी राजसभामे सेनापतियो तथा अधीनस्थोंके मध्य जब बैठा हुआ था तो एक भाटने मल्लिकार्जुनकी

---

[1] बम्बई गजेटियर : खड १. उपखड १, पृ० १८५।

[2] इपि० इडि० . खड ७, पृ० २१६, श्लोक ३५ तथा उत्तरी भारतके राजवशका इतिहास, खड २, पृ० ८८६ तथा ९१४।

प्रशस्ति सुनायी। इसमें मल्लिकार्जुन द्वारा राजपितामहकी उपाधि ग्रहणकी घटनाका उल्लेख था।[1] कुमारपाल यह अपमान न सह सका और सभामें चतुर्दिक देखने लगा। आश्चर्य सहित कुमारपालने देखा कि उसका सचिव आम्बड हाथ जोड़ खड़ा है।[2] राजसभा जब समाप्त हो गयी तो कुमारपालने आम्बडको बुलवाया और सभामें उसकी उक्त मुद्रा विशेषका अभिप्राय पूछा। आम्बडने कहा कि महाराजाके चारों ओर देखनेका अर्थ मैंने यही लगाया कि आप जानना चाहते हैं कि इस सभामें कोई ऐसा योद्धा है, जो मल्लिकार्जुनके असत्य अभिमानका मर्दन कर सके। इस कार्यके लिए मैं ही अपनी सेवाएं अर्पित करना चाहता हूं और इसी आशयसे मैंने उक्त भाव व्यक्त किया था। तत्काल ही कुमारपालने अपनी विशिष्ट सेनाके अधिकारियों तथा अधीनस्थोंको बुलाकर मल्लिकार्जुनके विरुद्ध युद्ध करनेके लिए आदेश दिया।

कालविनी[3] नदी पारकर तथा अनेकानेक अभियानोंके अनन्तर आम्बड अभी अपना सैनिकशिविर स्थापित ही कर रहा था कि मल्लिकार्जुनने उसपर आक्रमणकर पदाक्रान्त कर दिया। इस प्रकार पराजित होकर वह नदीके उस पार चला गया। यहां आ उसने काले वस्त्र धारण किये, सेनामें काले झंडोंसे कार्य संचालनका आदेश दिया तथा काले रंगके

---

[1] शिलाहार राजाओंमें यह उपाधि प्रचलित थी।—बम्बई गजटियर, १३, ४३७ टिप्पणी।

[2] इसका शुद्ध अम्बड है। इसका संस्कृत रूप अमरभट्ट तथा अम्बक है।

[3] यह चिकली तथा वालमारसे प्रवाहित होनेवाली कावेरी नदी है। नासिक केव इन्सक्रिप्शनमें इसी नदीका नाम "कारबेना" अंकित है। बम्बई गजेटियर, १६, ५७१। कावेरीका संस्कृत रूप ही "कालविनी" तथा "कारावेना" है। सम्भवतः पेरिप्लसने इसी कावेरीको "अकावेरी" लिखा है।

समेकी व्यवस्था की। यह सुनकर कुमारपाल उस प्रदेशम आ गया था और उसन यह स्थिति देखी। उसे विदित हुआ कि यह आम्वडका ही सैनिक शिविर है। पराजयसे आम्वडका जैसा अपमान हुआ था, उससे लज्जित होकर उसने काले वस्त्रोको धारण किया था। कुमारपाल अपने पराजित सेनापतिकी इस भावनासे अत्यधिक प्रभावित हुआ और उसन शक्तिशाली राजाओ सहित दूसरी सेना आम्वडकी सहायताके लिए भेजी। इसप्रकार साधनसम्पन्न होकर आम्बडने पुन कावेरी नदी पारकर, एक मार्गका निर्माण किया और मल्लिकार्जुनकी सेनापर आक्रमण किया। आम्वडका ध्यान मल्लिकार्जुनपर ही विशेष रूपसे था। आम्वड अपन हाथीकी सूडसे उसके मस्तकपर चढ गया और मल्लिकार्जुनको युद्धके लिए ललकारा। युद्धमें उसन मल्लिकार्जुनको नीचे गिराकर उसका शिरच्छेद कर दिया।[1] जिन अधीनस्थ राजाओको सहायताके लिए कुमारपालन भजा था, वे नगरका लूटनेम लगे थे। इसप्रकार कोकणम कुमारपालके आधिपत्यकी स्थापनाकर आम्वड, अणहिलपुर लौटा। उसने राजसभामें बहत्तर राजाओकी उपस्थितिम सुवर्णराशिम मल्लिकार्जुनका सिर अभिवादन सहित कुमारपालके सम्मुख उपस्थित किया। उसन मल्लिकार्जुनके कोषागारसे प्राप्त विशाल धनराशि भी सम्मुख रख दी।[2] इसपर प्रसन्न होकर कुमारपालने मल्लिकार्जुनसे छीनी गयी "राजपितामह",

---

[1] प्रबन्धचिन्तामणिके अनुसार मल्लिकार्जुनको चौहानराज सोमेश्वरने मारा था जो उस समय कुमारपालकी राजसभामें रहता था।—जर्नल आव रायल एशियाटिक सोसायटी, १९१३, पृ० २७४-५।

[2] भृगार कोडी साडी १ माणिकउपछेडउ २ पापख उहारु। ३ सयोग सिद्धि सिप्रा ४ तथा हेमकुम्भा ३२ तथा मौक्तिकाना सेउड ६ चतुर्दन्त हस्ती १ पात्राणि १२० कोटी सार्द्ध १४ द्रव्यस्य दड। प्रबन्धचिन्तामणि: पृ० २०३।

की उपाधि आम्वडको प्रदान करते हुए उसे सम्मानित किया।[1]

मल्लिकार्जुनके समयके दो शिलालेखोंका पता चलता है, जिनकी तिथि क्रमश ईस्वी ११५८ (शक १०७८) तथा ईस्वी ११६० (शक १०८०) है। इनमेंसे प्रथम चिपलमूमें मिला है और दूसरा वेसिनमें। मल्लिकार्जुनकी पराजय तथा उसके अन्तका समय ईस्वी सन् ११६० तथा ११६२ है क्योंकि सन् ११६२में ही उसके उत्तराधिकारी अपरादित्यका शासनकाल प्रारम्भ हो जाता है। कुमारपालकी सहायता बल्लालके विरुद्ध करनेवाले अर्बुद परमार यशोधवलने इस युद्धमें भी उसकी सहायता की थी। आबूकी तेजपाल प्रशस्ति (वि० स० १२८७)में कहा गया है कि "जब यशोधवल क्रोधाविभूत होकर समरभूमिमें सनद्ध हो गया उस समय कोंकणनरेशकी रानियां अपने कमल समान नेत्रोंसे अश्रुपात करने लगी।[2] इस मल्लिकार्जुनका परिचय तथा विवरण उक्त दो शिलालेखोंमें सटीक प्राप्त होता है कि वह शीलहार राजवंशका था।[3] श्रीभगवानलालका भी मत है कि मल्लिकार्जुनका अन्त सन् ११६० तथा ११६२ ईस्वीके बीच हुआ था।[4]

काठियावाड़पर सैनिक अभियान

मेरुतुगने कुमारपालके अन्य जिस युद्धका उल्लेख किया है, वह सुमवरा या सौसरके विरुद्ध हुआ था। इस अभियानका नेतृत्व महामात्य उदयनने

---

[1] प्राकृत द्वयाश्रय काव्यमें इस सैनिक विजयका कवित्वमय वर्णन ६ठें सर्गके ५२से ७० तक श्लोकोंमें दिया गया है।

[2] इपि० इंडि० : खंड ८, पृ० २१६, श्लोक ३६।

[3] प्रबन्धचिन्तामणि, पृ० १२२-२३।

[4] बम्बई गजेटियर : खंड १, उपखड १, पृ० १८६, सुकृत कीर्ति कल्लोलिनी, गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज, खड १०, परिशिष्ट पृ० ६७।

किया था। इस युद्धमें चौलुक्य सेना पराजित हुई और उदयन घायल होकर शिविरमें पहुचाया गया। प्रबन्धचिन्तामणिमें कुमारपालके काठियावाडके एक आक्रमणका भी उल्लेख है जिसमें मन्त्री उदयन सौसर राजासे लडते लडते घायल होकर हत हुआ था।[1] श्रीभगवानलालका मत है कि यह युद्ध सन् ११४९ ईस्वी (वि० स० १२०५)के लगभग हुआ था। इसका कारण यह है कि मृत्युके पहले पालितानामें आदिनाथका जीर्णोद्धार करानेकी उसने जो प्रतिज्ञा की थी वह सन् ११५६ ५७ (वि० स० १२११) में पूर्ण हुई।[2] श्रीभगवानलालका यह भी मत है कि सौराष्ट्रका यह शासक सम्भवत गोहिल्वाड वशका रहा होगा। यह भी सम्भव है कि वह जूनागढके अधीन शासकके राजवशका हो, जो आभीर चूडासमा वशका था और मूलराज प्रथमके समयसे ही चौलुक्योंके विरुद्ध कार्यरत था। कुमारपालचरितमें इस घटनाका उल्लेख है कि अन्तमें समर या सौसर युद्धमें पराजित हुआ और उसको पुन राजगद्दीपर बैठाया गया। सुन्धा पहाडी शिलालेखसे विदित होता है कि नाडुल चौहान आल्हाह्नने सौराष्ट्रके पर्वतीय क्षेत्रोंमें होनेवाले विद्रोहोंके दमनमें कुमारपालकी सहायता की। समरको पराजित करनेमें सम्भवत इस शासककी भी सहायता कुमारपालको प्राप्त हुई थी।[4]

अन्य शक्तियोंसे सघर्ष

प्रबन्धचिन्तामणिमें मेरुतुगने कुमारपालके साभरपर एक ऐसे आक्र-

---

[1] प्रबन्धचिन्तामणि, चतुर्थ प्रकाश, पृ० ८६ "सुराष्ट्रे देशीय सउसरनामानम"।

[2] बम्बई गजटियर खड १, उपखड १, पृ० १८६।

[3] भावनगर इन्सक्रिपशन, पृ० १७२ ७३ तथा किराडू शिलालेखका अल्हणदेव।

[4] एपि० इडि० खड ११, पृ० ७१।

मणका उल्लेख किया है जो वहडके छोटे भाई चहडके नेतृत्वमे किया गया था। चहडकी अतिमुक्तहस्तता लोगोंको विदित थी किन्तु कुमारपालने परामर्श देकर उसीको सेनापतित्व करनेके लिए चुना। साभर पहुचनेपर चहडने बावरानगरके किलेको अपने अधिकार तथा नियन्त्रणमें कर लिया किन्तु उसदिन लूटपाट न की क्योंकि उसी रात्रिको सात सौ कुमारियोंका विवाह होनेको था।[1] दूसरे दिन चहडकी सेनाने विजेता प्रवेश किया तथा नगरमे लूटपाट मचा दी। इसप्रकार इस प्रदेशमें कुमारपालका प्रभुत्व घोषित किया गया। उक्त बावरानगरका पता नही लग सका है। सम्भवत उक्त स्थान साभरका नही अपितु काठियावाडका बावरियावाद है। इस सैनिक विजयके उपरान्त चहड पाटन लौटा। कुमारपाल चहडसे बहुत प्रसन्न हुआ किन्तु अमितव्ययके लिए दोषारोप करते हुए उसे राज घटत्ता की उपाधि दी।

कुमारपालको सौंसरपर आक्रमण करनेके बाद जिस नये आक्रमणके सकटकी सूचना मिली वह थी चेदि या डहलके राजा कर्ण द्वारा।[2] जब कुमारपाल सोमनाथकी तीर्थयात्रा करने जा रहा था उसी समय गुप्तचरोने उसे उक्त आक्रमणकी सूचना दी। इस आक्रमणकी सूचनासे थोडे कालके लिए कुमारपाल किंकर्तव्यविमूढ रह गया। इसी बीच एक घटना विशेष हुई। कर्णके नेतृत्वमे उसकी सेना रात्रिमे आगे बढ रही थी। कर्ण राजा गलेमे स्वर्णका हार पहने हाथीपर बैठकर यात्रा कर रहा था। रात होनेके कारण उसकी आखोमे निद्रा भरी थी। सयोगसे एक वृक्षकी डालमे उसका हार फस गया और वृक्षमे लटककर वही उसकी मृत्यु हो गयी।

---

[1] एक ही दिनमें इतने अधिक विवाहकी प्रथा या तो कडवा कुनभी या भारवदोमें थी और यह अब तक प्रचलित रही है।

[2] प्रबन्धचिन्तामणि पृ० १४६ तथा उत्तरीभारतके राजवंशोका इतिहास, पृ० ७९२।

यदि इस कथामें सत्यघटना मिश्रित है तो यह कर्ण, धहल कलचुरी गयाकर्ण होगा, जिसने सन् ११५१ ईस्वीके लगभग शासन किया था। कलचुरी राजा गयाकर्णके शिलालेखकी तिथि चेदि संवत् ९०२, ईस्वी सन् ११५२ है। गयाकर्णके पुत्र नरसिंहदेवके सर्वप्रथम उत्कीर्ण लेखकी तिथि ११५७ ईस्वी (चेदि ९०७) है। इस आधारपर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि गयाकर्णकी निधन तिथि कुमारपालके शासनकालमें ईस्वी ११५२ तथा ११५७के बीच थी।

गौरवपूर्ण सैनिक विजयोंका क्रम

इसप्रकार कुमारपाल भारतीय इतिहासमें महान विजेताके रूपमें अंकित है। उसके सभी सैनिक अभियान सफल रहे और सर्वदा अन्तमें विजयश्री कुमारपालको ही प्राप्त होती रही। शासनके प्रथम दस वर्षोंमें सन् ११४२से ११५२ तक कुमारपाल आन्तरिक शत्रुओं और उनके आक्रमणों द्वारा अपनी स्थिति सुदृढ़ करता रहा। वह महान योद्धा था और उसने गुजरातके राज्यकी सीमाका व्यापक विस्तार किया। जयसिंह-सूरि द्वारा कुमारपालचरित तथा हेमचन्द्र द्वारा द्वयाश्रय काव्यमें कुमारपाल-के दिग्विजयका जो वर्णन है, वह प्राचीन भारतीय राजाओंकी दिग्विजयका परम्परागत कवित्वमय वर्णन है और उनको सम्पूर्णतया ज्योंका त्यों ऐतिहासिक कोटिके अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता तथापि उन युद्ध-विवरणोंमें अनेकानेक तथ्य भरे पड़े हैं, जिनकी किसी प्रकार उपेक्षा नहीं की जा सकती। यह इसलिए कि इन तथ्योंकी पुष्टि शिलालेखों तथा ऐतिहासिक प्रबन्धोंसे भी होती है, जिनकी प्रामाणिकतापर सन्देह नहीं प्रकट किया जा सकता है।

साभर प्रदेशके अर्णोराजा, कोंकणके महाराजा मल्लिकार्जुन तथा मालवा-धिप बल्लालपर कुमारपालकी विजयकी ऐतिहासिक घटनायें ऐसी हैं, जो केवल जैन ग्रन्थोंमें ही वर्णित नहीं अपितु इनका विभिन्न शिलालेखोंमें

भी उल्लेख मिलता है। इनके अतिरिक्त कुमारपालने उन राजाओंको भी पराजितकर अपना प्रभुत्व स्थापित किया जिन्होंने विद्रोह किया अथवा शत्रुके पक्षको ग्रहणकर उसकी सहायता की। इसप्रकार चन्द्रावतीके विक्रमसिंह काठियावाडके मोसरराज तथा अन्य राजाओंको कुमारपालने न केवल पराजित किया अपितु उनपर अपना पूर्ण आधिपत्य भी स्थापित किया।

जयसिंहके 'कुमारपालचरित' तथा हेमचन्द्रके द्वयाश्रय में कुमारपालकी विभिन्न सैनिक विजयोंकी गौरवगाथाके जो विशद वर्णन मिलते हैं उनसे विदित होता है कि उसने किसप्रकार पहले सौराष्ट्र विषय, और फिर कच्छ विजयके पश्चात् पंचनदधिपको रणभूमिमें पददलित और पराजित किया। इसके अनन्तर कुमारपालने पश्चिमोत्तर दिशामें आगे बढ़कर मूलस्थानके मूलराजको भी अपने अधीन किया। यह मूलस्थान आधुनिक मुल्तान है। काठियावाड़में कुमारपालके सैनिक अभियान और अन्तमें उसकी महान विजयके सुस्पष्ट विवरण अनेक जैनग्रन्थोंमें मिलते हैं। यही नहीं इन जैनग्रन्थोंमें वर्णित प्रसंगोंकी पुष्टि उत्कीर्ण लेखों द्वारा भी होती है। इस तथ्यको सिद्ध करनेके लिए बहुतसे प्रमाण हैं कि अपने समयमें कुमारपालका समस्त गुजरात तथा पश्चिमोत्तर भारतपर एकछत्र प्रभुत्व स्थापित था। द्वयाश्रय काव्यमें कुमारपालके दिग्विजय वर्णनका विश्लेषण करनेपर हम इसी निष्कर्षपर पहुंचते हैं कि उसकी मान्यता तत्कालीन भारतके एक महान प्रभुसत्तासम्पन्न शक्तिके रूपमें विद्यमान थी। वस्तुतः बारहवीं शताब्दीमें भारतमें कोई ऐसी एक संघटित तथा शक्तिशाली राज्यशक्ति न थी जो उसकी समानता करती।

कुमारपालकी राज्यसीमा

हेमचन्द्रके महावीरचरित्र में कहा गया है कि कुमारपालकी विजयोंका क्षेत्र उत्तरमें तुर्किस्तान पूर्वमें गंगा दक्षिणमें विन्ध्यपर्वत तथा पश्चिममें

समुद्र तक व्यापक था।[1] जयसिंहने कुमारपालकी अखंड विजयोंका विवरण देकर उसके दिग्विजय क्षेत्रका भी उल्लेख किया है। उसका कथन है "आगगाम एन्द्रिय, आविन्ध्याम याम्याम, आसिन्धुपश्चिमाम, आतुरुष्काम का कौवेरीम चौलुक्य साधयिष्यति।" अभिप्राय यह कि कुमारपालके दिग्विजयका क्षेत्र पूर्व दिशामें गगा नदी, दक्षिणमें विन्ध्य पर्वत, पश्चिममें सिन्धु तथा उत्तरमें तुरुष्कभूमि तक विस्तृत था।

कुमारपालकी इन सैनिक विजयोपर विचार करनेसे स्पष्ट है कि उसका आधिपत्य हरिद्वारके निकट गगा तक सुदृढतापूर्वक स्थापित था। उसने कान्यकुब्ज प्रदेशको पराजितकर इस क्षेत्रके सभी राजाओको अपने अधीनस्थ कर लिया था। दक्षिणमे कुमारपालने मालवराजको पराजित कर एक बार पुनः उस प्रदेशको चौलुक्य साम्राज्यके अन्तर्गत मिला लिया था। देशमे कोई भी दूसरी ऐसी शक्ति नही थी जो इस समय चौलुक्य प्रभुत्वका विरोध करती अथवा उसको चुनौती देती। दक्षिणमे कुमारपालने विन्ध्यपर्वत तक विजय प्राप्त कर ली थी और उस क्षेत्रमें उसका एकछत्र प्रभुत्व था। यह बात तत्कालीन ऐतिहासिक ग्रन्थोंमें तो वर्णित है ही, कुमारपालके सैनिक अभियानोसे भी पुष्ट होती है।

यह हम पहले ही देख चुके है कि कुमारपालने मुलतानके राजाको हटाकर श्रीनगरपर भी विजय प्राप्त की। इनके बाद वह पचनदधिप (पजाबके राजा)के विरुद्ध सफल युद्ध कर जालन्धर तथा मरुस्थानके मार्गसे लौटा। कुमारपालचरित तथा द्वयाश्रय महाकाव्यका यह विवरण यदि अक्षरशः न भी माना जाय, तो भी उसकी उपेक्षा नही की जा सकती। इतना तो कमसे कम स्वीकार करना ही पडेगा कि कुमारपालके राज्यपालने

---

[1] स कौबेरीमातुरुष्कमैन्द्रीमात्रिदशापगाम्
याम्यामाविन्ध्यमावाधि पश्चिमां साधयिष्यति—महावीरचरितः ४ : ५२।

पंजाब तथा पश्चिमोत्तर भारतके पहाड़ी राज्यों, जिनमें श्रीनगर भी सम्मिलित था, दमनकर चौलुक्य प्रभुत्व प्रतिष्ठित किया था। इस प्रकार ये क्षेत्र महान चौलुक्यराज कुमारपालके अधीन थे। राज्यका पश्चिमी सीमान्त समुद्र बताया गया है। इसका वर्णन पहले ही हो चुका है कि कुमारपालने सौराष्ट्र प्रदेशमें अनेक सैनिक अभियानों द्वारा देशके उस भागको अपने राज्याधीन कर लिया था। इस दिशामें तो महान चौलुक्य शक्तिसे प्रतियोगिता करनेवाली कोई राज्यशक्ति थी ही नहीं। सिन्धुराज-की उसकी प्रभुता मान्य थी। इसप्रकार चौलुक्यराज कुमारपालकी ऐसी महत्ता और सत्ता स्थापित हो गयी थी, जैसी किसी चौलुक्य राजाकी अब तक न हो पायी थी। कुमारपालके प्रचुर संख्यामें प्राप्य शिलालेख, ताम्रपत्र, दानलेख और उनके प्राप्तिस्थान सभी एकमतसे उसकी इसी व्यापक और विशाल राज्य-सीमाकी स्थितिका समर्थन करते हैं। इस प्रकार बाह्य तथा आभ्यन्तर सभी प्रमाणोंसे यह सिद्ध होता है कि पूर्व दिशामें गंगा, पश्चिममें समुद्र, उत्तरमें मुलतान तथा श्रीनगर और दक्षिणमें विन्ध्यपर्वतके विस्तृत एवं व्यापक प्रदेशमें कुमारपालका आधिपत्य सुदृढ-तया स्थापित था। प्रबन्धकारोंके अनुसार हेमचन्द्र द्वारा उल्लिखित राज्य-सीमाके अन्तर्गत कोंकण, कर्नाटक, लाट, गुर्जर, सौराष्ट्र, कच्छ, सिन्धु, उच्च, भाभेरी, मारवाड, मालवा, मेवाड, कीट, जागल, सपादलक्ष, दिल्ली, जालन्धर, राष्ट्र अर्थात् महाराष्ट्र आदि अठारह देश थे। गुजरात-के साम्राज्यकी सीमा प्रदर्शित करनेवाली, इतनी व्यापक विशाल रेखा, भारतके मानचित्रमें केवल कुमारपालके पराक्रमने अंकित की थी।

चौलुक्य साम्राज्य चरमसीमापर

मेरुतुंगने लिखा है कि कुमारपालकी आज्ञाकी मान्यता कर्ण, लाट, सौराष्ट्र, कच्छ, सिन्धु, मालवा, कोंकण, जागल, मेवाड, सपादलक्ष और जालन्धरमें होती थी और इन राज्योंमें उसने "सप्तव्यसन" पर प्रति-

पेधाज्ञा लगा दी थी।[1] इससे भी कुमारपालकी राज्यसीमाका ठीक ठीक पता लग जाता है और उसकी पुष्टि हो जाती है। चौलुक्य साम्राज्यपर उसके संस्थापक मूलराजके समयसे यदि विचार किया जाय तो विदित होगा कि मूलराजने सारस्वत मंडल (सरस्वती नदीकी घाटीमें) अणहिल-पाटकको अपनी राजधानी बनाकर राज्यकी स्थापना की। इस प्रदेशमें उसने सत्यपुर मंडल, जो जोधपुर या मारवाड राज्यका आधुनिक साचौर प्रदेश है, सम्मिलित किया। उसके पुत्र भीम प्रथमने, कच्छमंडल (कच्छ)को विजित किया। इसके बाद कर्णने लतामंडल, दक्षिण गुजरातको तथा जयसिंहने सौराष्ट्र मंडल (काठियावाड) अवन्ति, भाल्लस्वमी महदवाड शाका प्राय सम्पूर्ण मालवा, दधिपद्र मंडल आधुनिक दोहादका चतुर्दिक प्रदेश, आधुनिक जोधपुर तथा उदयपुरके अनेक मंडलोंको चौलुक्य साम्राज्य-में मिलाया। जयसिंह सिद्धराजके उत्तराधिकारी कुमारपालने इस व्यापक एवं विस्तृत राज्यमें न केवल अनेक प्रदेशोंपर विजय प्राप्त कर उन्हें अन्तर्भूत किया, बल्कि आधुनिक गुजरात, काठियावाड, कच्छ, मालवा और दक्षिणी राजपूतानेके सुदूर प्रदेशोंमें अपना आधिपत्य स्थापित रखनेमें भी सफलता प्राप्त की। संक्षेपमें कहा जा सकता है कि कुमारपालके राज्यकालमें चौलुक्य साम्राज्य अपनी चरमसीमापर प्रतिष्ठित एवं मान्य था।

---

[1] प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश : पृ० ९५ —'कर्णाटे गुर्जरे लाटे सौराष्ट्रे कच्छ सैन्धवे। उच्चाया चैवभम्भेर्या मारवेमालवे तथा कौंकणेतु तथा राष्ट्रे कीरे जागलके पुन। सपादलक्षे मेवाडे ढील्या जालन्धरेऽपिच जन्तूनामभयं सप्तव्यसनाना निषेधनम्। बादन न्याय घण्टाया रुदतीधनवर्जनम्।'

राज्य और शासन व्यवस्था

चौलुक्यकालमें गुजरात तथा पश्चिमोत्तर भारतके विशाल भूखण्डकी राज्यव्यवस्थाका इतिहास अध्ययन करने योग्य है। इस समयकी विभिन्न प्रशासनीय इकाइयों और अधिकारियोंके नाम ही नहीं मिलते अपितु एक-एक इकाइयों द्वारा प्रादेशिक विस्तार तथा उनके शासन प्रबन्धकर्त्ताओंके भी विवरण प्राप्त होते हैं। दसवीं शताब्दीके अन्तमें भारत, काबुलसे कामरूप तथा कश्मीरसे कुमारीअन्तरीप तक विभिन्न राज्यखंडोंमें विभाजित था। इनमें कुछ राज्य बड़े थे तो कुछ छोटे। इनका शासन निरंकुश हिन्दू राजा, जो अधिकतर राजपूत थे, कर रहे थे। इस समय कोई ऐसी महान शक्ति न थी, जो सम्पूर्ण देशको एकछत्र और एकसूत्रमें आबद्ध कर सकती। फिर भी प्राचीन परम्परा, धर्म तथा जातिकी एकताका एक ऐसा सूत्र विद्यमान था जिससे सभी राज्योंको साम्राज्यमें एकबद्ध किया जा सकता था। भारतीय साम्राज्यकी कल्पना देशके राजाओंके सम्मुख थी। इसके अनुसार अधीनस्थ राज्योंका पददलन अनिवार्य न था। अपेक्षित था—केवल उनका अधीनस्थ होना और सम्राट या चक्रवर्तीकी प्रभुसत्ताकी मान्यता स्वीकार करना। चौलुक्य शासन कालमें गुजरातमें राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था थी। यह तथ्य चौलुक्य राजाओंकी सत्ता तथा महत्ता सूचक उपाधियों—महाराजा,[1] राजाधिराज,[2]

---

[1] काली शिला० : पी० ओ० खंड१, उपखंड २, पृ० ४०।

[2] पाली शिला० . इपि० इंडि०, खंड ११, पृ० ७०।

परमेश्वर,[1] परमभट्टारक,[2] तथा महाराजाधिराजसे प्रमाणित और पुष्ट है। चौलुक्य राजे अपनको गुर्जरधराधीश्वर कहते थ, अर्थात् वे गुजरात प्रदेशके सर्वोच्च अधिपति थ।[3]

राष्ट्रका स्वरूप

चौलुक्य राजवंशके संस्थापक मूलराजने सारस्वत मंडलमें अपना राज्य स्थापितकर अणहिलपाटकको (आधुनिक पाटन, बड़ौदा) राजधानी बनाया। इसम उसने सत्यपुर मंडल, साचोरके चतुर्दिक प्रदेशको जो आधुनिक जोधपुर मारवाड क्षेत्रके अन्तर्गत है, मिलाया। उसके पुत्र भीमप्रथमने कच्छ मंडल, कर्णने लता मंडल दक्षिणी गुजरात तथा जयसिंहने सौराष्ट्र मंडल (काठियावाड) अवन्ति, सम्पूर्ण मालवा, दधिपद्र मंडल (आधुनिक दोहदका चतुर्दिकप्रदेश) और आधुनिक जोधपुर, उदयपुर राज्यके अनेक मंडलोको राज्यम मिलाकर चौलुक्य राज्यका विस्तार किया। जयसिंहके उत्तराधिकारी कुमारपालने इन सुदूर प्रदेशोपर जो आधुनिक गुजरात, काठियावाड, कच्छ, मालवा और दक्षिणी राजपूतानाके प्रदेश थे, अपनी प्रभुसत्ता बनाये रखनेम सफलता प्राप्त की। इससे स्पष्ट है कि य सभी शासक साम्राज्य निर्माता थे। अन्य प्रदेशोको अपने राज्यम इन्होने निरन्तर मिलाया और सुदूर प्रान्तो तक अपनी सत्ता स्थापित की। चौलुक्योंकी राष्ट्र व्यवस्था नियन्त्रित राजतन्त्रात्मक थी। आधुनिक पाश्चात्य राजनीतिके सिद्धान्तानुसार प्रभुसत्ता सम्पन्न राजशक्तिको व्यवस्था तथा विधान निर्माणका अपरिमित अधिकार होती है। नियन्त्रित राजतन्त्रसे यह अभिप्राय है कि जहा विधान व्यवस्थाम राजा ही सर्वाधिकारी नही अपितु उसका यह अधिकार वहाकी संसद अथवा लोकसभाम भी सन्निहित रहता है।

[1] वही।

[2] वही।

[3] जालोर प्रस्तर लेख : इपि० इंडि० खंड ११, पृ० ५४-५५।

प्राचीन भारतमें राजाओं अथवा जनताको नवीन विधान बनाने अथवा विद्यमान विधानमें परिवर्तन करनेका अधिकार न था। आदिकालमें ब्रह्माने प्रथम राजा मनुको उन समस्त आवश्यक राजनियमोंको निर्मितकर प्रदान कर दिया था जो लोकशासन व्यवस्थामें पथप्रदर्शन किया करते थे। यह ईश्वरीय स्मृति निर्मित राजनियम ही भारतके विभिन्न राज्योंमे प्रचलित था। इससे निरकुश राजाओंकी स्वेच्छाचारितापर कुछ सीमा तक अंकुश लग जाता था। इससे स्वेच्छाचारी राजाओंकी निरंकुश व्यवस्था भी नियन्त्रित हो जाती थी। इस प्रकार दसवी और बारहवीं शतीमें भारतके बहुतसे निरंकुश राज्योंमें वस्तुतः नियन्त्रित राजतन्त्र व्यवस्था विद्यमान थी और इसके अन्तर्गत सुशासन था तथा जनता प्रसन्न थी।[1]

नियन्त्रित अथवा अनियन्त्रित राजसत्ता

साधारणतः यह धारणा प्रचलित है कि भारतीय राजा निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी हुआ करते थे। डाक्टर विसेन्ट स्मिथ तथा श्री एस० एम० एडवर्ड्सका यह मत है कि भारतीय राजा-महाराजा अनियन्त्रित होते थे। डाक्टर बनर्जीका कथन है कि निरंकुश राजाका स्वरूप हिन्दू संस्कृतिकी दयालुताके अनुरूप न था[2]। अर्थशास्त्र तथा हिन्दू धर्म-शास्त्रोंमें देशके शासकपर लगे विभिन्न अकुशों और प्रतिबन्धोंका उल्लेख है। इसपर भी यदि कोई राजा स्वेच्छाचारिताका अतिरेक करता तो उसे अपदस्थ, उसके विरुद्ध खुला विद्रोह तथा दूसरे राजाको सिंहासनारूढ करनेका मार्ग खुला रहता था। इन परिस्थितियोंमे प्रायः कोई राजा पूर्णतः निरंकुश नही हो पाता था। इसके अतिरिक्त भारतीय राजव्यवस्थामें

---

[1] सी० वी० वैद्य : मध्यकालीन भारत, खंड ३, पृ० ४४७।

[2] प्राचीन भारतमें जनशासन, पृ० ७४।

शासितके प्रति पितृप्रेमकी परम्परा भी प्राचीनकालसे चली आ रही थी। साधारणतः हिन्दू राजे अपनी प्रजाके प्रति वही स्नेह भाव रखते थे जैसी सहज स्नेहभावना एक पिता अपने पुत्रके लिए रखता है। यह भावना सिद्धान्त-मात्र ही न थी अपितु प्रयोगमें भी लायी जाती थी। भारतीय राजाओंने कठोर और क्रूरताकी नीति द्वारा अपनी प्रजाका निर्दलन किया हो, इसके बहुत ही कम उदाहरण मिलते हैं। उफीने अपने "जमैयत-उल-हिकायत" में दीर्घजीवन बूटीकी एक मनोरंजक कथाका उल्लेख किया है, जिससे विदित होता है कि मुसलिम बादशाहोंकी तुलनामें भारतीय राजामहाराजा अपेक्षाकृत दयालु हुआ करते थे। उनकी धारणा थी[1] कि प्रजाका दमन करनेसे जन-अभिशापसे आततायी राजाओंकी आयु कम हो जाती है। इस कथाका चाहे जो भी महत्त्व हो, इतना तो स्पष्ट है ही कि हिन्दू राजा प्राचीन परम्पराके अनुसार अपनी प्रजाके प्रति पुत्र जैसा स्नेह रखते थे। इसीलिए मध्यकालीन इतिहासमें कश्मीरके अतिरिक्त कहीं किसी आततायी राजाका उल्लेख नहीं मिलता।

इन परिस्थितियोंमें चौलुक्य राजे न तो निरंकुश राजे थे और न उनके अधिकार ही बहुत अधिक सीमित थे। राजकीय सत्तापर अंकुश तथा प्रतिबन्धोंके होते हुए भी चौलुक्य राजे प्रायः अपनी स्वेच्छाके अनुसार कार्य करते थे। महामात्यों और सचिवोंके परामर्शसे उनकी नीति निर्देशित होती अवश्य थी, किन्तु उसको स्वीकार करनेके लिए वे बाध्य न थे। इस प्रकार एक शब्दमें उन्हें हितैषी स्वेच्छाचारी शासक कहा जा सकता है।

राज्यमें कुलीनतन्त्र

द्वयाश्रय तथा प्रबन्धचिन्तामणिमें अनहिलवाडेका ऐसा चित्रण एवं

[1] इलियट २, पृष्ठ १७४।

वर्णन हुआ है जिससे स्पष्ट है कि यहाका राजा प्रभुसत्ता सम्पन्न था। उसके पार्श्वमें श्वेत परिधानवाले जैनधर्मके आचार्यों अथवा ब्राह्मणोंका समूह रहता था। उसके एक ओर राजपूत योद्धा उपस्थित रहते जो युद्ध-भूमिमें अपनी वीरता तो दिखाते थे, साथ ही मन्त्रि-परिषदमें महत्त्वपूर्ण परामर्श भी दिया करते थे। इसके बाद वणिक मन्त्रेश्वरोंका भी उसकी सभामें अस्तित्व था, जो यद्यपि शान्तिप्रिय धन्धोंमें लग गये थे, फिर भी उनकी नसोंमें अभी तक क्षत्रिय रक्त अवशेष था। किनारेकी ओर एक मंडलमें प्रमुख योद्धा, राजकीय उच्च अधिकारी, भाट-बन्दीजन जिनकी वाणीमें बल था तथा शान्तिप्रिय किसानोंका समूह फूल-फलोंकी भेंट अर्पित करता दृष्टिगोचर होता था। इनके पृष्ठभागमें पहाड़ी क्षेत्रके आदिवासी भील आदि थे जिनका रंग काजलसा काला था। इन्हें देखकर भय उत्पन्न होता था किन्तु यही धनुषधारी भील उनके रक्षक थे।[1] तत्कालीन अधिकारियों एवं मान्य ग्रन्थकारोंके उक्त विवरणसे राज्यके प्रमुख वर्गों तथा जातीय तत्त्वोंका परिचयबोध हो जाता है। राजसभामें सर्वप्रथम ब्राह्मण तथा श्वेत वस्त्रोंकी पोशाकमें जैन पंडितोंका उल्लेख मिलता है तो द्वितीयत. हमारी दृष्टि राजपूत योद्धाओंकी ओर आकृष्ट हो जाती है, जो रणभूमिमें अपना शौर्य दिखलाते थे तथा सचिव-सभामें परामर्शका भी कार्य करते थे। तृतीयतः वणिक "मन्त्रेश्वरों"का भी उल्लेख मिलता है, जो यद्यपि 'शान्तिका व्यवसाय' करते थे फिर भी जिनकी धमनियोंमें क्षत्रिय रक्त अब भी विद्यमान था। अन्तमें हमें शब्दों द्वारा गर्जन करनेवाले भाटों तथा शान्तिप्रिय किसानोंका वर्णन मिलता है।

सामन्तवादका अस्तित्व

राज्यमें ब्राह्मणोंकी स्थिति शक्तिशाली, प्रतिष्ठित और सम्पन्न थी। चौलुक्य राजाओंने पुण्यप्राप्तिके लिए ब्राह्मणोंको भूमिदान किया

[1] फोर्वस : रासमाला, पृ० २३०-३१।

था। भूमिदानका दूसरा उद्देश्य पच महायज्ञ, वलि, चरु, विश्वेदेवा अग्निहोत्र तथा अतिथि यज्ञ था। इसके अतिरिक्त इसीकालमें सर्वप्रथम मोढ ब्राह्मण शासनके विभिन्न विभागोमें विशेषत महाक्षपटलिकके पदपर नियुक्त किये गयें थे।[1]

राजपरिवारके सदस्योको भी जमीन-जागीर देनेकी प्रथा थी। कुमारपालके सम्बन्धमें भी एसा ही कहा जाता है। सोलकी सम्राटने कुम्हार अलिगको सात सौ ग्रामोका दानपत्र दिया था। उक्त कुम्हारने अपने निम्नकुलसे लज्जित होकर अपना उपनाम 'सगरा' रखा जो वादमें भी उसके वशका बोधक एव परिचायक रहा।[2] यह ध्यान देने योग्य बात है कि एक बघेलके सिवा सैनिक सेवाके निमित्त वश-वशजोंके लिए किसीको भी स्थायीरूपसे भूमि नही प्रदान की गयी। गुजरातकी मुख्य भूमिमें जितने किले थे, उनमें राजाकी ही सेना रहती थी। सामन्तो और सरदारोका उनमे हस्तक्षेप न था। प्राय सभी राजपूत घरानेमें जिनके प्रधान वडे वडे जागीरदार तथा शासक होते थे, उन्हे अणहिलपुरके राजा द्वारा भूमि देनेका उल्लेख कही नही मिलता। इसमे एक अपवाद भीलोका है, जिनका

---

[1] इडि० ऐंटी० खड ११, पृ० ७३। श्रीध्रुवके अनुसार कुम्यारेना लेखक "मोढपरिवार"का सदस्य था। मूलराजके काडो शिलालेखमें जिस प्रकार मोढेरा "श्री मोढ़ेरा" लिखा गया है उससे विशेष पवित्रताका भाव विदित होता है। इडि० ऐंटी० खड ६, पृ० १९१। अव भी मोढ़ेरामें मोढ ब्राह्मणो तथा बनियोंकी कुलदेवीका एक मन्दिर विद्यमान है। इस प्रकार मोढ तथा मोढेराकी अपनी प्राचीन परम्परा है तथा इनका उल्लेख उत्कीर्ण लेखोंमें भी मिलता है। कुमारपालके परामर्शदाता, पथप्रदर्शक तथा जैन महापडित हेमचन्द्र मोढ ही थे। प्रबन्धचिन्तामणि : पृ० १२७।

[2] 'तेनु निजान्वयेन लज्जमाना अद्यापि सगरा इत्युच्यन्ते।'—प्रबन्धचिन्तामणि : प्रकाश चतुर्थ, पृ० ८०।

कथन है कि उन्होने चौलुक्य वशके अन्तिम राजा कर्ण द्वितीयसे भूमि प्राप्त की थी।

द्वयाश्रय महाकाव्य, प्रबन्धचिन्तामणि तथा चौलुक्योके अनेक विवरण पत्रोमे मूलराजकी राजसभामे युवराज और महामडलेश्वरका उल्लेख मिलता है। कुमारपालके बहनोई कृष्णदेवका (कान्हदेवका) वर्णन एक बडे सामन्तके रूपमे हुआ है, जिसके अधीन भारी सेना भी थी।[1] जब सामन्त उदयन काठियावाडमें सौंसरके विरुद्ध सैनिक अभियान कर रहा था, उस समय जब वह नूरद्वानमें पहुचा तो वहा उसने सभी महामडलेश्वरोको एकत्र किया। ये महामडलेश्वर और कोई नही सभी प्रदेशोके प्रधान थे। उन मडलीक राजाओका भी उल्लेख मिलता है जो अणहिलपुरकी राजसत्ता तो स्वीकार करते थे किन्तु उनके प्रदेश गुजरातके अन्तर्गत नही थे। सामन्त, सैनिक अधिकारी थे और उन्हे राजकोषसे वेतन मिलता था। इनकी सेनामे जितने सैनिक रहते थे, उसीके अनुसार उसका पद होता था।[2] यही पद्धति बादमें दिल्लीके मुगल सम्राटोंके कालमे प्रचलित हुई। यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि चौलुक्य राजाओके शासनकालमें अनेकानेक उच्च सैनिक अधिकारी जो अपनी स्वतन्त्र सेना भी रखते थे, वणिक (बनिया) वर्गके थे। इन लोगोमे वनराज तथा सुज्जनके साथी जाम्ब, जयसिंहके सेवक मुंजाल और कुमारपालके समय उदयन और उसके पुत्रके नाम उल्लेखनीय है।

आभिजात तन्त्रकी प्रमुखता

इसप्रकार स्पष्ट है कि जागीरदार राजपूतोंके कुलीनतन्त्रके अतिरिक्त वणिक या वैश्योका भी राजनीतिक क्षेत्रमें प्रवेश प्रभाव था। केवल

---

[1] प्रभावकचरित : २२ अध्याय, पृ० १९७ "तत्रास्ति कृष्णदेवाख्य. सामन्तोऽश्वायुत स्थिति"।

[2] शिलालेखो तथा सिक्कोंमें "सामन्त" शब्दका बराबर प्रयोग हुआ है।

प्रवेश ही नहीं, इनके हाथ शासनसूत्र भी था। एसे लोगोंमें प्रागवत, जो अब पोरवाड कहे जाते हैं तथा मोढ प्रसिद्ध हैं।[1] श्री एच० डी० सनकालियाका यह मत है कि "वोडावा ' नामक राजपूत जातिका अब अस्तित्व नही किन्तु इनका अस्तित्व आधुनिक पोरवाड वनियोंमें दृष्टिगत होता है। चौलुक्योंके अधीन शासकके रूपमें इनका उल्लेख अनेक शिलालेखोंमें हुआ है। इनमें वस्तुपाल तथा तेजपाल[2] जिन्होंने, देल्वारा मन्दिरका निर्माण कराया था तथा अपने सम्बन्धियोंके अनेकानेक लेख उत्कीर्ण कराये थे। ये और इनके पूर्वज श्वेताम्बर जैनधर्मके आधारस्तम्भ होनेके अतिरिक्त राजाके योग्य सचिव भी थे।

यशपालका तत्कालीन नाटक "मोहराजपराजय" राजधानी अनहिलपुरमें वणिकोंकी प्रमुखताका उल्लेख करता है। इसमें जो चित्रांकन किये गये हैं उनके अनुसार यहा कोटिश्वरो तथा लक्षाधिपतियोंके भवनोंपर ऊची पताकाए तथा घटे लगे रहते थे। उनका वैभव राजकीय वैभवके ही समान था। उनके पास हाथी घोडे भी रहते थे। कुबेरने ६ करोड स्वर्ण मुद्रा, आठ सौ तोला रजत, ८ तोला बहुमूल्य रत्न, दो सहस्र कुम्भ अन्न, दो सहस्र तेलकी खारी, ५० हजार अश्व, एक सहस्र हाथी, ८० हजार गाय, ५०० हल, गाडी गृह आदि रखनेकी प्रतिज्ञा की थी।[3] ये जैन वणिक

---

[1] प्रागवत सम्भवत पोरित्याबदनाका सस्कृत रूप है जिसका उल्लेख कुमारपालकालीन नाडोलपट्टमें हुआ है।—इडि० ऐंटी०: खड १० पृ० २०३।

[2] आर्कलाजी आव गुजरात: अध्याय १०, पृ० २१०।

[3] गुरुपादमूलकमले गृहमेधिजनोचितानिमान्नियमान्
प्रतिपद्यते कुबेरो वैराग्यतरगितस्वान्त ।
तद्यथा—जन्तून् हन्मि न वच्मि नानृतमह स्तेय न कुर्वे परस्त्रीर्नो
यामि तथा त्यजामि मदिरा मास मधुम्रक्षणम्

राज्यमें बहुत प्रभावशाली थे। यह पहले ही देखा जा चुका है कि कुमार-पालके राज्यारोहणमें सत्ताधारी वणिकोंके दलने योगदान दिया था। कुबेरने 'परिग्रहपरिमाणव्रत के अन्तर्गत अपने धनधान्यकी सीमा निश्चित की थी।

यह स्थिति स्पष्ट बताती है कि राज्यमे जैन व्यवसायियो और वणिकोका बहुत ऊचा स्थान था। इसके दो कारण थे। एक था उनके पासकी विशाल सम्पत्ति तथा धनराशि और दूसरा कारण था उनके अधीनस्थ सेनाका होना। इसप्रकार निश्चयपूर्वक इस निष्कर्षपर पहुचा जा सकता है कि उस समय सामन्तो अथवा जागीरदारोके कुलीनतन्त्रकी प्रमुखता न थी अपितु वहा सम्पन्न प्रभावशाली जैन वणिकोका अल्पजनाधिपत्य था जिसे अभिजाततन्त्र कहा जा सकता है।

नागर शासन-व्यवस्था

हिन्दू राजतन्त्रका आधार, सैनिक शासनका न था अपितु उनके अन्तर्गत नागर अथवा सानुनय व्यवस्थाका प्राधान्य था।[1] इस कालमे

नवत नास्ति परिग्रहे मम पुन स्वर्णस्य षट कोटय—
स्तारस्याष्ट तुलाशतानि च महार्हाणा मणीनादश :३९:
कुम्भखारी सहस्रे द्वे प्रत्येक स्नेहधान्ययो
पचायुतानि वाहाना सहस्रमपि हस्तिनाम् ४०
अयुतानि गवामष्टौ पच पच शतानितु
हलाट्टसद्मना यान पात्राणामन सामपि :४१
पूर्वे जोपार्जिता लक्ष्मीरियत्यस्तु गृहे मम
इतो निज भुजोपात्ता करिष्ये पात्रसात्पुन ४२
—मोहराजपराजय

[1] नराधिपश्चाप्यनुशिष्यमेदिनीं
दमेन सत्येन च सौहृदेन।

अधिकांश युद्ध, भूमिलोभ अथवा राज्यविस्तारकी आकांक्षासे प्रेरित न होकर उच्च सिद्धान्तोंके लिए हुए। यह उच्च सिद्धान्त था स्वर्गकी प्राप्ति।[1] समुद्रगुप्तमें भी यही भावना परिलक्षित होती है। उसकी मुद्राएं इस तथ्यका स्पष्ट संकेत करती है।[2] प्रत्येक राजाका शासन सिद्धान्त मुख्यतः इसीपर आधृत था। हिन्दू राजा नागर या सानुनय राजकीय व्यवस्थाको पसन्द करते थे और उनके शासन प्रबन्धमें सैनिकवादका प्राधान्य न था। इसका एक प्रमुख कारण यह भी था कि साधारणतः हिन्दू राज्यके दीर्घजीवी होनेके लिए परम्परागत सर्वमान्य राजनियमोंका पालन आवश्यक ही नहीं अनिवार्य समझा जाता था।

चौलुक्य राजाओंका प्राचीन भारतीय राजाओंकी भांति यही महान लक्ष्य था कि विदेशी आक्रमणों अथवा आन्तरिक उपद्रवोंसे अपनी प्रजाकी रक्षा करना तथा अपने सीमान्तको व्यापक विस्तृत बनाकर उन प्रदेशोंको अपने अधीनस्थ करना। वस्तुतः उनका राजनीतिक आदर्श राजा विक्रमादित्य था, जिसने सभी दिशाओंके प्रदेशोंमें आक्रमण कर राजमंडलोंको अपना सेवक बना लिया था।[3]

चौलुक्य राज राज्यमें सेना रखनेके अतिरिक्त सामन्तशाहीकी स्वीकृति भी देते थे। इसप्रकार सिद्धराजने अपने परिवारके एक सदस्यको एक सौ अश्वोंकी सामन्तशाही प्रदान की थी। जब कुमारपाल, अर्णो-

---

महीं द्विरिप्त्वा क्रतुभिर्महाशया
त्रिविष्टपे स्थान मुपैति शाश्वतं। शान्ति पर्व ६१

[1] हिन्दू एडमिनिस्ट्रेटिव इन्स्टीट्यूशन, अध्याय २, पृ० ७६।

[2] "राजाधिराजा पृथ्वीम् अवनित्य दिवं जयति अप्रतिवार्यवीर्य" जर्नल आव इंडियन हिस्ट्री खंड ६, उपखंड २, स्टडीज इन गुप्ता हिस्ट्री', पृ० ३२।

[3] रासमाला, अध्याय १३, पृ० २३४।

राजाके विरुद्ध युद्ध करने गया तो यह कहा जाता है कि उसकी सेनामें "महाभूत" तथा "भतराजा" नामके सेनानायक थे।[1] यह स्थिति स्पष्ट करनेका अभिप्राय इतना ही है कि गुजरातके चौलुक्यराजाओंका शासन सानुनय था, सैनिक नियमोंके अनुसार यहाकी राजव्यवस्था न थी। केवल युद्धके समय राज्यकी सेनाके साथ अधीनस्थों तथा राज्यके बाहरके प्रधानोंकी सेनाका एकीकरण हो जाता था और शत्रुसे सघटित युद्ध होता था।

केन्द्रीय सरकार

चौलुक्योंके समय नौकरशाही अथवा सामन्तशाही शासन पद्धति थी, इस सम्बन्धमे निश्चित रूपसे कुछ कहना कठिन है। इसका ठीक ठीक निर्धारण करना तो आधुनिक कालमे भी कठिन हो जाता है। आज भी जबकि लम्बे चौडे विशद विधान बन गये है, यह श्रेणी विभाजन सच्चे अथमें सभव नही। इसके लिए तत्कालीन समय और परिस्थितियोका विचार करना ही होगा। साथ ही यह भी ध्यानमे रखना होगा कि साम्राज्यकी आवश्यकताओके अनुसार राजाओकी नीति निर्धारित हुई होगी। जहातक एतिहासिक सामग्री प्राप्त हुई है, उसके आधारपर निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि चौलुक्यकालीन गुजरातमे शासन *यन्त्रकी व्यवस्थित प्रणाली विद्यमान थी।*

राजा और उसका व्यक्तित्व

कुमारपालका साम्राज्य व्यापक और विशाल था, यह हम देख चुके है। उसीके कालमें चौलुक्योकी शक्ति तथा प्रभुत्व चरमसीमापर पहुच गया था। शिलालेखो, ताम्रपत्रो, दानलेखो तथा साहित्यिक सामग्रियोंसे

---

[1] रासमाला, अध्याय १३, पृ० २३३।

विदित होता है कि उसके समयमें सुदृढ केन्द्रीय तथा प्रादेशिक शासन-व्यवस्था विकसित और विद्यमान थी। शासनका सर्वोच्च अधिकारी राजा था। वही सम्मान तथा उपाधियोंका वर्पण-वितरण किया करता था।[1] उसकी मुख्य रानी 'पट्टमहिषि' कही जाती थी।[2] मुख्य राजकुमार अथवा युवराज, राजाके बाद सबसे अधिक महत्त्वका व्यक्तित्व रखता था। राज्यके शासन सचालन तथा सपादनका कार्यभार उसके प्रमुख कर्तव्योंम था। यह पहले ही देखा जा चुका है कि सिंहासनारूढ होनेपर कुमारपालने अपनी पत्नी भोपालादेवीको पट्टरानी बनाया। राजाकी अस्वस्थता अथवा अनुपस्थितिमें ये उसका कार्य करते थे।[3]

तत्कालीन लेखकोंकी रचनाओंमें राजाका वर्णन इसप्रकार मिलता है—प्रभुसत्ता सम्पन्न राजाका व्यक्तित्व राजकीय वैभवसे पूर्ण रहता था। उसके ऊपर लाल मखमलका राजछत्र रखा जाता था। उसके सिरके पृष्ठभागम सुनहरे सूर्य मडलका चित्राकन चमकता रहता था। उनके गलेम बहुमूल्य मोतियोका हार तथा उसके हाथोम चमकते हुए हीरोका कंकण रहता था। उसका व्यक्तित्व तथा आकृति भी असाधारण होती थी। उसके विशाल बाहुमें भाला तथा तलवार सुन्दर लगते थ। युद्धभूमिमें उसके नेत्रोंसे अग्निवर्षा होती थी। युद्धभूमि का प्रचंड शख-निनाद भी उसे उसी प्रकार परिचित रहता, जितना राजप्रासादका गम्भीर ध्वनियन्त्र। वह शस्त्रधारी होता था और साथ ही अभिषिक्त प्रधान। वह क्षत्रियपुत्र होता था और रानीका राजकुमार होता था।[4]

---

[1] इपि० इडि० : खड २, पृ० २३७।

[2] महारानी राजाके राज्याभिषेकके समय सिरपर सुवर्णपट्ट धारण करती थीं। इसलिए उसे "पट्टरानी" कहा जाता था।

[3] सी० वी० वैद्य : मध्यकालीन भारतका इतिहास पृ० ४५८।

[4] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३१।

राजाके कर्त्तव्य

राजाके कर्तव्य मुख्यत. तीन प्रकारके थे। वह शासन परिषदका अध्यक्ष था। वह प्रधान सेनापति था और वही होता था न्यायाधिकरणका सर्वोच्च अधिकारी। कुमारपालप्रतिबोधके रचयिताने कुमारपालकी दिनचर्याका जो वर्णन किया है उससे राजाके विभिन्न कर्तव्यो तथा कार्योका स्पष्ट परिचय मिलता है।[1] सोमप्रभाचार्यका कथन है कि राजा बहुत सवेरे ही उठ जाता था और पवित्र जैनधर्मके पच नमस्कार मन्त्रका उच्चारण तथा देवताओ और गुरुओका ध्यान करता था। इसके पश्चात् स्नानादिके अनन्तर वह राजप्रासादके मन्दिरमें जैन मूर्तियोका वन्दन-अर्चन करता था। यदि कभी समय रहता था तो अपने मन्त्रियोके साथ वह हाथीपर कुमार विहार मन्दिर भी जाया करता था। वहा अष्टागिक पूजन करनेके अनन्तर वह हेमचन्द्रके पास जाता था। उनका वन्दन तथा धार्मिक शिक्षा श्रवणकर वह माध्याह्नमें राजप्रासाद लौटता। तब वह साधुओको भिक्षा देता और अपने मन्दिरकी जैन मूर्तियोको प्रसाद भोग लगाता और फिर स्वय भोजन करता। भोजनके पश्चात् वह विद्वानोकी एक सभामें सम्मिलित होता और धार्मिक एव दार्शनिक विषयोपर उनसे विचार विमर्श करता। इसमें कवि सिद्धपाल प्रमुख थे, जो कुमारपालको अनेकानेक प्रासगिक कथाए सुनाकर प्रसन्न करते थे। दिवसके चतुर्थ प्रहरमें राजसभामें राजा सिहासनपर आसीन हो राज्यका कार्य सम्पादन करता। इसी समय वह जनताकी प्रार्थना सुनता तथा तद्विषयक निर्णय भी सुनाता था। कभी कभी वह राजकीय कर्तव्य भावनाके अन्तर्गत मल्ल-युद्ध, हस्तियुद्ध तथा इसी प्रकारके अन्य आयोजनोमें भी सम्मिलित होता था।

इसके पश्चात् वह सूर्यास्तके लगभग ४८ मिनट पूर्व सन्ध्याका भोजन

---

[1] कुमारपालप्रतिबोध : पृ० ४२२ तथा ४७१।

करता। प्रत्येक पक्षकी अष्टमी और चतुर्दशीको वह केवल एक शाम ही भोजन करता। भोजनोपरान्त वह प्रासाद स्थित मन्दिरोंमें पुष्पोंसे अर्चना करता तथा नर्तकियों द्वारा देव मूर्तियोंके सम्मुख दीपक नृत्यका आयोजन कराता। इस पूजा और अर्चनाके अनन्तर वह वाद्ययन्त्र तथा चारणोंसे संगीत सुनता। इसप्रकार दिन व्यतीत कर वह मस्तिष्कमें त्यागकी भावना रख विश्राम करने जाता था।[1]

यद्यपि कुमारपालप्रतिबोधसे बहुत ही सीमित और संक्षिप्त एतिहासिक जानकारी प्राप्त होती है, फिर भी विद्वानोंने यह स्वीकार किया है कि यह संक्षिप्त जानकारी पूर्णतः विश्वसनीय और प्रामाणिक है। उक्त ग्रन्थका लेखक कुमारपालका केवल समसामयिक ही न था अपितु उसके व्यक्तिगत जीवनकी अंतरंग बातोंका भी ज्ञाता था। कुमारपालके धार्मिक गुरु हेमचन्द्रने अपने कुमारपालचरित्रमें उसकी दिनचर्याका जो विवरण दिया है वह सोमप्रभाचार्यके वर्णनसे पूर्णतः साम्य रखता है।[2]

श्रीफोर्वस्ने राजाके दैनिक जीवनके कार्यक्रमका जो विवरण लिखा है वह भी उक्त वर्णनसे समानता रखता है। उसका कथन है कि राजाकी निद्रा प्रभातकालमें राजकीय वाद्य तथा शंखनादसे भंग की जाती थी। राजा शैय्याका त्यागकर अश्वारोहणके लिए चला जाता था। माध्याह्नमें

[1] तो राया बुट्ठवग्ग विसज्जिअ दिवस चरम-जामम्मि
अत्थाणी मंडव मंडणम्मि सिंहासने ठाई।
सामंत मंति मंडलिय सेट्ठिपमुहाण दसण देइ
विन्नत्तीओ तेसिं सुणइ कुणइ तह पडीयार।
कय-निद्दिवेय जण विम्हियाइ करि अंक मल्लजुद्धाइ
रज्जट्ठिइ त्ति कइया वि पेच्छए छिन्नवछो वि।
कुमारपालप्रतिबोध, पृ० ४४३।

[2] हेमचन्द्र: कुमारपालचरित्र, सर्ग १, श्लोक २९, ७४।

वह लोगोकी प्रार्थनाए और आवेदन-निवेदन सुनता था। राजसभाके द्वारपर सशस्त्र सैनिक रहते थे। ये ही सभामे लोगोको प्रवेश करने देते अथवा निषेध करते थे। युवराज अथवा भावी उत्तराधिकारी, राजाके पार्श्वमें रहता। मडलेश्वर तथा सामन्त राजाके चारो ओर रहते थे। मन्त्रिराज अथवा प्रधान अपने सचिवोके साथ वहा विद्यमान रहता था। वह मितव्ययिता तथा साधुपरामर्शके लिए सदा प्रस्तुत रहता था। अपने परामर्शकी पुष्टि और प्रामाणिकताके लिए वह लिखित व्यवस्था तथा पूर्वमे हुई उसी प्रकारकी घटनाकी परम्पराकी व्यवस्था—पत्र भी प्रस्तुत रखता था। आवश्यक कार्य समाप्त हो जानेपर पडित तथा विद्वान आमन्त्रित किये जाते थे और उनके साहित्य तथा व्याकरणशास्त्रका रसास्वादन होता और उनपर विचार विमर्श होता।[1]

शासन-परिषदका अध्यक्ष

उपर्युक्त आधिकारिक विवरणोंसे स्पष्ट है कि राजाको तीन प्रकारके कर्त्तव्य सम्पादन करने पडते थे। शासन—परिषद्के अध्यक्ष होनेके नाते उसे राजकीय व्यवस्थाका निरीक्षण करना पडता था। उक्त ग्रन्थोंके वर्णनोंसे स्पष्ट है कि दिवसके चतुर्थ प्रहरमे (लगभग ३ बजे) राजा, सभामें सिंहासनपर आसीन होकर राज काजका निरीक्षण करता था।[2] महामडलेश्वर तथा सामन्त उसके चतुर्दिक रहते थे। मन्त्रिराज या प्रधान अपने साथियो सहित साधुतापूर्वक मितव्ययिताका परामर्श देते हुए लिखित आधिकारिक व्यवस्था लिए सदा प्रस्तुत रहते थे।[3] स्पष्टत राजाको राज्यकार्य सम्पादनम मन्त्रियोसे सहायता प्राप्त होती थी।

---

[1] फोर्वस् : रासमाला, अध्याय १३, पृ० २३७।

[2] कुमारपालप्रतिबोध, पृ० ४४३।

[3] रासमाला, अध्याय १३, पृ० २३७।

सैनिक कर्त्तव्य

राजा रणभूमिमे प्रधान सेनापति भी होता था, परिणामस्वरूप उसे सेनाके प्रशासनकी भी देखभाल करनी पडती थी। यद्यपि दडाधिपति या दडनायकपर ही प्रधान सेनापतिका समस्त उत्तरदायित्व रहता था और उसीपर सैनिक व्यवस्थाकी जिम्मेदारी थी फिर भी राजा स्वय सैनिक टुकडियोका निरीक्षण किया करता था। कुमारपालप्रतिबोधमें कहा गया है कि यदा कदा राजकीय कर्तव्य पालन करनेके लिए कुमारपाल मल्लयुद्ध प्रतियोगिता, हस्तियुद्ध तथा इसी प्रकारके अन्य आयोजनोमे सम्मिलित होता था।[1] यह केवल मनोरजनके निमित्त न था अपितु राजकीय कर्त्तव्यके अन्तर्गत था। इससे विदित होता है कि सैनिक प्रदर्शनो, घुडदौडा, हस्तियुद्धा आदिमे सम्मिलित हो कुमारपाल अपने आवश्यक सैनिक कर्तव्य का पालन करता था।

वैचारिक कर्त्तव्य

न्यायाधिकरणके उच्चतम अधिकारीके रूपमे राजा जनपक्षके तर्क भी दिनमे सुनता था।[2] राजा अपने राजदरबारमें सिंहासनपर आसीन होकर जनतासे पुनर्वाद सुनता तथा अपना निर्णय देता था।[3] राजा अपना यह वैचारिक कर्त्तव्य गूढ परिषदके अध्यक्ष रूपमें सम्पन्न करता था। इसके अतिरिक्त अधिस्थानकके अधीन अनेक स्थानीय तथा प्रान्तीय न्यायालय रहे होगे। राजा जहा महत्त्वपूर्ण पुनर्वाद सुना करता था वह सर्वोच्च न्यायालय था। यहा वह बहुत ही आवश्यक प्रश्नो तथा पुनर्वादोको सुनता और मन्त्रियाकी सलाहसे निर्णय दिया करता था। उसके

[1] कुमारपालप्रतिबोध, पृ० ४४३।

[2] रासमाला अध्याय १३, पृ० २३७।

[3] कुमारपालप्रतिबोध, पृ० ४४३५।

मन्त्री, जिनके विषयमें हम पहले ही देख चुके हैं, लिखित आधिकारिक व्यवस्था पत्र तथा पहले निर्णीत प्रश्नोंका उदाहरण प्रस्तुत रखते थे और न्याय सम्पादनमें राजाकी हर प्रकारसे सहायता करते थे। इस बातपर पूर्ण ध्यान रखा जाता था कि पूर्वकालमें हुए निर्णयोंकी अवहेलना न हो।[1]

अन्य विभिन्न कर्त्तव्य

इनके अतिरिक्त भी राजाको अन्य विभिन्न कर्त्तव्योंका पालन करना होता था—यथा धार्मिक कर्त्तव्य आदि। वह विद्वत्परिषद् तथा पंडित मंडलीमें उपस्थित हो उसमें दार्शनिक और धार्मिक प्रश्नोंपर वाद-विवाद एवं विचार-विमर्श किया करता था। वह साधुओं सन्यासियोंको भोजन-भिक्षा दिया करता था, और मन्दिरोंमें अन्नादिकी भेंट करता। शासन कार्योंका सम्पादनकर, पंडित तथा विभिन्न विषयोंके आचार्य आमन्त्रित कर लिये जाते थे और साहित्य तथा व्याकरण शास्त्रकी चर्चा छिड़ जाती॥ इससे भी अधिक आकर्षक कार्यक्रम होता था भ्रमणशील चारण अथवा चित्रकारका आगमन। ये राम तथा विभीषणकी प्राचीन कथायें सुनाते अथवा किसी विदेशी सुन्दरीके सौन्दर्यका चित्रण कल्पना-चक्षुके सम्मुख उपस्थित करते।[2] उपर्युक्त कार्य राजाके अतिरिक्त कर्त्तव्योंके अन्तर्गत थे, जिनका सम्पादन उसे अपने दैनिक उत्तरदायित्वोंको वहन करनेके साथ ही साथ करना पड़ता था।

राजा-नियन्त्रित अथवा अनियन्त्रित

चौलुक्य राजा, प्राचीन हिन्दू राजतन्त्रके अनुसार अनियन्त्रित राजे थे। राजा ही शासन सम्बन्धी समस्त विभागोंका अध्यक्ष और सर्वोच्च अधिकारी था। सिद्धान्ततः उसकी शक्ति और अधिकारमें कोई हस्तक्षेप

---

[1] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३७।

[2] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३७।

नही कर सकता था, किन्तु व्यवहारमें राजाकी स्वेच्छाचारितापर नियन्त्रण तथा अकुश लगानेवाली अनेक शक्तियां थी। इसप्रकार सभी व्यावहारिक कार्योंके लिए वह वैधानिक शासक था।

कुमारपाल जैन आचार्य हेमचन्द्रके प्रभावमें सदा रहता था। उसके सिंहासनारूढ होनेमें राजधानीके सम्पन्न जैन दलोंने बडी सहायता की थी। ये जैन करोडपति राजाकी स्वेच्छाचारितापर अत्यधिक प्रभाव डालते थे। पहले ही देखा जा चुका है कि कुमारपालके शासनकालमें बहुतसे वणिक उच्च पदोंपर आसीन थे। इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपमें वे राजाको प्रभावान्वित करते थे। जैन व्यवसायी इतने शक्तिशाली थे कि एक समय पाटनके नगरसेठ और दंडनायक विमल मन्त्री अनेक सम्पन्न उद्योगपतियोंके साथ पाटन छोडकर चले गये थे और उन्होंने चन्द्रावती नगर बसाया।[1] इसका कारण यही कहा जाता है कि बडे बडे जैन उद्योगपतियोंको, राजपूत राजाओंका प्रभुत्व सहन न था। वणदेवके सम्बन्धमें तो यह प्रसिद्ध है कि वे जैन मन्त्रियोंके हाथकी कठपुतली थे।[2] इसप्रकार महान शक्तिसम्पन्न चौलुक्य राजाओं की स्वेच्छाचारिता नियन्त्रित होती थी।

मन्त्रि-परिषद्

इसमें कोई सन्देह नही कि चौलुक्य राजाओंका शासन कार्यमें मन्त्रियों द्वारा परामर्श और सहायता मिलती थी। प्राचीनकालसे ही राजकाजमें मन्त्रियोंका अत्यधिक महत्त्व रहा है। कौटिल्यका कथन है कि राजाओंके मन्त्री अवश्य होने चाहिये, क्योंकि राज्यकार्य सम्पादनमें सहायताकी आवश्यकता होती है। परामर्शदाताओं और सहायकोंके बिना राज्य उसी

---

[1] के० एम० मुंशी पाटनका प्रभुत्व, खंड १, पृ० ३।
[2] वही, पृ० ४५।

भाति न चलेगा जिसप्रकार एक पहियेका रथ। राजकीय सत्ता भी मन्त्रियोंके बिना, ठीक इसी प्रकार असहायावस्थाम रहती है। अतएव राजाको मन्त्री नियुक्त करने चाहिये तथा उनसे सलाह लेनी चाहिये। मेरुतुगने अपनी रचना "प्रबन्धचिन्तामणि"मे सभाके अस्तित्वका उल्लेख किया है।[1] तत्कालीन लेखकोकी रचनाओंसे विदित होता है कि कुमारपालके राज-दरबारमें मन्त्रियोकी परिषद् थी। कुमारपालप्रतिबोध, द्वयाश्रय काव्य तथा प्रबन्धचिन्तामणिके रचयिता इस प्रश्नपर एकमत है कि कुमारपालके यहा मन्त्रि-परिषद् थी। सोमप्रभाचार्यने कुमारपालके दैनिक कार्यक्रमका वर्णन करते हुए लिखा है कि वह अपने मन्त्रियोंके साथ हाथीपर सवार होकर कुमारविहार मन्दिर जाया करता था[2]। वह पडितोकी सभामें उपस्थित होता था और उनसे विचार-विमर्श किया करता था। राज सभामें वह महामडलेश्वरो तथा सामन्तोंसे घिरा रहता था। मन्त्रिराज या प्रधान अपन साथियो सहित लिखित आदेशपत्र लेकर सदा इस आशयसे प्रस्तुत रहते थ कि पूर्व परम्पराओंकी उपेक्षा अथवा उल्लघन न होन पावे।[1] ये सभी तथ्य स्पष्टत इस बातको सिद्ध करते है कि कुमारपालको राज्य-शासन सचालनम मन्त्रियोंसे परामर्श तथा सहायता प्राप्त होती थी।

मन्त्रियों तथा मन्त्रि-परिषद्का अस्तित्व, जयसिंह सिद्धराजके शासन-कालमें भी विद्यमान था। कहा जाता है कि जब सिद्धराज मृत्यु शैय्यापर थे तब उन्होंने अपने मन्त्रियोको बुलाकर सिंहासनपर योग्य उत्तराधिकारी आसीन करनेका कार्य सौंपा था। इसके अतिरिक्त पहले देखा जा चुका है कि

---

[1] न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम्
धर्मं स नो यत्र न चास्ति सत्य सत्य न तद्यत्छलानुविद्धम्।
प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश, पृ० ५३।

[2] कुमारपालप्रति-बोध, पृ० ४२३—४४३।

[1] राममाला · अध्याय १३, पृ० २३७।

नही कर सकता था, किन्तु व्यवहारमें राजाकी स्वेच्छाचारितापर नियन्त्रण तथा अंकुश लगानेवाली अनेक शक्तियां थी। इसप्रकार सभी व्यावहारिक कार्योंके लिए वह वैधानिक शासक था।

कुमारपाल जैन आचार्य हेमचन्द्रके प्रभावमे सदा रहता था। उसके सिंहासनारूढ होनेमे राजधानीके सम्पन्न जैन दलोने बडी सहायता की थी। ये जैन करोडपति राजाकी स्वेच्छाचारितापर अत्यधिक प्रभाव डालते थे। पहले ही देखा जा चुका है कि कुमारपालके शासनकालमें बहुतसे वणिक उच्च पदोपर आसीन थे। इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपमे वे राजाको प्रभावान्वित करते थे। जैन व्यवसायी इतने शक्तिशाली थे कि एक समय पाटनके नगरसेठ और दडनायक विमल मन्त्री अनेक सम्पन्न उद्योगपतियोके साथ पाटन छोडकर चले गये थे और उन्होने चन्द्रावती नगर बसाया।[1] इसका कारण यही कहा जाता है कि बडे बडे जैन उद्योगपतियोंको, राजपूत राजाओका प्रभुत्व सहन न था। कर्णदेवके सम्बन्धमें तो यह प्रसिद्ध है कि वे जैन मन्त्रियोंके हाथकी कठपुतली थे।[2] इसप्रकार महान शक्तिसम्पन्न चौलुक्य राजाओकी स्वेच्छाचारिता नियन्त्रित होती थी।

मन्त्रि-परिषद्

इसमें कोई सन्देह नही कि चौलुक्य राजाओको शासन कार्यमें मन्त्रियों द्वारा परामर्श और सहायता मिलती थी। प्राचीनकालसे ही राजकाजमें मन्त्रियोका अत्यधिक महत्त्व रहा है। कौटिल्यका कथन है कि राजाओंके मन्त्री अवश्य होने चाहिये, क्योंकि राज्यकार्य सम्पादनमे सहायताकी आवश्यकता होती है। परामर्शदाताओ और सहायको बिना राज्य उसी

---

[1] के० एम० मुन्शी : पाटनका प्रभुत्व, खड १, पृ० ३।
[2] वही, पृ० ४५।

भाति न चलेगा जिसप्रकार एक पहियेका रथ। राजकीय सत्ता भी मन्त्रियोंके बिना, ठीक इसी प्रकार असहायावस्थामें रहती है। अतएव राजाको मन्त्री नियुक्त करने चाहिये तथा उनसे सलाह लेनी चाहिये। मेरुतुगने अपनी रचना "प्रबन्धचिन्तामणि"मे सभाके अस्तित्वका उल्लेख किया है।[1] तत्कालीन लेखकोकी रचनाओंसे विदित होता है कि कुमारपालके राजदरबारमें मन्त्रियोकी परिषद् थी। कुमारपालप्रतिबोध, द्वयाश्रय काव्य तथा प्रबन्धचिन्तामणिके रचयिता इस प्रश्नपर एकमत हैं कि कुमारपालके यहा मन्त्रि-परिषद् थी। सोमप्रभाचार्यने कुमारपालके दैनिक कार्यक्रमका वर्णन करते हुए लिखा है कि वह अपने मन्त्रियोंके साथ हाथीपर सवार होकर कुमारविहार मन्दिर जाया करता था[2]। वह पडितोकी सभामें उपस्थित होता था और उनसे विचार-विमर्श किया करता था। राज सभामें वह महामडलेश्वरो तथा सामन्तोंसे घिरा रहता था। मन्त्रिराज या प्रधान अपने साथियो सहित लिखित आदेशपत्र लेकर सदा इस आशयसे प्रस्तुत रहते थे कि पूर्व परम्पराओकी उपेक्षा अथवा उल्लघन न होने पावे।[3] ये सभी तथ्य स्पष्टत इस बातको सिद्ध करते हैं कि कुमारपालको राज्य-शासन सचालनमे मन्त्रियोंसे परामर्श तथा सहायता प्राप्त होती थी।

मन्त्रियो तथा मन्त्रि-परिषद्का अस्तित्व, जयसिंह सिद्धराजके शासनकालमें भी विद्यमान था। कहा जाता है कि जब सिद्धराज मृत्यु शैय्यापर थे तब उन्होंने अपने मन्त्रियोको बुलाकर सिंहासनपर योग्य उत्तराधिकारी आसीन करनेका कार्य सौंपा था। इसके अतिरिक्त पहले देखा जा चुका है कि

---

[1] न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम्
धर्मं स नो यत्र न चास्ति सत्य सत्य न तद्यत्कृतकानुविद्धम्।
प्रबन्धचिन्तामणि · चतुर्थ प्रकाश, पृ० ५३।

[2] कुमारपालप्रति-बोध, पृ० ४२३—४४३।

[3] राममाला : अध्याय १३, पृ० २३७।

जब सिद्धराजके उत्तराधिकारीका निर्वाचन हो रहा था, उस समय मन्त्रीगण सिंहासनके आकांक्षी राजकुमारोंसे प्रश्नकर उनकी योग्यताकी परीक्षा ले रहे थे। जब एक राज्यसिंहासनाकांक्षीसे पूछा गया कि वह सिद्धराजके अठारह क्षत्रोंका शासन कैसे सचालित करेगा तो उसका यह उत्तर कि आपके परामर्श तथा आदेशानुसार उन मन्त्रियोंको उचित नहीं प्रतीत हुआ जो सिद्धराज जयसिंहके गम्भीरस्वरपूर्ण आदेशोंके पालनके अभ्यस्त थे। इसलिए वह अयोग्य ठहराया गया।[१] प्रभावकचरितमें इस बातका उल्लेख है कि कुमारपालका राज्यारोहण श्रीमत सम्भाके द्वारा हुआ था, जिसके व्यक्तित्वके सम्बन्धमें कुछ पता नहीं चलता।[२] इसीप्रकार कुमारपालप्रतिबोधका कथन है कि मन्त्रियोंने परस्पर विचार-विमर्शकर कुमारपालको सिंहासनारूढ किया।[३] द्वयाश्रय काव्यके प्रणेता हेमचन्द्रने भी लिखा है कि मन्त्रियोंने कुमारपालको राज्यसिंहासनपर आसीन किया।[४]

मन्त्री और उनका स्वरूप

इसप्रकार निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि एक न एक रूपमें

---

[१]प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश, पृ० ७८।

[२]प्रभावकचरित २२, ३५६, ४१७।

[३]एवं परप्पर मंतिऊण तह गिण्हिऊण सवाय
सामुद्दिय मोहुत्तिय साउणिय नेमित्तिय नराणा।
रज्जमि परिट्ठुवियो कुमारवालो पहाण पुरिसेहिं
तत्तो भुवणमसेस परिओस-पर व सजाय।
कुमारपालप्रतिबोध, प० ५।

[४]तत्थ सिरि कुमरवालो वाहाए सव्वओवि धरिअ धरो
सुपरिट्ठ परीवारो सुपइट्ठो आसि राइन्दो।
द्वयाश्रय काव्य सर्ग १, पृ० १५, श्लोक २८।

इस समय मन्त्रिपरिषद्का अस्तित्व अवश्य था और उसका कार्य था राजाको शासन सचालन तथा न्याय निर्णयमे सहायता प्रदान करना। इस मन्त्रि-परिषद्का अध्यक्ष सम्भवत महामात्य, मन्त्री अथवा सचिव होता था । इसप्रकार जयसिंहके मुजाल, कुमारपालके महादेव[1] अजयपालके नागड[2] तथा सोमश्वर,[3] भीम द्वितीयके रत्नपाल,[4] वीरधवल वस्तुपाल और तेजपाल वीसलदेवके नागड,[5] अर्जुनदेवके मूलदेव,[6] सारगदेव, मधुसूदन तथा वेघ्या मन्त्री थ।[7] यह भी कहा जा सकता है कि शक्तिशाली राजाओके अधीन ये मन्त्री तदनुकूल नीति निर्देशित करते थे। यह हम पहले ही देख चुके है। राज्यके उत्तराधिकारीके चुनावके अवसरपर एक राजकुमारका यह कथन कि "आपके आदेश तथा परामर्शानुसार" उन मन्त्रियोको उचित उत्तर प्रतीत नही हुआ जो सिद्धराजके गम्भीरस्वरपूर्ण आदेशोके पालनके अभ्यस्थ थे। यह बात स्पष्टत सिद्ध करती है कि शक्तिशाली राजाओंके अधीन मन्त्रियोके लिए राजकीय सत्ताका विरोधकर सर्वथा स्वतन्त्र नीतिका निरूपण कदापि सम्भव न था।

कुमारपाल बहुत शक्तिशाली राजा था। यह हम पहले ही देख चुके है कि वह पचास वर्पकी अवस्थामें सिंहासनारूढ हुआ। उसकी प्रौढावस्था तथा विभिन्न देशोंमें पर्यटनसे प्राप्त अनुभवोंके फलस्वरूप उसम तथा

---

[1]आर्कलाजिकल सर्वे आव इडिया वेस्टर्न सर्किल १९०७-८, ५४-५५।

[2]इडि० ऐंटी० : खड १८, पृ० ३४७।

[3]वही, पृ० ११३।

[4]इपि० इडि० . खड ८, पृ० २०९।

[5]इडि० ऐंटी० : खड ६, पृ० ११२।

[6]राव शिलालेख।

[7]इडि० ऐंटी० : खड ४१, पृ० २१२ *तथा पूना ओरियटलिस्ट* जुलाई १९३१, पृ० ७१।

उसके कतिपय पुराने उच्च कर्मचारियोंमें मतभेद उत्पन्न हो गया। पुराने मन्त्रियोंने अनुभव किया कि कुमारपाल जैसे योग्य तथा शक्तिशाली शासकके अधीन उनका प्रभाव एकदम विलुप्त हो गया है। परिणामस्वरूप उन्होंने राजाकी हत्याकर अपनी पसन्दका राजा गद्दीपर बैठानेका निश्चय किया। सौभाग्यसे कुमारपालको इस षड्यन्त्रका पता लग गया और सभी षड्यन्त्रकारियोंको प्राणदंड मिला। निरंकुश तथा शक्तिशाली राजाओंके अधीन मन्त्रियोंकी स्थिति कैसी रहती थी, यह उसका एक उदाहरण है।

केन्द्रीय सरकारका संघटन

गुजरातके चौलुक्योंके शासनकालमें विभिन्न शासन यन्त्रोंका विकसित तथा पुष्टस्वरूप विद्यमान था। ऐतिहासिक तथा तत्कालीन साहित्यिक रचनाओंके अतिरिक्त, शिलालेखों, दानपत्रों आदिके भी ऐसे पुष्ट प्रमाण हैं, जिनसे विभिन्न राज्याधिकारियोंका पता चलता है। उनके कर्त्तव्योंपर प्रकाश डालते हुए ये विभिन्न प्रशासकीय इकाइयोंका भी नामोल्लेख करते हैं। कुमारपालका साम्राज्य बहुत लम्बा चौड़ा था, इसलिए शासनकी सुविधाके विचारसे इसे केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारोंमें विभाजित किया गया था। केन्द्रीय सरकारमें विभिन्न अधिकारी और विभाग निम्नलिखित थे —

१ महामात्य[1]
२ सचिव
३ मन्त्री
४ महाप्रधान[2]
५ महामंडलेश्वर[3]

---

[1]आर्कि० सर्वे इंडिया के० स० : १९०७-८, पृ० ५४-५५।

[2]इंडि० ऐंटी० : खंड १३, पृ० ८३।

[3]इंडि० ऐंटी० : खंड १०, पृ० १५९, इपि० इंडि० खंड ८, पृ० २१९, इंडि० ऐंटी० : खंड १८, पृ० ८३, वही, खंड १०, पृ० १६०।

६ दडाधिपति
७ दडनायक[1]
८ देश रक्षक[2]
९ कर्णपुरुप
१० अधिष्ठानक[3]
११ शौल्यणपाल
१२ भट्टपुत्र
१३ विषयिक[4]
१४ पट्टाक्लि[5]
१५ सान्धिविग्रहक[6]
१६ दूतक[7]
१७ महाक्षपटलिक[8]
१८ राणक[9]
१९ ठाकुर[10]

---

[1]आर्कि सर्वे इडिया वे० स० १९०७ ८, ४४-४५, ५१-५२, ५४-५५।
[2]चाकलाजी आव गुजरात अध्याय ९, पृ० २०३ तथा मोहराज पराजय अक ४, पृ० ७८।
[3]वही।
[4]वही।
[5]वही तथा इपि० इडि० खड २३, पृ० २७४।
[6]इपि० इडि० खड ११, पृ० ४४।
[7]इडि० ऐंटी० खड ४१, पृ० २०२-३।
[8]चाक्लाजी आव गुजरात, अध्याय ९, पृ० २०३।
[9]इपि० इडि० खड ११, पृ० ४७ ४८।
[10]वही।

राजवंशके ही किसी व्यक्तिको उक्त पदपर नियुक्त किया जाता था। वह मंडलका सर्वोच्च प्रशासक तथा कार्याध्यक्ष होता था। विक्रम संवत् १२०२ (सन् ११४५ ईस्वी)के दोहाद प्रस्तर लेखमें भी "महामंडलेश्वर"-का उल्लेख आया है। इसमें कहा गया है कि महामंडलेश्वर वपनदेवकी कृपासे राणा शकरसिंह महान पदको प्राप्त कर सके। अनेक विद्वानोंका मत है कि यद्यपि इसमें शासन करनेवाले राजाका स्पष्ट नाम नहीं दिया गया है, तथापि यह कुमारपालके शासनकालका ही है।[1]

अधिष्ठानक—राज्यके महत्त्वपूर्ण न्याय विभागका विचारक अधिष्ठानक कहा जाता था।

सान्धिविग्रहिक—राजनीतिक दूत थे, जिनका सम्बन्ध शान्ति और युद्धसे था। इनका महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य था—केन्द्रीय सरकारको परराष्ट्रीय परिस्थितियोंसे अवगत रखना। कुमारपालके शासनकालके किराडू शिलालेखमें सान्धिविग्रहिककी भी चर्चा हुई है। इसमें कहा गया है कि यह आदेश राजा कुमारपालके हस्ताक्षरसे प्रसारित हुआ तथा सान्धिविग्रहिक खेलादित्यने इसे लिखा था।[2]

विषयिक—मंडलसे छोटे किन्तु ग्रामोंके समूहका सर्वोच्च शासक विषयिक होता था। यह सबसे बड़ा प्रादेशिक क्षेत्र होता था, जिसे आधुनिक कालमें प्रान्त कहा जा सकता है। प्रत्येक विषय अथवा पाठकके प्रशासनके लिए यह अधिकारी नियुक्त होता था तथा अपने उच्च अधिकारीके प्रति उत्तरदायी होता था। इस प्रकार हम देखते हैं कि वांधिपाठकके महामंडलेश्वर वयजलदेवके शासनकालमें महामंडलेश्वर राणा सामन्तसिंह अमात्य नागडके अधीन थे।[3] वमनस्थलीके महत्तर शोयन-

---

[1] ध्रुव : इंडि० ऐंटी० : खंड १०, पृ० १६०।

[2] इपि० इंडि० : खंड ११, पृ० ४४, सूची संख्या २८७।

[3] इंडि० ऐंटी० : खंड ९, पृ० १५१।

देवके तत्कालीन उच्च अधिकारी सौराष्ट्रके महामडलेश्वर सोमराज थे ।[1]

पट्टाकिल—यह गावकी मालगुजारी एकत्र करनेवाला अधिकारी था।[2] आधुनिक पाटिल अथवा पटेल इसी शब्दसे बने हैं। कोकणके शीलहारोंके शिलालेखोमें पट्टालिक शब्द व्यवहृत हुआ है।[3] पट्टाकिल ग्रामका उत्तरदायी अधिकारी था और उसका मुख्य कर्त्तव्य था मालगुजारी एकत्र कराना। प्रान्तीय सरकारके माध्यमसे उसका सम्बन्ध केन्द्रीय सरकारसे भी था।

दूतक तथा महाक्षपटलिक—ये क्रमश. राजदूत तथा अभिलेखपाल थे। महाक्षपटलिक राज्यका बहुत महत्त्वपूर्ण अधिकारी था। राज्यके समस्त अभिलेख उसीके अधीन रहते थे। कौटिल्यके अर्थशास्त्रसे हमें विदित होता है कि यह विभाग राज्यमें बहुत प्राचीनकालसे चला आ रहा था और इसके अन्तर्गत विशद पद्धति प्रचलित थी।[4]

राणक तथा ठाकुर—ये भी राज्यके दो महत्त्वपूर्ण अधिकारी थे। यह दो उपाधिया ऐसी थी, जो राष्ट्र अथवा राज्यके प्रति की गयी सेवाओंके विचारसे किसी व्यक्तिको प्रदान की जाती थी। "राणक"का केवल गुजरातमें ही प्रयोग नही पाया जाता अपितु अन्य स्थानोमें भी। सम्भवत यह राजपूत उपाधि "राणा"का पूर्व रूप है।[5] ठाकुर भी राज्यके उच्च अधिकारी थे। कुमारपालके शासनकालमे ठाकुर खेलादित्य सान्धिविग्रहिकका कार्य सम्पन्न कर रहे थे।[6] कुमारपालके शिलालेखोम

---

[1] वही, खंड १८, पृ० १३३।

[2] आर्किलाजी आव गुजरात : अध्याय ९, पृ० २०३।

[3] इपि० इंडि० : खड २३, पृ० २७४।

[4] अर्थशास्त्र : अध्याय २, श्लोक ७।

[5] आर्किलाजी आव गुजरात : अध्याय ९, पृ० २०३।

[6] "... सान्धिविग्रहिक ठा० खेलादित्येन लि.." किराडू शिलालेख।

दूतक,[1] राणा,[2] तथा ठाकुर[3] नामके अधिकारियोंके उल्लेख आये हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि कुमारपालके शासनकालमें केन्द्रीय सरकारका संघटन अत्यन्त व्यवस्थित था। केन्द्रीय सरकारको सफल बनानेवाले सभी महत्त्वपूर्ण विभाग राज्यमें संघटित थे। शिलालेखों, दानलेखों, अभिलेखों तथा अन्य साधनोंसे विभिन्न राज्य अधिकारियोंके पद तथा उनके कर्तव्योंका पूर्णरूपेण विवरण प्राप्त होता है।

प्रान्तीय सरकार

यह पहले ही देखा जा चुका है कि चौलुक्य राजाओंका राज्य सुदूर प्रदेशों तक विस्तृत तथा व्यापक था। केन्द्रीय सरकारके लिए यह सम्भव न था कि वह समस्त राज्यकी समुचित व्यवस्थामें समर्थ और सफल होती। फलस्वरूप सम्पूर्ण राज्य शासन-संचालनकी सुविधाके विचारसे अनेक खंडोंमें विभाजित था, जिसे प्रान्तकी संज्ञा दी जा सकती है।

मंडल—राज्यका सबसे बड़ा प्रादेशिक खंड था, जिसकी समानता आधुनिक प्रान्तसे की जा सकती है। कहीं लाट और सौराष्ट्रको देश कहा गया है और कहीं गुर्जर मंडल। सम्भव है कि समस्त गुजरातके अर्थमें गुर्जरमंडलका प्रयोग हुआ हो। मंडलका प्रशासक महामंडलेश्वर पुकारा जाता था और उसकी नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा होती थी। जूनागढ़ शिलालेखमें अंकित है कि प्रभासपाटनके गूमदेवकी नियुक्ति कुमारपालने विक्रम संवत् ११९९ तथा १२२९के मध्यमें की थी।

---

[1] "दूतकोऽत्र देवकरणो महं साक्ष्यगुगुण" इंडि० ऐंटी० खंड ४१, पृ० २०२ ३।

[2] "बोरिपद्यके राणा लखमण राजे " इपि० इंडि० : खंड ११, पृ० ४७-४८।

[3] "स्वति सोनाणाग्रामे ठा० अणसीहुस्य " . वही।

उसने आभीरोके विद्रोहका दमन किया जिसका प्रभाव स्थानीय था।[1] कतिपय नवविजित प्रान्तोको दडनायकके अधीन रखा जाता था। इसका कारण अवश्य ही सैनिक तथा स्थानके महत्व विशेषसे सम्बन्धित रहता था। विक्रम सवत् १२००के बाली शिलालेखसे विदित होता है कि चौहान चौलुक्योंसे सदा लडते रहते थे। अन्तमे चौलुक्यराज सिद्धराज जयसिंहने चौहानोको पराजित किया। बालीमें जयसिंहका अधीनस्थ अश्व राजा था। किन्तु इसी शिलालेखसे ज्ञात होता है कि नाडुलयका नयाप्रान्त कुमारपालके सेनापति वयजलदेव द्वारा प्रशासित था। ऐसा प्रतीत होता है कि चौहानोने अपने अधिपति चौलुक्योको अप्रसन्न कर दिया था और इसीके परिणामस्वरूप गोडवाडसे उन्हे हटा दिया गया तथा उस प्रदेशके प्रशासनके लिए नये सेनापति वयजलदेवकी नियुक्ति की गयी।[2]

महामडलेश्वरोकी सहायता प्रान्तके अन्य अधिकारी करते थे, जिनकी नियुक्ति वे स्वय करते थे, किन्तु उनकी स्वीकृति केन्द्रसे लेनी पडती थी। महामडलेश्वरोको पुरस्कृत और दडित करनेका भी अधिकार था। इसकी पुष्टि दोहाद शिलालेखसे होती है जिसमे कहा गया है कि महामडलेश्वर वपनदेवकी कृपासे राणा शवरसिंहने उच्चपद प्राप्त किया।

विषय तथा पाठक—मडलके बाद उससे छोटी प्रादेशिक इकाई *विषय तथा पाठक* थे। *विषय ग्रामोका समूह था तो पाठक बडा गाव* था। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि इन दोनोमे कोई विशेष भिन्नता नही

---

[1] "श्री गूमदेवोवली यत्खड्गाहत भीति कंप तरलैराभीर वीरैः" पूना ओरियंटलिस्ट खड : १, उपखंड २, पृ० ३९।

[2] "...तस्मिन काले प्रवर्त्तमाने श्रीनड्डूले दंड श्रीवयजलदेव प्रभृति पचकुलप्रतिपत्तौ ..."—आर्कि० सर्वे० इडिया वे० स० १९०७-८, पृ० ५४-५५ तथा "महानड्डूले भुज्यमान महाप्रवण दंडनायक श्रीवैजाक."—भटूंड शिलालेख।

दूतक,[1] राणा,[2] तथा ठाकुर[3] नामके अधिकारियोंके उल्लेख आये हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि कुमारपालके शासनकालमें केन्द्रीय सरकारका संघटन अत्यन्त व्यवस्थित था। केन्द्रीय सरकारको सफल बनानेवाले सभी महत्त्वपूर्ण विभाग राज्यमें संघटित थे। शिलालेखों, दानलेखों, अभिलेखों तथा अन्य साधनोंसे विभिन्न राज्य अधिकारियोंके पद तथा उनके कर्तव्योंका पूर्णरूपेण विवरण प्राप्त होता है।

प्रान्तीय सरकार

यह पहले ही देखा जा चुका है कि चौलुक्य राजाओंका राज्य सुदूर प्रदेशों तक विस्तृत तथा व्यापक था। केन्द्रीय सरकारके लिए यह सम्भव न था कि वह समस्त राज्यकी समुचित व्यवस्थामें समर्थ और सफल होती। फलस्वरूप सम्पूर्ण राज्य शासन-संचालनकी सुविधाके विचारसे अनेक खंडोंमें विभाजित था, जिसे प्रान्तकी संज्ञा दी जा सकती है।

मंडल—राज्यका सबसे बड़ा प्रादेशिक खंड था, जिसकी समानता आधुनिक प्रान्तसे की जा सकती है। वही लाट और सौराष्ट्रको देश कहा गया है और वही गुर्जर मंडल। सम्भव है कि समस्त गुजरातके अर्थमें गुर्जरमंडलका प्रयोग हुआ हो। मंडलका प्रशासक महामंडलेश्वर पुकारा जाता था और उसकी नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा होती थी। जूनागढ़ शिलालेखमें अंकित है कि प्रभासपाटनके गूमदेवकी नियुक्ति कुमारपालने विक्रम संवत् ११९९ तथा १२२९के मध्यमें की थी।

---

[1] "दूतकोऽत्र देवकरणो महं साक्ष्यगुणण" इंडि० ऐंटी० खंड ४१, पृ० २०२-३।

[2] "चौरिपद्रके राणा लखमण राजे " इपि० इंडि० : खंड ११, पृ० ४७-४८।

[3] "स्वति सोनाणाग्रामे ठा० अणसीहुस्य " : वही।

उसने आभीरोंके विद्रोहका दमन किया जिसका प्रभाव स्थानीय था।[1] कतिपय नवविजित प्रान्तोको दडनायकके अधीन रखा जाता था। इसका कारण अवश्य ही सैनिक तथा स्थानके महत्त्व विशेषसे सम्बन्धित रहता था। विक्रम सवत् १२००के बाली शिलालेखसे विदित होता है कि चौहान चौलुक्योंसे सदा लडते रहते थ। अन्तम चौलुक्यराज सिद्धराज जयसिहन चौहानोको पराजित किया। बालीमें जयसिहका अधीनस्थ अश्व राजा था। किन्तु इसी शिलालेखसे ज्ञात होता है कि नाडुलयका नयाप्रान्त कुमारपालके सेनापति वयजल्देव द्वारा प्रशासित था। एसा प्रतीत होता है कि चौहानान अपन अधिपति चौलुक्योको अप्रसन्न कर दिया था और इसीके परिणामस्वरूप गोडवाडस उन्ह हटा दिया गया तथा उस प्रदेशके प्रशासनके लिए नय सेनापति वयजल्देवकी नियुक्ति की गयी।[2]

महामडलेश्वराकी सहायता प्रान्तके अन्य अधिकारी करते थ, जिनकी नियुक्ति वे स्वय करत थ, किन्तु उनकी स्वीकृति केंद्रसे लेनी पडती थी। महामडलेश्वरोको पुरस्कृत और दडित करनका भी अधिकार था। इसकी पुष्टि दोहाद शिलालेखसे होती है जिसम कहा गया है कि महामडलेश्वर वपनदेवकी कृपासे राणा शकरसिहन उच्चपद प्राप्त किया।

विषय तथा पाठक—मडलके बाद उससे छोटी प्रादेशिक इकाई *विषय तथा पाठक थ। विषय ग्रामोका समूह था तो पाठक बडा गात्र* था। किन्तु एसा प्रतीत होता है कि इन दानोमें कोई विशष भिनता नही

---

[1] "श्री गूमदेवोवली यत्खड्गाहत भीति कप तरलैराभीर वीरै" पूना ओरियटलिस्ट खड १, उपखड २, पृ० ३९।

[2] " तस्मिन काले प्रवत्तमाने श्रीनड्डूले दड श्रीवयजलदेव प्रभृति पचकुलप्रतिपत्तौ "—आर्कि० सर्वे० इडिया वे० स० १९०७-८, पृ० ५४-५५ तथा "महानड्डले भुज्यमान महाप्रवण दडनायक श्रीवैजाक"—भट्टूड शिलालेख।

मानी जाती थी। एक स्थानमें गाम्भूत विषयके नामसे सम्बोधित किया गया है तो दूसरे स्थानमें उसे पाठक कहा गया है।[1] प्रत्येक विषय और पाठक एक पृथक अधिकारीके अधीन था। यह अधिकारी अपने उच्च पदाधिकारीके प्रति उत्तरदायी होता था। कुमारपालके शिलालेखोंमें इन प्रादेशिक इकाइयोंका नामोल्लेख हुआ है। विक्रम संवत् १२०६के पाली शिलालेखमें पल्लिका विषय (श्रीमत्पल्लिका विषये)की चर्चा आयी है जहां यामुंडराज शासन कर रहे थे। यही प्राचीन पल्लिका नगर आधुनिक पाली है। इसीप्रकार ग्राम भी इस समय शासकीय इकाई था। केल्हणके नडलाई शिलालेखसे विदित होता है कि विक्रम संवत् १०२३में चौलुक्यराज कुमारपालके शासनकालमें जब केल्हण नाडुल्यके तथा राणा लक्ष्मण बोरिपद्यकके शासक थे, उस समय सोनाणाग्रामके ठाकुर अर्णसिंह थे।[2] आहार, द्रंगा, मंडली तथा स्थली आदि शासकीय इकाइयोंका चौलुक्य शासनमें कोई उल्लेख नहीं मिलता। वल्लभी अभिलेखोंमें इनकी इतनी अधिक चर्चा आयी है कि चौलुक्योंके समय इनका उल्लेख न होना आश्चर्यजनक प्रतीत होता है। इसके दो कारण सम्भव हैं। एक तो काठियावाडके अनेकानेक स्थानोंका अभी तक उत्खनन नहीं हुआ है और दूसरा यह कि सम्भवतः ये मैत्रिकोंके बाद विलीन[3] हो गयी हों।

---

[1] इंडि० ऐंटी० खंड ६, पृ० १९६-८ तथा (२) बौ० ओ० जे० बी०, ३०० । प्रथममें गाम्भूतको "पाठक" कहा गया और दूसरेमें "विषय" ।

[2] श्रीकुंवरपालदेव विजय राज्ये श्रीनाडुल्य पुरात श्रीकेल्हण. राजे बोरिपद्यके राणा लखमण राजे स्वतिसोनणाग्रामे ठा अणसी हुस्य . "
इपि० इंडि० खंड ११, पृ० ४७-४८ ।

[3] आर्कलाजी आव गुजरात पृ० २०२ ।

केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारका सम्बन्ध

चौलुक्योंकी सरकारका केन्द्रीयकरण अत्यन्त सुदृढ था। यद्यपि प्रान्तीय सरकार तथा केन्द्रीय सरकारका शासनतन्त्र पृथक्-पृथक था तथापि प्रान्त, केन्द्रीय सरकारकी नीतिका ही अनुगमन करता था। उच्च प्रान्तीय अधिकारी विशेषत दडपाल तो केन्द्र द्वारा ही नियुक्त होता था। गाला शिलालेखमे यह बात स्पष्ट रूपसे अकित है कि राजधानी अनहिलपाटनमे महामात्य महादेव समस्त राजकार्यका सचालन करते थे। इसीके साथ उन सभी उच्चाधिकारियोंके नामोंका भी उल्लेख हुआ है, जिनकी नियुक्ति पहले महामात्य अम्बप्रसाद तथा चहडदेवने अपने शासनकालमें काठियावाडके उस प्रदेशम की थी जहा गाला स्थित है।[1] इससे स्पष्ट है कि प्रान्तीय सरकार केन्द्रीय सरकारके प्रति उत्तरदायी थी।

कभी-कभी राजा स्वय आज्ञा प्रचारित करता था और उसको जनतासे कार्यान्वित कराना अधिकारियोका कर्तव्य होता था। विक्रम सवत् १२०६म कुमारपालने कतिपय विशेष दिनोंको पशुहिंसापर प्रतिबन्ध लगा दिया था। इसका उल्लघन करनेवाले राजकीय परिवारके सदस्योंके लिए भी अर्थदडकी व्यवस्था थी और अन्य साधारण लोगोंके लिए मृत्युदड नियत था। यह आज्ञा कुमारपालके हस्ताक्षरसे स्वीकृत और प्रचारित की गयी थी।[2]

---

[1] "महामात्य श्रीमहादेव : (वे) इत्येतस्मिन काले प्रवर्तमाने . कुमारपाल पर? तडाग कर्मस्थाने महामात्य श्रीअम्बप्रसाद प्रतिबद्ध मेह० सजिग। महाक्ष० श्रीदेऊयप्रतिवध(द्ध) पारे० धवल। महाक्ष० श्री-कल्लनप्रसाद प्रतिवध(द्ध) द्वि पारे० बाधूय। महामात्य श्रीचाहडदेव प्रतिबध(द्ध) त्रि ? प्रता . " पूना ओरियटलिस्ट : खड १, उपखड २, पृ० ४०।

[2] इपि० इडि० : खड ११, पृ० ४४।

अन्तमें केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारकी एक विशेष स्थिति ध्यान देने योग्य है। साधारणत होता यह था कि विजयी राजाकी प्रभुसत्ता स्वीकार कर लेनेपर विजित प्रदेश उसके मूल शासकको पुन सौंप दिया जाता था। जब तक अधीनस्थ राजा विश्वस्त बना रहता था, यह स्थिति रहती थी। इससे विपरीत स्थिति होनेपर राज्य जब्त कर लिया जाता था। कुमारपालके किराडू शिलालेखमें उस घटनाका उल्लेख है, जिसमें कहा गया है कि विक्रम सवत् ११६८में सिद्धराज जयसिंहकी अनुकम्पासे सोमेश्वरने सिन्धुराजपुर वापस प्राप्त कर लिया था।[1] विक्रम सवत् १२०५में कुमारपालकी कृपादृष्टिसे उसने अपने राज्यको और सुदृढ बनाया। इन कथनोंसे ऐसा प्रतीत होता है कि दन्दुकने भीम प्रथमसे अपने सम्बन्ध अच्छे कर लिये थे किन्तु प्रभुसत्ता और अधीनस्थमें पुन विग्रहकी स्थिति उत्पन्न हो गयी। इसका परिणाम यह हुआ कि किराडू प्रदेश गुर्जरराज द्वारा हस्तगत कर लिये गये। बादमें उदयराज तथा उसके पुत्र सोमेश्वरने सिद्धराजको युद्धमें सहायता प्रदान कर प्रसन्न कर लिया था। फलस्वरूप उसका राज्य लौटा दिया गया था। सोमेश्वरने किरातपुरमें दीर्घकाल तक शासन किया। यही किरातपुर आधुनिक किराडू है। विक्रम सवत् १२०९के किराडू शिलालेखसे ज्ञात होता है कि किरातकूप चौहान अलहणदेवके अधिकारमें कुमारपालकी कृपासे था, किन्तु शिलालेखमें इस बातका भी उल्लेख है कि यह परमार वशसे अधिकारमें आया था।[2]

स्थानीय स्वायत्त शासन

भारतमें अनेकानेक धार्मिक तथा राजनीतिक क्रान्तियाँ हुई, किन्तु

---

[1] इडि० ऐंटी० खड ६१, पृ० १३५, सूची सख्या ३१२।

[2] इपि० इडि० खड ११, पृ० ४३।

इनके होते हुए भी ग्रामोकी स्वायत्तशासन करनेवाली सत्तापर उनका कोई प्रभाव नही पडा। भारतम अगरेजोके आगमनके पूर्व तक ग्राम-पचायतो और ग्राम-सघोका अस्तित्व था। चौलुक्योंके शासनकालमें भी "देश" ग्रामोम विभाजित था। ग्रामीण, कौटुम्बिक कहलाते थे और ग्रामका मुखिया पट्टाकिल (पटेल) कहलाता था।[1] केन्द्रीय सरकारके सघटनमें हम देख चुके हैं कि पट्टाकिल मालगुजारी एकत्र करनेवाला राज्याधिकारी था।[2] कोकणके शीलहारोंके शिलालेखोम पट्टाकिल्का, जो बादमें पटेल हो गया, उल्लेख हुआ है।[3] यद्यपि वह ग्रामका मुखिया था और उसका मुख्य कार्य मालगुजारी एकत्र करना था तथापि विभिन्न कार्योंके सम्पादनमें उसे ग्रामसभासे अवश्य सहायता मिलती होगी। ग्रामशासन यद्यपि स्वतन्त्र तथा स्वायत्त था तथापि कुछ न कुछ अशोमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे वह केन्द्रके प्रति भी उत्तरदायी था।

नगरोमें बडे बडे व्यवसायी कुवर, महत्तर वणिज, महाजन तथा वणिकोकी श्रणिया और सघ थ। कुवर नगरश्रेष्ठी कहा जाता था। सरकारपर इसका अत्यधिक प्रभाव था। राजधानी अणहिलवाडाके वणिक बहुत सम्पन्न थे। वहा अनेक लक्षाधिपति थे और कोटिश्वरोंके भव्य भवनोपर बडी-बडी पताकाए और घटे लटकते रहते थ। उनका वैभव, राजकीय वैभवके समान प्रतीत होता था। कुमारपाल नगरश्रेष्ठीकी चर्चा बहुत आदरपूर्वक करता है,[4] और उसकी मृत्युका समाचार सुनकर

---

[1] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३१।

[2] आर्क्लाजी आव गुजरात : अध्याय ९, पृ० २०३।

[3] इपि० इडि० · खड २३, पृ० २७४।

[4] निज विभवनिर्जितामरपुरीकमेते वय सहानेन
यन्नगरमधिवसाम : कथ न जानीम त(स्त) नाम।
मोहराजपराजय अक ३, पृ० ५१।

शोकग्रस्त होता हैं।[1] चौलुक्य राजाओंपर उद्योगपतिवर्गका कैसा प्रभाव था, इससे स्पष्ट हो जाता हैं। राजधानी अणहिल्वाडामें वणिज श्रेणी अथवा संघ स्वायत्त शासनसे परिचालित होते थे और नगरपालिकाके शासनमें भी सहयोग प्रदान करते थे, इस तथ्यका स्वीकार करनेके लिए अनेक कारण हैं।

आर्थिक व्यवस्था पद्धति

आर्थिक व्यवस्थाका विभाग राज्यका सबसे महत्त्वपूर्ण विभाग था। यह विदित था कि अर्थसे ही सभी कार्योंकी उत्पत्ति होती है। यही सभी धर्मोंका भी साधन हैं।[2] रामायणमें लंकाकाडमें लक्ष्मणने रामसे जो कथन व्यक्त किया है, उससे धर्म तथा अर्थका महत्त्व सम्यक् रूपेण स्पष्ट हो जाता है।[3] वास्तवमें राष्ट्रकी भौतिक उन्नतिके लिए अर्थ अनिवार्य है। वैदिककालसे ही करका संग्रह राजाके कर्तव्यके अन्तर्गत समझा जाता रहा है।[4] यह परम्परा समयानुसार और भी विकसित हुई होगी और इसमें सन्देहका कोई कारण नहीं कि चौलुक्योंने भी इस व्यवस्था और विभागकी ओर समुचित ध्यान अवश्य दिया था।

---

[1] कष्ट भो। कष्टम् मन्ये च तद्गृहादेवायमतीव करुणोरोदन ध्वनिरुद्गमत्। वही।

[2] वनपर्व ३३ ४८।

[3] अर्थेभ्योहि विवृद्धेभ्य संवृत्तेभ्यस्ततस्तत
क्रिया सर्वा प्रवर्तन्ते पर्वतेभ्य इवापगा
अर्थेन हि विमुक्तस्य पुरुषस्याल्प तेजस
व्युच्छिद्यन्ते क्रिया सर्वा ग्रीष्मे कुसरितो यथा।

वाल्मीकि रामायण।

[4] "इय ते राट् कृपि त्वा क्षेमत्वा कोषत्वा"। शतपथ ब्राह्मण ५ २ २५।

भूमि ही आयका सबसे महत्त्वपूर्ण साधन थी। हिन्दू समाजके इतिहासमें भूमि का प्रश्न सभीके मौलिक हित और स्वार्थका प्रश्न था। चौलुक्योंके समकालीन लेखकों तथा ग्रन्थकारोंने इस विषयपर कोई विशेष प्रकाश नहीं डाला है और सम्भवत इसीलिए कि यह तो समस्त ससारको विदित ही था। प्रसगासे हमे ज्ञात होता है कि उपजमें राजाका भाग होता था। कभी राजा अपना यह भाग सीधे किसानसे या अपने कर्मचारी द्वारा जो 'मन्त्री' कहलाते थे, लिया करता था। कभी यह भी होता था कि किसानसे ग्रामका मुखिया अथवा हिस्सा ले लेता था और राजा ग्रामके इन शासको द्वारा अपना अश प्राप्त करता था।

अवर्षणके फलस्वरूप राजाका अश किसान न दे पाता था और उसपर राजाका हिस्सा देनेके लिए दबाव डाला जाता था। किसान हठपूर्वक सिद्धान्त की दुहाई देता और असहाय बालकके समान अपना दुख प्रकट करता। दोनों पक्षोंमे अनेक प्रकारकी कठिनाइया उपस्थित होती और एक न्यायालयमे अन्तिम समझौता होता। यह न्यायालय ठीक वैसा ही होता था, जैसा न्यायालय आज भी स्थानीय नियमोंके अनुसार देशके विभिन्न भागोंमे ऐसे प्रश्नोंका निर्णय किया करता है।[1] इसप्रकार आयका बहुत बडा भाग भूमिसे प्राप्त होता था। इसमे भूमिकी उपजका एक निश्चित अश द्रव्य या अन्न रूपमें देनेका सिद्धान्त नियत रहता था। अन्नरूपमे ही उक्त भाग देना अधिक अच्छा माना जाता था।[2] राजाको उपजका छठा हिस्सा करके रूपमें दिया जाता था। इसीलिए राजाको 'षड्भागभृतराजा', 'षड्भागभाक' और 'षड्स्ववृत्ति' कहा जाता था। इसप्रकार निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि राजाका हिस्सा भूमिकी उपजका षष्ठ भाग नियत था।

---

[1] रासमाला अध्याय १३, पृ० २३१ २३२।

[2] हिंदू एडमिनिस्ट्रेटिव इस्टीट्यूशन अध्याय ४, पृ० १६३।

भूमि का विशाल भाग राज्यके अधिकारमें था। यह इस बातसे भी स्पष्ट है कि राजाओंने बहुतसी भूमि दान दी थी। मुख्यतः राजाओंने धार्मिक व्यक्तियों अथवा मन्दिरोंको उक्त भूमिखंडोंका दान दिया था। इस प्रकारके अनेक उदाहरण अभिलिखित हैं। उदाहरणार्थ सिद्धपुर तथा सिहोर ग्राम ब्राह्मणों और जैन आचार्योंको राजाकी ओरसे दान दिये गये थे। राजा द्वारा इन भूमिखंडोंके पृथक्करणको "ग्रास" कहा गया है। यह शब्द तत्कालीन धार्मिक दानलेखोंमें साभिप्राय प्रयुक्त हुआ है। राजपरिवारके लोगोंको भी भूमि या जागीरें मिला करती थी। ऐसे लोगोंमें देवुली तथा बघेलके नाम उल्लेख्य हैं। दयालुताके सम्राट कुमारपालके सम्बन्धमें भी कहा जाता है कि उन्होंने संकटके समय अमूल्य सहायता प्रदान करनेवाले अलिंग कुम्हारको सात सौ गाव लिखकर दान कर दिये थे।[1]

भूमिसे आयके अतिरिक्त अणहिलपाटनके राजाको व्यापारसे भी पर्याप्त मोटी रकमकी आय होती थी। राज्यमें ले जाये जानेवाले सभी मालोंपर निवासी कर तथा "दान" लिया जाता था।[2] पोत, समुद्र व्यवसायी तथा समुद्री लुटेरोंका भी उल्लेख आया है। व्यवसायियों तथा उद्योगपतियोंको वणिज, महत्तर वणिज और महाजन कहा जाता था।[3] यहाके उद्योगपति अत्यधिक सम्पन्न थे। जिस व्यवसायीके पास एक करोडकी सम्पत्ति एकत्र हो जाती थी उसे कोटयाधीशकी पताका फहरानेका गौरव प्रदान किया जाता था। योगराजके शासनकालमें,

---

[1] तदनु चौलुक्यराजा कृतज्ञ चक्रवर्तिना आलिगकुलालाय सप्तशती ग्रामिता विचित्रा चित्रकूट पट्टिया ददे। प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश, पृ० ८०।

[2] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३५।

[3] मोहराजपराजय : अंक ३, पृ० ५०-७०।

एक विदेशी राजाका हाथी, घोड़े और व्यापारके सामानोंसे लदा जहाज सोमेश्वर पाटनके वन्दरगाहपर बहकर आ लगा था। सिद्धराजके राज्य-कालमें समुद्रसे व्यापार करनेवाले संयात्रिक अपना स्वर्ण, समुद्री डाकुओंके भयसे गांठोंमें छिपाकर ले जाते थे। अणहिलपाठकके राजाके अधिकारमें उत्तरी कोंकण तथा समस्त गुजरातके समुद्री स्थान भी थे। स्तम्भतीर्थ तथा भृगुपुर क्रमशः सूरत तथा गुडावाके वन्दरगाह हैं। सूर्यपुर सम्भवतः सूरत है तथा गुंडावा गुणदेवी है। देव्य, द्वारका; देवपाटन, मोवा, गोपनाथ आदि वन्दरगाह सौराष्ट्रके तटपर स्थित हैं।[1] स्पष्टतः राजाको भारी पैमानेपर होनेवाले इस उद्योगसे, राजकीय कोषमें पर्याप्त अच्छी धनराशि मिल जाती थी। अवश्य ही उद्योगके लिए उपयुक्त इन प्रसिद्ध वन्दरगाहोंसे भी राजकोशमें यथेष्ठ परिमाणमें धन प्राप्त होता था।

राजकीय आयका इस समय एक और भी महत्त्वपूर्ण साधन था। वह यह था कि उत्तराधिकारी न छोड़नेवाले नि.सन्तान लोगोंकी मृत्युके बाद उनकी समस्त सम्पत्ति राज्य हस्तगत कर लेता था। ऐसे लोगोंके घरपर अधिकार कर चुकने तथा एक पंचकुलकी (समिति) नियुक्तिके पश्चात् राज्याधिकारी सभी वस्तुएं जब उठा ले जाते थे, तब कहीं शव अन्तिम क्रियाके निमित्त ले जाया जा सकता था। इसप्रकारकी घटनाका पता, कुमारपालके समसामयिक यशपालके नाटक मोहराजपराजयसे लगता है। इसमें कहा गया है कि राजाके पास चार उद्योगपति इस आशय-का समाचार लेकर पहुंचे कि राजधानीका कुवेर नामका एक लक्षाधिपति समुद्र यात्रामें दिवंगत हो गया है, इसलिए राज्याधिकारियोंको भेजकर उसकी सम्पत्तिपर राज्य अपना अधिकार कर ले।[2]

---

[1] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३५।

[2] वणिजः—'देव ! कुवेरस्वामी निष्पुत्र इति तल्लक्ष्मीर्नरेन्द्र गृहानुपतिष्ठते। तदादिश्यतामध्यक्षः कोऽपियेन तत्परिगृहीते गृह—

-मद्य तथा द्यूत भी राज्यकी आयके साधन थे। राजा तथा प्रजा दोनोंमें द्यूतका अत्यधिक प्रचार था। यह राज्यके नियन्त्रणमें होता था। यशपालने लिखा है कि द्यूत तथा मद्यसे राजकोषमें विशाल धनराशि आती थी।[१] वेश्यावृत्ति भी राज्यके निरीक्षणमें होती थी और यह भी राज्यकी आयका साधन थी।[२] खानें, चरागाह तथा जंगल राज्यकी आयके अतिरिक्त साधन थे, जिनसे अच्छी आमदनी होती थी। राजकोषके विचारसे खानें अत्यधिक महत्त्वपूर्ण आयका साधन थीं।[३] वनोंसे बहुमूल्य इमारती लकड़ियाँ प्राप्त होती थीं। ओषधिके लिए वनस्पति भी यहींसे मिलती थी और हाथी जो युद्धके महत्त्वपूर्ण साधन थे, वनोंसे ही प्राप्त होते थे। आर्थिक दंड तथा न्यायालय शुल्क भी आयके साधन थे। असाधारण दिनोंमें सम्पन्न उद्योगपतियोंसे बहुमूल्य वस्तुओंकी भेंटादिकी पद्धति भी ग्रहण की जाती थी। फोर्बसने लिखा है तीर्थयात्रियोंसे "कुट" नामक कर भी लिया जाता था।[४] इन विभिन्न साधनोंसे राजकोषमें विशाल धनराशि एकत्र हो जाती थी, इसमें सन्देह नहीं।

न्याय विभाग

देशके शासनमें न्याय विभाग अत्यन्त आवश्यक विभाग था। दिनमें राजा मुकदमे सुना करता था। न्यायालयके द्वारपर सशस्त्र रक्षक रहते

सर्वस्वे करोति महाजनस्त दौर्ध्वदेहकानि'।—मोहराज पराजय, अंक ३, पृ० ५२।

[१] " ननुवयं राजकुले द्रव्यं पूरयामः। देव। वयं द्यूतं जागलको मद्य शेखरी राजकुले प्रभूत द्रव्य पूरयामः। वही : चतुर्थ अंक : पृ० १०९-११०।

[२] "वेश्याव्यसन तु वराकमुपेक्षणीयम्"। : वही।

[३] "आकरो प्रभव कोषः" : अर्थशास्त्र।

[४] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३५।

थे जो अधिकारी व्यक्तिको ही प्रवेश करने देते और अवाछितोको द्वारपर ही रोक लेते थे। राजाके पार्श्वमें युवराज रहता और चतुर्दिक महामडलेश्वर तथा सामन्त। मन्त्रीराज या प्रधान भी अपने विभागके अधिकारियों सहित उपस्थित रहा करते थे। ये विचारपूर्वक मितव्ययिताका परामर्श देते रहते थे और प्रस्तुत रहते थे, पूर्वमे किये गये लिखित निर्णयोको लेकर, जिससे पहले दी हुई आज्ञा अथवा आदेशकी अमान्यता न हो।[1] रासमालामें फोर्वस्ने राजाके न्याय सम्बन्धी कार्योका जो उक्त उल्लेख किया है, उससे स्पष्ट है कि राजा न्याय सम्बन्धी अपना कर्त्तव्य मन्त्रियोकी सहायतासे करता था। कुमारपाल प्रतिबोधमे भी राजाके इस महत्त्वपूर्ण कार्यकी चर्चा है। इसमे कहा गया है कि दिवसके चतुर्थ प्रहरमे (लगभग ३ बजे) राजा अपने दरबारमे सिंहासनपर आसीन हो जाता था। इसी समय वह शासन कार्य करता और जनतासे पुनर्वाद सुनकर उनपर अपना निर्णय सुनाता।[2]

कुमारपालके जीवनचरित्र लिखनेवाले विद्वानोका कथन है कि राजधानी अणहिलपुरमें राजा स्वय न्याय करता था। किन्तु इस राजकीय सर्वोच्च न्यायालयके अतिरिक्त साधारण अभियोगो तथा मामलोपर विचार करनेके लिए अन्य साधारण न्यायालय भी अवश्य रहे होगे। यह हम पहले ही देख चुके हैं कि अधिष्ठानक, विचारपति था और उसका कर्त्तव्य न्याय विभागसे सम्बद्ध था। ये न्यायालय सम्भवतः दो प्रकारके

---

[1] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३७।

[2] तो राया बुहवग्गं विसज्जिअं दिवस चरम जामम्मि
अत्याणी मंडव मंडणम्मि सिंहासने ठाइ
सामंत मति मंडलिय सेट्ठिपमुहाण बंसणं देइ
विन्नत्तीओ तेसिं सुणइ कुणइ तहा पडीयारं।
कुमारपालप्रतिबोध, पृ० ४४३।

थे। एक दीवानी और दूसरा सैनिक। अपराधियोका पता लगानेके लिए गुप्तचरोकी नियुक्ति होती थी। मोहराजपराजय नाटकमें तत्कालीन सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितिका सच्चा चित्राकन हुआ है। इसमे दिखाया गया है कि मन्त्री पुडकेतुने जाच पडताल तथा सूचना प्राप्तिके निमित्त गुप्तचरकी नियुक्ति की थी और राजा उससे द्युतकुमारको पकडनेकी आज्ञा देता है।[1]

नियमो तथा शास्त्रोसे न्याय किया जाता था। फोर्वस्ने लिखा है कि मन्त्रीराज अथवा प्रधान अपने कर्मचारियोके साथ, पूर्वकालमें हुए लिखित निर्णयोको लेकर सदा प्रस्तुत रहते थे। इस बातकी ओर भी सदा ध्यान रखा जाता था कि पूर्व निर्णयोकी अवहेलना न होने पावे। इससे स्पष्ट है कि विवादोका निर्णय करनेके लिए लिखित आधिकारिक अधिनियम बने थे। तत्कालीन साहित्यम प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दोसे भी अपराधोके दडका स्वरूप समझा जा सकता है। कारागार, निर्वासन आदि ऐसे पारिभाषिक शब्द है।[2] मोहराजपराजय नाटकम कुमारपाल ससारको श्रृखलाम बद्ध करनेकी आज्ञा देता है। चौर्य कर्म करनेपर कठिन दड दिया जाता था। गभीर अपराधोके लिए निष्कासनका दड नियत था। उक्त नाटकमे धर्मकुजर कुमारपालकी आज्ञा पाकर द्यूत और उसकी पत्नी असत्या काडली, मद्य, जागलक, सून तथा मारिकी खोजम जाता है। ये सभी राजाके धर्म परिवर्तनकी चर्चा करते हुए अपने निष्कासनकी अफवाहका भी उल्लेख करते है। धर्मकुजर इन सभीको पकडकर राजाके सम्मुख उपस्थित करता है। सभी अपने अपने पक्ष समर्थनका तर्क उपस्थित करते है और क्षमा याचना करते है। राजा उनकी एक

[1] मोहराजपराजय : चतुर्थ अक, पृ० ८३।

[2] मोहराजपराजय : अक ४, पृ० ८२ एन तत्वरकारागार निगडितं कुरु।

नही सुनता है और सभीके निष्कासनकी आज्ञा देता है।[1] मृत्युदड भी दिया जाता था। शिलालेख इस तथ्यको प्रमाणित करते हैं कि राजाज्ञा उल्लघन करनेपर मृत्युदड दिया जाता था। विक्रम सवत् १२०९के कुमारपालके किराडू शिलालेखमे कहा गया है कि शिवरात्रिके विशेष दिन जीवहिंसाके अपराधके लिए साधारण लोगोको मृत्युदड दिया जाता था और राजपरिवारके सदस्योको अर्थदड देना पडता था।[2] इन सभी साधनोंसे निस्सन्देह कहा जा सकता है कि चौलुक्य राजाओने न्याय विभागका व्यवस्थित सघटन किया था और उसीके द्वारा प्रजाके निमित्त न्याय कार्य सपादित किया जाता था।

जन निर्माण विभाग

जनसेवाका कार्य सरकार अपने जननिर्माण विभाग द्वारा कार्यान्वित कराती थी। राजा केवल कर ही नहीं वसूलता था अपितु प्रजाका हित चिन्तन भी उसके कर्त्तव्यका एक अग था। राज्यको जल तथा स्थल मार्गसे अच्छे यातायातकी व्यवस्था करनी पडती थी। तालाब और कुओका निर्माण मुख्यत दो विचारोंसे होता था। एक तो यात्रियोकी सुख-सुविधाका ध्यान रखकर और दूसरे सिंचाईके विचारसे। मोढेरा, सिहोर तथा अन्य स्थानोमे जल सचित कर रखे जानेकी व्यवस्था थी। मोढेराके निकट ही लोटेश्वरमें यूनानी क्रास मुद्राकी भाति चार छोटे कुडोंके मध्य एक गोल कुआ बडा ही विचित्र है। जूजूवारा, मुजपुर, स्यलाम

---

[1] वही, पृ० ८३-११०।

[2] जा(चव्यतिक्रम्य जीवाना वध कारयति करोति वासव्याया कोपिपापिष्ठत रोजीव वध कुरुते तदा समचन्द्रमंदंडनीय नाहराशि कस्यैको द्रम्मोस्ति। स्वहस्तोय महाराज श्रीअल्हणदेवस्य : इपि० इडि० खड ११, पृ० ४४।

गोल आकारमें तालाब मिलते हैं। इन तालाबोंमें अनककी गोलाई सात सौ गज थी। इनके चतुर्दिक छोटे-छोटे मन्दिर बने रहते थे और इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि इनकी संख्या लगभग एक हजार थी।[1] प्रायद्वीपके निकट गोमोमें अब तक एक आयताकार तालाब है जिसका ध्वंसावशेष अब वर्गाकारकी तरह है। यह सिद्धराज जयसिंहका बनवाया हुआ कहा जाता है। इसका नाम 'सोनरिया तालाब' है। जयसिंहकी माता मीनलदेवीके संरक्षणकालमें दो प्रसिद्ध तालाब बने थे। इनमें एक धोलकामें 'मुलाव' है तथा दूसरा वीरमगाँवमें 'मानसूर' है। "मानसूर" तालाबकी रचना शखाकारमें हुई है। समरभूमिमें भारतीयोंके रणवाद्य शखके आकारमें ही इसका निर्माण हुआ है। इसमें जल सचयकी भी वैज्ञानिक पद्धति है। इसमें चारों ओरके प्रदेशका जल पहले गहरे अष्ट-कोणाकार तालाबमें एकत्र होता था। यहाँ जलका मिश्रित पदार्थ जम जाता था। फिर पानी एक नाली द्वारा प्रवाहित होकर तालाबमें जाता था।

देशके विभिन्न भागोंमें इस कालके जितने कुएँ मिलते हैं, वे दो प्रकारके हैं। एक तो गोलाईके आकारमें बने हैं और उनमें कई खंड तक आवास योग्य स्थान बने हैं। दूसरे प्रकारके कुएँ "बावली के रूपमें निर्मित हैं। ये बावलियाँ जिनका संस्कृत रूप 'वापिका' है, अत्यन्त भव्य बनी हुई हैं। कुएँ और तालाबोंका निर्माण निमित्त प्यासे जीवोंकी तृषा शान्त करना था। साथ ही पारलौकिक दृष्टि भी इसमें सम्मिलित थी। पशु-पक्षियों और चौरासी लाख जीवोंके लिए इनका निर्माण हुआ था।[2] ये कुएँ और तालाब प्रायः उन्हीं स्थलोंमें मिलते हैं जहाँ जलकी कमी रहती थी। उदाहरणार्थ राणिक देवीने पट्टनवारा स्थानको ऐसा जलकी कमी-

[1] रासमाला अध्याय १३, पृ० २४५।

[2] वही, पृ० २४७।

वाला क्षेत्र बताया है, जहां पशु-पक्षी जलके अभावमें मरते थे। यातायातके केन्द्रों, नगर द्वारो, चौराहोंपर भी कुएं तथा वापिका निर्माण होता था। यह कोई असंगत बात नही कि आवश्यकता पडनेपर जलके इन संग्रह स्थलोंसे सिंचाईका भी कार्य होता होगा।

कुमारपालप्रतिबोधसे विदित होता है कि कुमारपालने असहायों तथा जैन-आराधकोंके लिए भोजन वस्त्र प्रदान करनेके लिए सत्रागारकी स्थापना की थी। इसीके निकट उसने धार्मिक व्यक्तियोकी साधनाके लिए एक पोषधशालाका भी निर्माण कराया था। इन दातव्य संस्थाओंकी व्यवस्था नेमिनागके पुत्र सेठ अभयकुमार द्वारा होती थी।[1] इन संस्थाओंके व्यवस्थापनके निमित्त ऐसे योग्य व्यक्तिके निर्वाचन तथा नियुक्तिके कारण कवि सिद्धपालने कुमारपालकी प्रशंसा की थी।[2] इन प्रसंगों और उल्लेखोंसे स्पष्ट है कि कुमारपालके शासनकालमें निर्धन, असहायोंके लिए जनहित सम्पादन करनेवाला विभाग अवश्य ही विद्यमान रहा होगा। राज्य.

---

[1] अह करावइ राया कण कोट्टागार धय धरोपेयं
सत्तागारं गरुयाइ भूसियं भोयण सहाए।
तस्सासने रम्रा कारविया वियइ तुंग वरसाला
जिण धम्म हत्थि साला पोसह् साला अइ विसाला
तत्थ सिरिमाल कुल नह निसि नाहो नेमिणाग
अंगरुहो अभयकुमारो सेट्ठीओ-अहिट्ठायगो रम्रा.।

कुमारपालप्रतिबोध : अध्याय १३, पृ० २४७।

[2] क्षिप्त्वा तोय निधिस्तले मणिगणं रत्नोत्करं रोहणो,
रेवाऽऽवृत्य सुवर्णमात्मनि दृढं बद्धवा सुवर्णाचलः
क्षामध्ये च धनं निधाय धनदो बिभ्यत्परेभ्यः स्थितः
किं स्यात्तैः कृपणैः समोऽयमखिलार्थिभ्यः स्वमर्थं ददत्।

वही।

द्वारा निर्मित तालाब और कुए मानवतावी दृष्टिके साथ ही सिचाईके निमित्त भी बनवाय जात थ। सत्रागाराकी स्थापनासे प्रकट होता है कि राज्यम लोककल्याणकारी समाजवादी प्रवृत्ति भी विद्यमान थी। बाढ अग्नि महामारी आदिके प्रकोपोका सामना करनेक लिए राजकीय *व्यवस्था निश्चित रूपसे रही होगी इसमें सदेह नहीं।*

सेना विभाग

सेना विभाग द्वारा ही राजा आन्तरिक उपद्रवो तथा बाह्य आक्रमणोसे देशकी रक्षा करता था। सैनिक विभागकी समुचित व्यवस्थाका महत्त्व उस समय बहुत अधिक हो गया था जब मुसलिम आक्रमणका सकट उत्पन्न हो गया था। सेना प्राचीनकालकी भाति चतुरगिणी थी। इस बातके स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं कि कुमारपालके शासनकालमें सैनिक सघटन पूर्णरूपेण व्यवस्थित था। उस समय पदल, घुडसवार हाथियो तथा रथ सेनाके विद्यमान होनेके प्रमाण मिलते है।[1] राजप्रासादके निकट चतुर्दिक विशाल भवनोमें शस्त्रागार था, वही हस्तिसेना रहती थी। इन्ही भवनोम अश्वो तथा रथोके रहने तथा रखनेका भी प्रबन्ध था।[2] सेनाम हाथीका विशेष महत्त्व था। कुमारपालने जिन सैनिक अभियानों

---

[1] श्रीमान कुमारपालोऽपि ज्ञात्वेति प्रणिधिव्रजं। अदीकिर्नो निर्जा दाममानाद्यं सम पूजयत्। गजाना प्रतिमानानि शृखलान् मुकुरास्तथा। अश्वाना कविका वल्गा दाम पल्ययनानि च रथाना किंकणीजाल चक्राग युगशम्यिका। योधाना हस्तिका वीरबल यानि च चन्द्रकान्। सुवर्ण रत्न माणिक्य सूचीमुखमयान्यपि। चतुरगऽपि सत्यसौ भूषणानि ददौ मुदा।

प्रभावकचरित, अध्याय २२ पृ० २०१।

[2] रासमाला अध्याय १३, पृ० २३९।

का नेतृत्व स्वयं किया था तथा जिनका नेतृत्व उसके आदेशपर उसके सेनापतियोने किया था, दोनोमे हाथीका वर्णन विशेष विवरण सहित प्राप्त होता है। इसका कारण यही प्रतीत होता है कि युद्धमें सफलता या विफलता अत्यधिक अशोमें इन्ही हाथियोपर निर्भर करती थी।[1] गुजरातके सभी किलोमे राजाकी सेना रहती थी। सीमान्त प्रदेशके कुछ किलोमें सामरिक महत्त्वके कारण सेना रखी जाती थी। इस प्रकारके सैनिक किले दुवोई तथा भृगुकच्छमे स्थित थे। सेनामे मुख्यतः क्षत्रिय ही रहते थे। किन्तु चौलुक्योके शासनकालमें एक विशेष एव विचित्र स्थिति दृष्टिगत होती है। वह यह कि इस समय सेनामे वणिक भी उच्च सैनिक पदोपर नियुक्त थे। उदयन तथा उसके पुत्र सेनापतिके पदपर थे। सैनिक विभागमें क्रमिक पद व्यवस्था थी। सामन्त सैनिक अधिकारी होते थे। कहा जाता है कि सिद्धराजने अपने परिवारके एक सदस्यको सौ घोड़ेकी सामन्तशाही प्रदान की थी। जब कुमारपाल अर्णोके विरुद्ध युद्धमें गया था तो उसकी सेनामे बीस और तीसकी सामन्तशाहीके सैनिक भी उपस्थित थे। इन्हे महाभूत कहा जाता था। एक सहस्रकी सामन्ती रखनेवालेको "भूतराज" कहते थे। इससे भी उच्च अधिकारी "छत्रपति" तथा नौबत रखनेवाले कहे जाते थे। इन्हे छत्र और वाद्य व्यवहार करनेकी आज्ञा थी। यह हम देख चुके है कि बहुतसे उच्च सैनिक पदाधिकारी वणिक थे। उदाहरणार्थ कुजराज तथा सुज्जनके मित्र जाम्ब थे, इनके उत्तराधिकारी मुजाल जयसिंह सिद्धराजके सेवक थे। कुमारपालके शासनकालमें उदयन तथा उसके पुत्र उच्च सैनिक पदोपर नियुक्त थे। ऐसे सेनापति जो नियमित सेनाके अन्तर्गत न होकर भी समय-समय सैनिक सेवा करते थे, मुख्यत बाहरी प्रदेशोके प्रधान होते थे। यथा "कुलीयन"के

---

[1] प्रभावकचरित : अध्याय २२, पृ० २०१ तथा प्रबन्धचिन्तामणि : प्रकाश ४, पृ० ७९।

राजा तथा राठौर समाजी। राजपूत तथा पैदल सैनिकोंकी ऐसी चर्चा आयी है, जिससे प्रकट होता है कि राजपूत निश्चित रूपसे पैदल सेनाके प्रतीक थे।[1] प्रबन्धचिन्तामणिके रचयिता मेरुतुंगका कथन है कि कुमारपालने अपनी सेनाके विभिन्न विभागों तथा अधीनस्थोंको बुलवाया तथा उन्हें मल्लिकार्जुनके विरुद्ध आक्रमणके लिए भेजा।[2] यह तथ्य बताता है कि कुमारपालके शासनकालमें सेनाके सभी विभाग पूर्णतः सुसंघटित थे।

कुमारपालचरित्र,[3] प्रबन्धचिन्तामणि[4] तथा प्रभावकचरित[5]के विवरणसे युद्धभूमिकी गतिविधिका सुस्पष्ट चित्र हमारे सम्मुख आ उपस्थित होता है। किसप्रकार किलेपर आक्रमण किया जाता था, सैनिक संघटन की पद्धति क्या थी, राजधानीपर आक्रमणका ढंग, शत्रुका प्रतिरोध, भीषण युद्ध, खाद्य तथा ईंधनकी कमी आदि सभी बातोंका उल्लेख आया है। सेना दण्डाधिपति तथा दण्डनायकके अधीन रहती थी। कभी-कभी राजा, सेनाके सर्वोच्च सेनापतिकी हैसियतसे स्वयं समरभूमिमें सैनिकोंका नेतृत्व करता था।[6] चौलुक्योंके समय प्रायः युद्ध हुआ करते थे, इससे यह समझना अनुचित न होगा कि उनके पास विशाल सेना थी। शत्रु पक्षकी शक्ति तथा उनकी गतिविधिका पता लगानेके लिए गुप्तचर नियुक्त किये

---

[1] रासमाला अध्याय १३, पृ० २३३-२३४।

[2] "तद विज्ञप्ति समनन्तरमेव त नृप प्रति प्रमाणाय दलनायको कृत्य पचाग प्रसाद दत्वा समस्त सामन्तै सम विससर्ज"। प्रबन्धचिन्तामणि चतुर्थ प्रकाश, पृ० ८०।

[3] द्वयाश्रय काव्य सर्ग ४, श्लोक ४२-९४।

[4] प्रबन्धचिन्तामणि प्रकाश ४, पृ० ७९-८०।

[5] प्रभावकचरित अध्याय २२, पृ० २०१।

[6] प्रबन्धचिन्तामणि, चतुर्थ प्रकाश, पृ० ७९।

जाते थे। मोहराजपराजयमें कुमारपालके मन्त्रीने धर्मकुजरको इस निमित्त नियुक्त किया।[1]

चौलुक्य राजाओंका महान उद्देश्य आदर्श राजा विक्रमादित्यका अनुगमनकर आन्तरिक उपद्रवो एवं बाह्य आक्रमणोंसे अपनी प्रजाका रक्षण तथा चतुर्दिकके राज्योको अधीनस्थ कर अपनी राज्य-सीमाका विस्तार करना था। ये सैनिक अभियान विजय यात्राके नामसे सम्बोधित किये जाते थे। कभी-कभी तात्कालिक कारणोंसे भी युद्ध घोषित होते थे। यथा जब गृहरिपुके विरुद्ध धार्मिक युद्ध प्रचारित किया गया अथवा जब यशोवर्मनके कार्योंसे सिद्धराज क्रोधित हुए थे। इतना होते हुए भी सघर्षका उद्देश्य वही रहता था। यदि शत्रु अपने मुखमें तृण रखकर 'कर' देनेके लिए प्रस्तुत हो जाता तो विजेता इतने ही से सन्तुष्ट हो जाता था। वे विजित प्रदेशपर स्थायी अधिकारका कभी प्रयत्न न करते। विजयका अर्थ होता था वार्षिक आयमेंसे एक अंशकी प्राप्ति। यह कर जिस प्रकार-से किसानोंसे एकत्र किया जाता था, उसी प्रकार विदेशी राजाओंके प्रदेशो-पर आक्रमणकर प्राप्त किया जाता था। वुणराजके वंशजोंने कच्छ, सोरठ, उत्तरी कोंकण, मालवा, झालोर तथा अन्य प्रदेशोंपर अनेकानेक आक्रमण किये किन्तु उन राज्योंके मूल शासकोंका मूलोच्छेद कर उन्हे अपने स्थायी अधिकारमें नही किया। मूलराजने गृहरिपुको पराजित किया और लक्षको तलवारके घाट उतार भी दिया किन्तु झारेगा तथा यदुवंशका मूलोच्छेद नही किया। इसी प्रकार यशोवर्माको जयसिंह सिद्धराजने युद्धमें पराजित किया था, फिर भी अनेक वर्षोंके पश्चात् मालवाके अर्जुनदेवने पुनः गुजरातपर हमला किया।

---

[1] एषपुण्यकेतुमन्त्रिणा विपक्षं पुरुषगवेषणार्थं नियुक्तो नित्यमप्रमत्तः परिभ्रमति धर्मकुंजरोनाम दांडपाशिकः—मोहराजपराजय, अंक ४, पृ० ७८।

सपादलक्षमें (शाकम्भरी-सामर प्रदेश) अनहिल्वाडके शासकोंकी विजय पताका फहराती थी किन्तु फिर भी अजमेरके नरेश चुणराजके वशजोंके सदा विरोधी और प्रतियोगी बन रहे। इस वृत्तिका अन्त उसी समय हुआ जब चौहान तथा सोलंकी दोनों ही शक्तियां यवन आक्रमणोंसे समान रूपसे पराजित हुई।[1]

परराष्ट्र नीति तथा कूटनीतिक सम्बन्ध

शक्तिशाली चौलुक्य राजाओंका प्रतिनिधित्व निकटस्थ राज्योंमें उनके कूटनीतिक दूत करते थे। ये दूत सांधिविग्रहीक कहे जाते थे। इनका कार्य अपनी सरकारको विदेशमें होनेवाले घटनाचक्रोंसे परिचित रखना था। इस कार्यमें उन्हें स्थान-पुरुषों अथवा उसी देशके लोगों या गुप्तचरोंसे सहायता मिलती थी। वाराणसीके राजाने सिद्धराजके सांधि विग्रहकसे अणहिलपुरके मन्दिरों कुओं तथा तालाबोंके आकार प्रकारके सम्बन्धमें प्रश्नकर उपालम्भ किया था।[2] एक समय सपादलक्ष देशसे कुमारपालके राजदरबारमें एक दूत आया। राजाने उससे सांभर नरेशकी कुशलता और सम्पन्नताके सम्बन्धमें पूछा। इसपर उक्त राजदूतने कहा उनका नाम विशवल संसारको धारण करनेवाला है। उनके सदा सम्पन्न होनेमें भला क्या सन्देह है। कुमारपालके पार्श्वमें विद्वान कवि कपर्दी मन्त्री उपस्थित था। उसने कहा 'शल' तथा 'श्यूल' धातुका अर्थ होता है शीघ्र जाना। इसप्रकार विशवल वह है जो चिड़ियाकी भांति शीघ्र उड़ जाय। इसके बाद जब राजदूत स्वदेश लौटा तो उसने बताया कि राजाकी उपाधिके प्रति कैसा असम्मान प्रकट किया गया। इसपर वहांके राजाने विग्रहराजकी उपाधि ग्रहण की। दूसरे नृप वहीं

---

[1] रासमाला अध्याय १३, पृ० २३४ २३५।

[2] रासमाला अध्याय १३, पृ० २४७।

दूत विग्रहराजकी ओरसे कुमारपालके दरबारमे उपस्थित हुआ, इस वर्ष पुन कपर्दीने अर्थ विश्लेपण कर समझाया कि उक्त नामका अर्थ हुआ शब्द न करनेवाले शिव और ब्रह्मा। वी अर्थात् विपा, ग्र अर्थात् शब्द, हर अर्थात् शिव और अज अर्थात् ब्रह्मा। बादम कपर्दी द्वारा अपने नामका हास्य न होने देनेके लिए राजाने "कवि बान्धव" नाम रखा।[1] ये कथाए स्पष्ट बताती हैं कि पडोसी राज्योके साथ कुमारपालका कूटनीतिक दौत्य सम्बन्ध भी था। किन्तु इसका आधार साधारणत प्रभुशक्ति तथा अधीनस्थ राज्योके मध्य था। अपने समकालीन राजाओसे कुमारपालका कैसा सम्बन्ध था, इसका विवरण हेमचन्द्रने द्वयाश्रय काव्यमे दिया है।[2]

इस समय मडल सिद्धान्तकी राज्यनीति व्यवहारमें नहीं दृष्टगत होती। प्रत्येक राज्य एक दूसरेसे युद्ध करनेमे व्यस्त था। छोटे-छोटे राज्य उस गृहका दृश्य उपस्थित करते थे, जिन्होने स्वय अपने विरुद्ध विनाशक नीतिको ग्रहण कर लिया था। परराष्ट्रनीतिमे न कोई एकता भावना थी और न कोई साम्य ही। ये ऐसे अदूरदर्शी थे कि विदेशी आक्रमण तथा अन्तम विनाशके सकट तकको समझ ही न पाते थे। यदाकदा सैनिक सन्धि द्वारा एकताका प्रयत्न होता, किन्तु व्यक्तिगत स्वार्थ भावनाके कारण वह भी विफल हो जाता। सीमान्त सम्बन्धी नीतिके महत्त्वको वे ठीक-ठीक नही समझ सके और इसीके फलस्वरूप विदेशी आक्रामक बिना किसी प्रतिरोधके देशके भीतरी भाग तक पहुच जाता था। चौलुक्योकी शक्ति इतनी प्रबल थी, किन्तु फिर भी वे उपयुक्त परराष्ट्रनीति कार्यान्वित न कर सके। सीमान्तपर किलेम राज्य सेना रहती थी। पर वह विदेशी आक्रमणोके रोकनेमें समर्थ नही हो सकती थी। सम्भवतः उसकी उपयोगिता पडोसी राज्योपर प्रभुत्वमात्रके लिए समझी जाती

---

[1] वही, अध्याय ११, पृ० १९०।

[2] द्वयाश्रय काव्य : सर्ग ४, श्लोक ७१, ९४।

थी। शत्रु जब द्वारपर आ जाता था, तब हिन्दू राजा रक्षात्मक तैयारियां प्रारम्भ करते थे। इसीलिए आक्रमणात्मक होनेकी अपेक्षा वे प्राय आक्रमणसे अपनी रक्षामात्र करते थे। हिन्दू राजाओंकी विदेशी नीति इतनी संकीर्ण हो गयी थी कि यद्यपि सपादलक्षमे अनहिल्वाडके राजाकी विजय पताका फहराती थी फिर भी अजमेरके राज वुणराजके वंशजोंसे उस समय तक खतरनाक प्रतियोगिता करते रहे जब तक चौहान और सोलकी दोनों ही यवन आक्रमणसे पराजित तथा पददलित न हो गये। कुमारपालके समयमें चौलुक्योंकी राज्यसीमाका विस्तार अपनी पराकाष्ठाको अवश्य पहुंच गया था, किन्तु उसकी साम्राज्यविषयक नीति, आक्रमणात्मक न होकर रक्षणात्मक थी। शाकम्भरी, मालवा, और सुदूरदक्षिणमें कोकण नरेशोंसे उसे वाध्य होकर ही युद्ध करने पडे। किन्तु इनका उद्देश्य साम्राज्यविस्तार न होकर सिद्धराज जयसिंह द्वारा छोड़े गये चौलुक्य साम्राज्यकी रक्षा था।
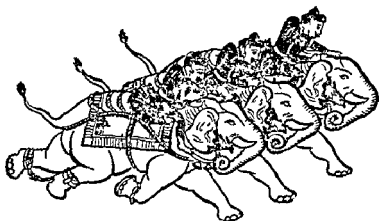
आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था

देशकी तत्कालीन सामाजिक तथा आर्थिक अवस्थाका वास्तविक चित्रण समसामयिक नाटक "मोहराजपराजय"में सम्यक्रूपेण मिलता है। इसके अतिरिक्त हेमचन्द्र, मेरुतुंग तथा सोमप्रभाचार्यकी रचनाओंमें भी इस कालके सामाजिक और आर्थिक जीवनकी प्रामाणिक तथा वास्तविक झाँकी देखनेको मिलती है।

समाज चार वर्णोंमें विभक्त था—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। जातीयताकी भावना संकुचित होती जा रही थी और वह परम्परागत हो रही थी। समाजमें ब्राह्मणोंका सबसे उच्च स्थान था और राजा और प्रजा सभी समान रूपसे उनका आदर करते थे। चौलुक्योंके शासन-कालमें ब्राह्मणोंने देशके राजनीतिक तथा धार्मिक जीवनको विशेष रूपसे प्रभावान्वित किया था। मन्दिरोंके लिए बहुतसे दानपत्र लिख गये थे, जिनके पुजारी ब्राह्मण ही होते थे।[1] इनमेंसे चार ब्राह्मण परिवार कन्नौज तथा उज्जयिनीके बड़े मठसे आये थे और इन्होंने भी गुजरातमें उसी प्रकारके मठोंकी स्थापना की। इसकालके बहुत पहले जो उज्जयिनी शैव मतकी केन्द्र थी अब महाकाल, पाशुपत, आमर्दक, कापाला मतके शैवोंकी आदिभूमि बन गयी। ये शैव—गुजरात, काठियावाड़ तथा आबू स्थित शिवमन्दिरोंके मुख्य पुजारी हो गये।[2]

---

[1] आर्क० सर्वे० इंडिया, वे० स०, १९०७-८, पृ० ५४-५५।

[2] आर्कलाजी आव गुजरात : अध्याय १०, पृ० २०६।

समाजमें दूसरा स्थान क्षत्रियोंका था जो शासक वर्गके थे और जिनका आदर ब्राह्मणोंके बाद ही दूसरे क्रममें किया जाता था। ये शस्त्र चलाना जानते थे और इनका मुख्य धन्धा युद्ध करना था। राजाके साथ रणभूमिमें राजपूत जातिके योद्धा भी उपस्थित रहते थे। फोर्बस्‌ने इनका जो वर्णन किया है इससे इनके स्वरूपका सम्यक् बोध हो जाता है। उसने लिखा है कि भाला और तलवार उसकी विशाल भुजाओंमें सुशोभित होता था। समरभूमिमें उसके नेत्र क्रोधसे आरक्त हो जाते थे। उसके कानके लिए रणनिनादका स्वर उतना ही परिचित था जितना राजमहलके सुमधुर वाद्योंकी ध्वनि था। वह शस्त्रधारी व्यक्ति होता था और अभिषक्त प्रधान भी।[1] राज्यके शासन तथा सैनिक दोनों विभागोंमें ये महत्त्वपूर्ण उच्च पदोंपर नियुक्त होते थे। प्राय: सभी राजपूत घरोंके प्रधान बड़ी-बड़ी भूमिके स्वामी थे। इनमेंसे कुछ सामन्त अथवा सैनिक अधिकारी थे, तो कुछ सेनामें सैनिकके रूपमें भी थे। राजपूत तथा पैदल सैनिकोंकी इसप्रकार चर्चा की गयी है जैसे वे निश्चित रूपसे पदाति सेनाके अन्तर्गत हों।[2] इसप्रकार राजपूत भूमिके स्वामी तथा राज्यमें कुलीनतन्त्रके प्रतिनिधि थे। इनका मुख्य कार्य, सेना तथा प्रशासनमें योगदान देना था।

इस समय गुजरातमें वैश्य भी समाजके बहुत महत्त्वपूर्ण अंग माने जाते थे। उद्योग और व्यवसाय ही उनका मुख्य धन्धा था। राजधानी अनहिलवाड़के वणिक बहुत ही सम्पन्न थे। नगरमें अनेकानेक लक्षाधिपति थे और कोटिश्वरोंके भव्य भवनोंपर ऊंची पताकाएं तथा घंटे टंगे रहते थे। उनका वैभव पूर्णत: राजकीय वैभवके समान लगता था। उनके पास हाथी, घोड़े थे और उन्होंने सत्रागारोंकी भी व्यवस्था की थी।

[1] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३०-२३१।

[2] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३४।

व्यापारी पोतोसे विदेशी समुद्रमे जाकर व्यापार द्वारा विशाल धनराशि अर्जित करते थे।[1]

चौथा और अन्तिम वर्ण शूद्रोका था। ये मुख्यत खेतीमें लगे थे। धरती माताके इन पुत्रोकी आवाज सरकारमे नही थी। सामाजिक ढाचेमें वे सबसे निम्नतम जातिके माने जाते थे। इसी वर्णके अन्तर्गत उस जातिके लोग भी थे जिनका काम श्रम करना था और जिनका आर्थिक स्तर अत्यन्त निम्न था। एव सुदृढ सामाजिक ढाचेका स्वरूप विलुप्त हो गया था। धन्धेमें परिवर्तन सम्भव था किन्तु इसके लिए जाति परिवर्तनकी आवश्यकता न थी। मुसलिम आक्रमणोंके फलस्वरूप विदेशी तत्त्वोका आत्मीयकरण त्याग दिया गया था और जातीय भावना अत्यन्त दृढ हो गयी थी।

चारो वर्ण अथवा जातियोका पारस्परिक सम्बन्ध था। ब्राह्मण शिक्षक और प्रचारक थे। क्षत्रिय शासन कार्य और देशकी रक्षा करते थे। वैश्य अपने उद्योग एव व्यवसाय द्वारा देशको सम्पन्न बनाते थे और शूद्र कृषि तथा अन्य शारीरिक श्रमका कार्य करते थे। इसप्रकार समाज-की भावना अविच्छेद्य और परस्पर सहयोगी सघटनकी भाति थी। किन्तु इस समय समाजका उक्त आदर्शवादी स्वरूप, व्यवहारमें दृष्टिगत न होता था। अनहिलवाडेमें ब्राह्मणो, राजपूतो तथा वैश्योमे राजनीतिक प्रभुत्वके लिए प्रतियोगिता होती थी। समाजके इस स्वरूपको समझनेके लिए उनके विस्तृत इतिहाससे परिचित होना आवश्यक है।

ब्राह्मणोकी बस्तिया

आधुनिक गुजरातमे ब्राह्मणोकी विभिन्न जातियोंकी प्रधानताका परिचय शिलालेखो द्वारा मिलता है। कनौजिया, वडनागरा, सिहोरिया ब्राह्मण प्राचीनकालमे कान्यकुब्ज, आनन्दपुरा तथा सिहोरसे आये

[1] मोहराजपराजय, पृ० १०।

थे।[1] एक राष्ट्रकूट अभिलेखसे इस प्रकारके आगमनका निश्चित रूपसे पता लगता है।[2] इसमें मोटावाको ब्राह्मण स्थान कहा गया है। इनथोवनका कथन है कि मोटावा ब्राह्मण इस स्थानमें पाये जाते थे। उसका यह भी अनुमान था कि चौदहवीं शताब्दीमें ये गुजरातमें आये।[3] किन्तु राष्ट्रकूटोंके अनेक विवरणोंसे विदित होता है कि "मोटावा" ब्राह्मण नौवीं शतीमें भी गुजरातमें थे। बहुत सम्भव है कि राष्ट्रकूटोंके अधिकारके दिनोंमें ये दक्षिणसे आये हों। इनथोवनका कथन है कि ये सम्भवतः देशस्थ थे।[4]

एक परमार अभिलेखसे नागर ब्राह्मणोंकी प्राचीनता दो शताब्दी पूर्व तक जाती है।[5] इसमें आनन्दपुरके ब्राह्मणोंको नागर कहा गया है। वडनगर प्रशस्तिमें बादमें उक्त स्थानको द्विजमहासना तथा विप्रपुर कहा गया है।[6] मोढ ब्राह्मण विभिन्न शासन विभागोंमें सर्वप्रथम काम करते हुए दिखायी पड़ते हैं, विशेषकर ये महाक्षपटलिकके पदपर थे।[7]

---

[1] सिहोर (सिंहपुर) ब्राह्मणोंको वल्लभी कालमें संरक्षण प्राप्त हुआ था, किन्तु सिद्धराज जयसिंहने इन्हें बहुत बड़ी संख्यामें बसाया था। देखिये हेमचन्द्र कृत द्वयाश्रय, सर्ग १५, पृ० २४७।

[2] भड़ौंचके ध्रुव द्वितीयका दानलेख, इंडि० एँटी० खंड १२, पृ० १७९।

[3] कास्टस् एंड ट्राइबस आव गुजरात : खंड १, पृ० २३४।

[4] वहीं।

[5] आनन्दपुरके एक नागर ब्राह्मणको मोहडवासक विषयके दो ग्राम कुम्भरोतक तथा शिहाका, सियाकट द्वारा दिये गये थे। —इपि० इंडि० खंड १९, पृ० २३६।

[6] इपि० इंडि० : खंड १, पृ० २९३-३०५ तथा इंडि० एँटी० खंड १०, पृ० १६०।

[7] इनथोवन : ओ० सी० १, पृष्ठ २३८।

मूलराजने ब्राह्मणाको श्रीस्थलपुर, गाय, स्वर्ण, रत्नादिके हारोंसे युक्त रथा सहित प्रदान किया था। उसने सिंहपुरकी सुन्दर तथा सम्पन्न नगरी अन्यान्य भेटो सहित दस ब्राह्मणोको दी थी। सिद्धपुर और सिहोरके निकट उसने बहुतसे ब्राह्मणोको छोट-छोटे गाव दिये थे। उसने स्तम्भ-तीर्थ छ खमातियोको साठ घोडो सहित दिया।[1] औदीच्य ब्राह्मणोंको, जो उदीच्य (उत्तर)से आये थे, कहा जाता है कि मूलराजने इन्हे उत्तरसे आमन्त्रितकर काठियावाड तथा गुजरातमे अनक ग्राम दिये। इस सम्बन्धमें शिलालेख, दानलेख तथा जो अभिलेख प्राप्त हुए है, उनसे इनकी विशेष पुष्टि नही होती।[2] एक शिलालेखमें "उदीच्य ब्राह्मण"का उल्लेख आया है।[3] बहुत सम्भव है कि कन्नौज तथा मारवासे आये ब्राह्मण ही औदीच्य कहे जाते रहे हो। शिलालेखादिसे यह नही विदित होता कि चौलुक्योके समय गुजरातम उत्तरके ब्राह्मण आकर बसे हो।[4]

इन विवरणो तथा प्रमाणोंसे इतना तो अवश्य ही स्पष्ट हो जाता है कि चौलुक्य राजाओके शासनकालम बडी सख्याम ब्राह्मणाको राज-सरक्षण प्राप्त हुआ था। इनकी गतिविधि धार्मिक कृत्यो तक ही सीमित न थी अपितु ये शासनविभागम भी उत्तरदायी पदोपर कार्यकर राजाको प्रभावित करते थे।

ब्राह्मणवादका पुनरोदय

यह प्रश्न करना स्वाभाविक ही है कि ब्राह्मणोको इसप्रकारका राज्य-

---

[1] रासमाला : अध्याय ४, पृ० ६४-६५।

[2] आर्कलाजी आव गुजरात, अध्याय १०, पृ० २०८।

[3] जर्नल आव बम्बई बडोदा रायल एशियाटिक सोसायटी १९००, अतिरिक्त अक. ४९।

[4] आर्कलाजी आव गुजरात : अध्याय १०, पृ० २०८।

सरक्षण क्यों प्रदान किया गया था? सभी राजवशोके शिलालेखोमे इस बातका उल्लेख किया गया है कि ब्राह्मणोंको दान देनेसे पुण्यकी प्राप्ति होती है। उन्हे दानादि देनेका दूसरा कारण था उनको "पचमहायज्ञ" सम्पन्न करनेमें सहायता देना। पचमहायज्ञ दैनिक यज्ञ थे। इसके अन्तर्गत पितृयज्ञ, अग्निहोत्र, आथितेययज्ञ और विश्वेदेवा यज्ञ किये जाते थे। त्रैकूटक अभिलेखोमे ब्राह्मणोंके कार्योंके विषयमें कुछ नही कहा गया है। काटकूरी, गुर्जर तथा अन्य कतिपय चौलुक्य अभिलेखोमें इस बातका उल्लेख मिलता है कि ब्राह्मणोंको ये दान पचमहायज्ञोंके लिए प्रदान किये गये थे। तीनके अतिरिक्त सभी राष्ट्रकूट दानलेखोंमे भी उक्त उद्देश्य ही बताये गये हैं। इन तीनोमें दो तो ब्रह्मदेवोको बिना किसी उद्देश्य विशेषके दान दिया गया है। तृतीयमे, जो गोविन्द चतुर्थका है, साधारण यज्ञोंके अतिरिक्त दार्श, पौर्णमास, राजसूय, वाजपेय, अग्निस्तोम यज्ञोंके सम्पन्न करनेका भी उल्लेख मिलता है।[1] गुजरातके अभिलेखोमें यह प्रथम अवसर है, जब इन वैदिक यज्ञोका उल्लेख हुआ है।[2]

फोर्वसने भी इन यज्ञोका उल्लेख किया है। उसने लिखा है कि मूलराजने पवित्र ब्राह्मण परिवारोका स्वागत किया। उत्तरी पर्वतो, तीर्थस्थानो, वनो, आदिसे मूलराजने इन्हे आमन्त्रित किया था। ये ऋषि सन्तान वेदोमें पारगत थे। इनमेसे एक सौ पाच गगा-यमुनाके सगम स्थलसे आये थे।[3] च्यवनाश्रमसे सामवेदका पाठ करनेवाले सौ ब्राह्मण, दो सौ कान्यकुब्जसे तथा सूर्यकी भाति प्रकाशमान सौ ब्राह्मण वाराणसीसे गये थे। इनके अतिरिक्त दो सौ ब्राह्मण गगद्वार तथा एक सौ नैमिषारण्यसे आये थे। कुरुक्षेत्रसे भी राजाने एक सौ तैतिस

---

[1] इपि० इडि० : खंड ७, पृ० २६।

[2] आर्कलाजी आव गुजरात, अध्याय १०, पृ० २०९।

[3] प्रयागसे जहा गंगा यमुना मिलती है।

ब्राह्मणोंको आमन्त्रित किया था। ये ब्राह्मण-समूह जब यज्ञ करते थे तो आकाश यज्ञधूमसे आच्छादित हो जाता था।[1]

ये यज्ञादि प्राचीन तथा मध्यकालीन गुजरातमें यदि नियमित रूपसे न होते थे तो शान्ति तथा सम्पन्नताके दिनोंमें अवश्य किये जाते थे। विशेषतः राजा जब इनके प्रति स्वयं उत्साही रहता था। ऐसी शान्ति तथा सम्पन्नताकी अनुकूल परिस्थिति गुजरातमें उस समय उत्पन्न हुई, जब सिद्धराजने सहस्रलिंग तालावका निर्माण किया तथा उसके तटपर ब्राह्मण-साहित्य, यज्ञ करने, पुराण पाठ, ज्योतिष और कल्प-सूत्रके अध्ययनार्थ मठ एवं शालाओंकी स्थापना की। इससमय निश्चय ही ब्राह्मणोंका प्रभुत्व, प्रतिष्ठा और सम्पन्नता अत्यधिक थी। यही परम्परा कुमारपालके शासनकालमें भी उससमय तक विद्यमान थी, जब तक वह जैनधर्ममें दीक्षित न हो गया।[2] जैन धर्ममें दीक्षित हो जानेपर भी राजा ब्राह्मणोंका आदर करता रहा। भावबृहस्पतिकी वेरावल प्रशस्तिमें ब्राह्मणों और उनके यज्ञोंके सम्बन्धमें कुमारपालके भावोंका उल्लेख सम्यक्‌रूपेण हुआ है।[3]

राजनीतिके क्षेत्रमें ब्राह्मण

ब्राह्मण राजाके मन्त्री भी हुआ करते थे। मन्त्रियोंके रूपमें देशके शासनमें उनके भाग लेनेका उल्लेख वडनगर प्रशस्तिमें हुआ है। इसमें कहा गया है कि "वे राजा तथा राष्ट्रकी रक्षा अपने परामर्श द्वारा करते

---

[1] रासमाला : अध्याय ४, पृ० ६४।

[2] वडनगर प्रशस्तिके १९से २९ तक श्लोकोंमें आनन्दपुरके नागर ब्राह्मणोंकी प्रशंसा की गयी है। कुमारपालने इसके चतुर्दिक् एक दीवार बनवा दी थी। इपि० इडि० खड १, पृ० २९३-३०५।

[3] वी० पी० एस० आई०, पृ० १८६, सूची संख्या १३८०।

थे"।[1] दूतक, महाक्षपटलिक आदिके महत्त्वपूर्ण पदोंपर भी ब्राह्मण कार्य करते थे।[2] फोर्बसूने लिखा है कि चौलुक्योंकी राजसभाम नगी पीढ़ीके ब्राह्मण थे।[3] विक्रम संवत् १२१३के कुमारपालके नाडोल पत्र-लेखमें उसके मन्त्रीका नाम वहडदेव लिखा है। यह सम्भवत उसके प्रारम्भिक राज्यकालम उदयनका पुत्र था जो प्रधान सेनापति अर्थात् दडाधिपति होनेके साथ ही प्रधान मन्त्री या महामात्य भी था।[4] किन्तु बाली शिलालेखमें महामात्यका नाम महादेव लिखा है, इससे विदित होता है कि उसने पुन खोया प्रभुत्व प्राप्त कर लिया था। नागर ब्राह्मणो तथा वैश्य वणिकोंमें प्रभुत्व प्राप्तिकी जो पुरानी प्रतियोगिता चली आती रही है, उसे मन्त्रिमडलके इन परिवर्तनोंसे भली प्रकार समझा जा सकता है।[5] देशके सामाजिक तथा राजनीतिक जीवनको ब्राह्मण अत्यधिक प्रभावान्वित करते थे, इसमें सन्देह नही।

वैश्योका उदय

ब्राह्मणवादकी परम्परा और गुजरातमें इसके विभिन्न सम्प्रदायोंके प्रचार-प्रसारका श्रेय यदि ब्राह्मणोको है तो यहाके वैश्योंकी देन भी कुछ कम नही। गुजरातके वैश्यो, वणिको या वणिजोने ही मुख्यत जैनधर्म और सस्कृतिका प्रचार किया। इन्होंने भव्य कलापूर्ण मन्दिरोका निर्माणकर गुजरातको उन्नत कलाओंसे अलकृत किया तथा राजनीतिके क्षेत्रम पदार्पण कर शासनसूत्र हस्तगत करनेमें भी सफलता प्राप्त की। इनमें प्राग्वत

---

[1] इपि० इडि० : खड १, पृ० २९३।

[2] इनथोवेन : ओ० सी०, पृ० २२८-२२९।

[3] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३१।

[4] इडि० ऐंटी० : खड ४१, पृ० २०२-३।

[5] आर्कलाजिकल सर्वे आव इडिया, वेस्टर्न सरकिल।

जो पोरवाड तथा मोढके नामसे प्रसिद्ध है, विशेष उल्लेख्य है। देलवारा मन्दिरोंके निर्माणार्थ वस्तुपाल तथा तेजपालने अपने और अपने सम्बन्धियों विषयक शोकानेक अभिलेख अंकित कराये थे। श्वेताम्बर जैनधर्मके स्तम्भ होनेके अतिरिक्त उनके पूर्वज राज्यके योग्य मन्त्री भी हो चुके थे।[1] इसी प्रकारकी मोढ़ोंकी भी परम्परा थी। एक शिलालेखमें कहा गया है कि ये बहुत उच्च और राजाकी प्रशंसाके योग्य माने जाते थे।[2] इनमें तथा पोरवाडो दोनोंमें जैन[3] तथा अन्य धर्मावलम्बी[4] होते थे। इस समय वैश्योंकी उपजाति कायस्थोंका भी उल्लेख आया है, जो अभिलेख आदि विशेषकर भूमि सम्बन्धी दानपत्र लिखा करते थे। उनके इस कार्यसे सम्बन्धके कारण ही "कायस्थ नागरी"का अस्तित्व हुआ और जिसकी प्रसिद्धि डाक्टर ह्वारने की।[5] यह भी ध्यानमें रखनेकी बात है कि राज्यके उच्चतम अधिकारियोंमें प्रमुख वणिक ही थे। यथा मुणराज तथा मुञ्जनके जाम्ब, जयसिंह सिद्धराजके समय मुंजाल और कुमारपालके समय उयदन, उसके पुत्र तथा अन्य लोग।[6]

इस राजनीतिक प्रभावके अतिरिक्त वणिक वर्ग ही उद्योगपतियों और

---

[1] आर्केलाजी आव गुजरात : अध्याय १०, पृ० २१०।

[2] वही। इसमें मध्यके सूर्य मन्दिरका उल्लेख है जिसे एक जैनने बनवाया था। ऐसा प्रतीत होता है कि मोढ़ और प्रागवत परस्पर सम्बन्धी थे। आबू शिलालेखमें लिखा है कि वस्तुपाल प्रागवतने....जो मोढ़ था उसके लिए बनवाया।

[3] बी० बी० एस० आई० पृ० २२७, सूची संख्या ६३९।

[4] इपि० इण्डि० : खंड ८, पृ० २२९। श्रीमाली तथा ओसवाल आबू और शिलालेखमें अंकित है।

[5] आर्केलाजी आव गुजरात : अध्याय १०, पृ० २११।

[6] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३३।

व्यवसायियोंका भी वर्ग था। सम्पत्तिके अनुसार वणिकोंकी विभिन्न श्रेणियाँ थीं। इसीके अनुसार वे वनिया, वणिक, महत्तर, वणिज और महाजन कहलाते थे। सबसे अधिक सम्पन्न तथा वैभवशाली उद्योगपति नगरश्रेष्ठि होता था।[1] जैन सम्प्रदायाधिपति इस बातकी प्रतिज्ञा करते थे कि वे धन सम्पत्तिका एक निश्चित भाग ही लेंगे और शेष धार्मिक कार्योंमें व्यय करेंगे। कुबेर छः करोड़ स्वर्ण मुद्रा, आठ सौ तुला चाँदी, आठ तुला बहुमूल्य रत्न, दो सहस्र अन्नके कुम्भ, दो सहस्र तेलकी खारी, पचास सहस्र घोड़े, एक सहस्र हाथी, अस्सी सहस्र गाय, पाँच सौ हल, घर, गाड़ी, डिब्बे आदि रखनेकी प्रतिज्ञा की थी।[2] इन जैन उद्योगपतियोंकी शक्ति यहाँ तक पहुँच गयी थी कि नगरसेठ तथा दंडनायक विमल पाटन छोड़कर चले गये थे और चन्द्रावती नामक नगर बसाया था। बहुतसे सम्पन्न उद्योगपति वहाँ गये और जाकर वहीं बस गये। राजधानीकी राजनीतिसे मुक्त होकर उन्होंने पंचायतोंके माध्यमसे कार्य प्रारम्भ किया। उनपर राजधानीका प्रभाव तथा नियन्त्रण केवल नामका था।[3]

जैन तथा राजपूतोंमें गहरी प्रतियोगिताकी भावना थी और प्रायः यह संघर्षका रूप धारण कर लेती थी। जैन वणिक धनी और शक्तिशाली दोनों थे। बादके चौलुक्य राजाओंके सम्मुख यह समस्या रहती थी, कि किसप्रकार धनी, शक्तिशाली तथा प्रभावशाली जैन श्रावकोंको अनुकूल एवं नियन्त्रित रखा जाय। कर्णदेवके शासनकालमें राजधानीमें जैनोंका प्रभुत्व बढ़ गया था। बहुतसे श्रावक पाटन लौट आये और कर्णदेवकी दुर्बलताका लाभ उठाकर अपनी नीति कार्यान्वित करनेमें सफल हुए। उनकी यह धारणा बन गयी थी कि राजा तो नाममात्रका राजा है, वास्त

---

[1] मोहराजपराजय, अंक ३, पृ० ५९।

[2] वही, पृ० १०-११।

[3] के० एम० मुंशी पाटनका प्रभुत्व पृ० ३ तथा ४३।

विष शक्ति तो उनके हाथमें थी।[1] अभिप्राय यह कि जैन वणिजों तथा नगर श्रेष्ठियोंका राजनीतिमें प्रभाव दिन प्रतिदिन अधिक होता जा रहा था और वे एक नयी शक्तिके रूपमें अग्रसर हो रहे थे।

ब्राह्मणोंके पुनरोदय, वैश्योंकी शक्ति, नेतृत्व और उदारभावना, क्षत्रियोंकी सुदृढ़ रक्षात्मक तथा प्रोत्साहनपूर्ण कार्यपद्धति और सन्तुष्ट चतुर्थ वर्णके कर्त्तव्योंके फलस्वरूप मध्यकालीन गुजरात, वैभव एवं उन्नतिकी ओर अग्रसर हो रहा था।[2]

विवाह संस्था

विवाहकी संस्था इस समय अच्छी तरहसे सघटित और व्यवस्थित थी। ब्राह्म प्रकारके विवाह साधारणतः होते थे। सगोत्र तथा सपिंडमें विवाह नहीं होता था। बहुविवाहके बहुतसे उदाहरण मिलते हैं। आभिजात्य वर्ग अधिकतर एकसे अधिक पत्नियां रखता था। इस बातका उल्लेख मिलता है कि कुमारपालने तीन रानियोंसे विवाह किया था। प्रभावकचरितमें उसकी रानीका नाम भोपालदेवी लिखा है।[1] ऐतिहासिक नाटक मोहराजपराजयमें कुमारपाल और कृपासुन्दरीसे विवाहका वर्णन मिलता है, जो जिनमदनके अनुसार संवत् १२१६में हुआ था।[2] कुमारपालने मेवाड़ घरानेकी सिसौदिया रानीसे विवाह किया था,

---

[1] के० एम० मुन्शी : पाटनका प्रभुत्व, पृ० ३ तथा ४३।

[2] आर्कलाजी आव गुजरात : अध्याय १०, पृ० २११।

[1] "तस्य भोपालदेवीति कलत्रमनुगाऽभवत्"। प्रभावकचरित : अध्याय २२, पृ० १९६।

[2] कृपासुन्दर्याः संवत १२१६ मार्गसुदि द्वितीयादिने पाणिजग्राह श्री कुमारपाल महीपालः श्रीमदर्हद्दैवता समक्षम्। जिनमदन : कुमारपाल-प्रबन्ध।

इसका भी उल्लेख मिलता है।[1] ब्राह्मणोंके धार्मिक कथाप्रसंगमें भी उक्त विवाहकी चर्चा आयी है।[2] यह कथा इस प्रकार है। जब सिसोदिया रानीने यह सुना कि राजाने प्रतिज्ञा की है कि राजमहलमें प्रवेश करनेके पूर्व उसे हेमाचार्यके मठमें जाकर जैनधर्मकी दीक्षा लेनी होगी, तो रानीने पाटन जाना अस्वीकार कर दिया जब तक उसे इस बातका आश्वासन न दे दिया जाय कि उसे हेमाचार्यके मठमें न जाना होगा। इसपर जब कुमारपालके चारण जयदेवने इसका दायित्व अपने ऊपर लिया तब रानी पाटन आयी। उसके आगमनके कई दिन बाद हेमाचार्यने राजासे बातें की कि सिसोदिया रानी मेरे मठमें नहीं आयी। इस पर राजाने रानीसे कहा कि उसे अवश्य जाना चाहिये। इधर रानी अस्वस्थ हो गयी। उसकी बीमारीका हाल सुनकर चारणकी पत्नी उसे देखने गयी। रानीकी कहानी सुनकर चारणकी पत्नी उसका वेश परिवर्तनकर चुपचाप अपने घर ले आयी। रातमें चारणोंने नगरकी एक दिवार खोदकर एक छेद बनाया और उसी मार्गसे रानीको घर पहुचानेके लिए रवाना हुए। जब कुमारपालको इस घटनाका पता लगा तो वह दो हजार घुडसवारोंके साथ उसकी खोजमें निकला। चारणने रानीसे कहा कि मेरे साथ दो सौ घुडसवार हैं। हममेंसे कोई भी जब तक जीवित रहेगा, घबडानेकी आवश्यकता नहीं। रानीसे इतना कहकर वह पीछा करनेवालोंकी ओर मुडा, पर रानीका साहस जाता रहा और उसने गाडीमें ही आत्महत्या कर ली। उधर युद्ध चल रहा था और पीछा करनेवाले गाड़ीकी ओर आगे बढ़ ही रहे थे कि दासियोंने चिल्लाकर कहा "लडाई बन्द करो। रानी अब नहीं रही।" कुमारपाल तथा उसके सैनिक राजधानी लौट गये।

ब्राह्मण तथा जैनधर्मकी इस संघर्षमयी कहानीसे कुमारपालके उस

---

[1] रासमाला, अध्याय ११, पृ० १९२-१९३।

[2] वही।

विवाहका पता चलता है जो मेवाड़के घरानेमें हुआ था। इसप्रकार कुमार-पालकी तीन रानियोंका उल्लेख मिलता है। कुमारपालके जीवनवृत सम्बन्धी प्रामाणिक ग्रन्थ तथा समसामयिक साहित्यमें उसके इस विवाहका उल्लेख नहीं मिलता और न इस घटनाकी चर्चा ही आयी है। इससे इसकी सत्यता संदिग्ध है। यह हम पहले ही देख चुके है कि राज्यारोहणके समय कुमारपालने अपनी रानी भोपालदेवीको पट्टरानी बनाया।

एक बात ध्यान देने योग्य है कि इसकालमें अन्तरजातीय विवाहके भी उदाहरण मिलते हैं। भीमदेवकी तीन रानियां थी। जिनमें एक वणिक कन्या बकुलादेवी भी थी।[1] देवप्रसाद और नागरेमेंड मुंजालकी बहन हंसाका विवाह जो वणिक थी, इस प्रकारके विवाहका दूसरा उदाहरण है।[2] इससे स्पष्ट है कि सामाजिक सम्पर्क और सम्बन्धपर प्रतिबन्ध न था। स्वयंवरकी शादियाँ विवाह भी इस समय होते थे। संयुक्ताके स्वयंवरकी घटना पृथ्वीराज रासोमें अंकित है। फोर्बसने भी 'स्वयंवर मंडप'का उल्लेख किया है जिसमें राजकुमारी अपने इच्छित योद्धाको वरमाला पहनाती थी। उसने उक्त सभामंडपको विवाहका 'प्रयागमय स्थल' कहा है, जहां प्रमकी देवी अपने देवके पार्श्वमें विराजमान रहती थी।[3]

सामाजिक रीति और रिवाज

यह काल राजपूतोंकी वीरता तथा गौरवके युगका था। समाजका नैतिक स्तर बहुत उच्च था। चरित्र तथा सम्मानके अभावमें लोग पापके पश्चातापपूर्ण जीवनके बदले मृत्युको उत्तम समझते थे। जयदेव चारणका

[1] प्रबन्धचिन्तामणि : अध्याय ९, पृ० ७७ तथा के० एम० मुन्शी : पाटनका प्रभुत्व, पृ० ४२।

[2] पाटनका प्रभुत्व पृ० ४५।

[3] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३१।

उदाहरण हम देख चुके हैं, जिसने सिसोदिया रानीको ले जाने तथा अपने वचनके पालनमें जान तक दे दी। चारण जयदेवने देखा कि अब उसका वचन भंग हो रहा है और उसका नैतिक पतन हो गया है, इसलिए उसने मृत्यु वरणका निश्चय किया। वह सिद्धपुर चला गया और वहांसे उसने अपनी जातिके लोगोंको लाल स्याहीसे पत्र लिखा। उसने पत्रमें लिखा था कि "हमारी जातिका सम्मान चला गया, इसलिए जो मेरे साथ चितामें जलनेके इच्छुक हो, वे प्रस्तुत हो जायें।" ईखकी ढेर लगायी गयी और जो सपत्नीक जलना चाहते थे उन्होंने दो और जो अकेले थे उन्होंने एक ईख उठायी। चिताएं प्रस्तुत की गयी। चिता और जमूर तैयार किये गये।[1] सिद्धपुरमें सरस्वती नदीके किनारे प्रथम जमूर बनाया गया था। दूसरा पाटनसे थोडी दूर (बाणकी दूरी)पर और अन्तिम जमूर नगरके प्रवेश द्वारपर बनाया गया था। प्रत्येक जमूरपर सोलह सोलह भाट अपनी पत्नी सहित जलकर भस्म हो गये। जयदेव चारणकी बहनका एक लडका कन्नौजमें था। उसे भी एक 'पत्र लिखा गया था किन्तु उसकी माताने और कोई दूसरा पुत्र न होनेके कारण उसे जाने न दिया।

जमूरपर चारणोंके भस्म हो जानेपर उनके पुरोहितने उन भस्मोंको गंगामें प्रवाहित करनेका निश्चय किया। भस्म बैलगाडीपर लादी गयी और पुरोहित उसे लेकर कन्नौजकी दिशामें गये। संयोगसे जयदेवका भतीजा कन्नौजमें चुंगी विभागमें था। उसने इस गाडीको व्यापारिक वस्तुओंकी गाडी समझ कर निकासी कर मांगा। इसपर पुरोहितने सारा विवरण बताते हुए कहा कि बैलगाडीमें कैसी भस्म लदी है। इसपर भाट अपने परिवारको एकत्रकर पाटन आये। एक स्त्री जिसे कुछ समय पूर्व ही बालक उत्पन्न हुआ था अपना शिशु पुरोहितको सौंप अपने पतिके

---

[1] फोर्वसने लिखा है कि चिता केवल एक व्यक्तिके जलनेके लिए थी और जमूर एकसे अधिकके लिए।

साथ भस्म हो गयी। अब तक पाटन जिलेमें भाट और चारण अपनेको उक्त शिशुका ही वशज बताते हैं।[1] फोर्वस् द्वारा उल्लिखित उक्त कथाकी पुष्टिका अभाव तथा उसके समर्थनमें अन्य प्रामाणिक सूत्रोका मौन, उसकी सत्यतापर सन्देह उत्पन्न करता है। विशेषकर जब कि इस कालकी धार्मिक सहिष्णुता, भारतके इतिहासमें अभूतपूर्व रही है। इस-प्रकारकी धार्मिक सकीर्णताके लिए कुमारपालके राज्यकालमें कोई सम्भावना ही न थी। अत एतिहासिक घटनाके रूपमें, और स्पष्ट प्रमाणोंके अभावमें रानीकी आत्महत्या तथा चारणोका चितामें भस्म होना सत्य नही, अपितु वर्ग विशेषकी विद्वेष भावनाकी कल्पना मात्र ही प्रतीत होता है।

इस कथाका विश्लेषण करनपर उस युगके चरित्र विशेषका परिचय मिलता है। चिता और जमूरपर लोग अपना अन्तिम सस्कार करते थे। उस समय लोग अपने सम्मान तथा प्रतिष्ठाके लिए चिता अथवा जमूरपर जीवित जलकर भस्म हो जाते थे। इस समय कर्त्तव्य तथा ईमानदारीकी जैसी उच्च नैतिक भावना थी, उसका उदाहरण ससारके इतिहासमें कही नही मिलता। प्राचीन भारतीय इतिहासम राजपूतोकी वीरता लोक-प्रसिद्ध थी। चितापर जलनेकी उक्त प्रथामें सती प्रथाका रूप भी देखा जा सकता है। उक्त कथासे यह भी विदित होता है कि मृत शरीरकी भस्म गगामें बारहवी शताब्दीम भी प्रवाहित की जाती थी।

आर्थिक अवस्था

कुमारपालचरित[2] और कुमारपालप्रतिबोधमें राजधानी अनहिल-वाडाका जो वर्णन है, उससे हम देशके तत्कालीन आर्थिक जीवनकी झाकी प्राप्त हो जाती है। यही नही उनसे राज्यकी विभिन्न आर्थिक गतिविधि तथा जनताके उद्योग धन्धोपर भी पर्याप्त प्रकाश पडता है। अणहिल-

[1] रासमाला : अध्याय ११, पृ० १९३-१९४।

[2] हेमचद्र • कुमारपालचरित, प्रथम सर्ग।

पाटण बारह कोस लगभग २४ मीलके घेरेमें बसा था। इसमें अनेक मन्दिर तथा उच्च विद्यालय थे। इसमें चौरासी महल्ले थे। इतनी ही सख्या यहाके बाजारोकी भी थी। यहा स्वर्ण और रजतकी मुद्रा ढालनेवाले गृह भी थे। सभी वर्गोका अपना पृथक-पृथक क्षेत्र था। व्यापारकी वस्तुओमें हाथीदात, रेशम, हीरे, मोती आदि उल्लेख्य थे। मुद्रा-विनिमय करनेवालोका अपना अलग बाजार था, तो सुगन्धके विक्रेताओका क्षेत्र भी पृथक था। चिकित्सको, कलाकारो, स्वर्णकारो और चादीका काम करनेवालोके अलग-अलग बाजार थे। नाविको, चारणो तथा वंशावलियोके विवरण रखनेवालोके स्थान पृथक-पृथक थे। अट्ठारहो "वरण" नगरमें वास करते थे और सभी प्रसन्नतापूर्वक रहते थे। राजप्रासादके चतुर्दिक भव्य भवनोकी पक्तिया थी। हाथी, घोड़े, रथ तथा शस्त्रागारके लिए भवन बने थे। राज्याधिकारियो और जन आय-व्यय निरीक्षकोंके लिए भी पृथक स्थान थे।

प्रत्येक प्रकारके मालके लिए पृथक-पृथक चुगीघर बने थे। यहा आयात-निर्यात तथा विक्रय कर एकत्र किया जाता था। कर तथा चुगी लगनेवाली वस्तुओमें मसाला, फल, दवाइया, कपूर, धातु तथा देश-विदेशकी सभी बहुमूल्य वस्तुए थीं। यह समस्त ससारके व्यापारका केन्द्र था। इस स्थानमें प्रतिदिन एक लाख तुखास (टका) कर रूपमें एकत्र होता था। यहाकी सम्पन्नताका इसी बातसे सरलतापूर्वक अनुमान किया जा सकता है कि पानी मागनेपर दूध मिलता था। यहा बहुतसे जैन मन्दिर थे। एक भीलके तटपर सहस्रलिंग महादेवका मन्दिर निर्मित था। यहाकी जनसख्या गुलाबी सेवो, चन्दन, आम्रवृक्षों तथा विभिन्न प्रकारकी लताओके मध्य उन फुहारोंके मध्य विचरणकर प्रसन्नताका अनुभव करती थी, जिनके जल अमृतके समान थे।[1]

---

[1] टाड : पश्चिमीभारत, पृ० १५६-८।

उद्योग और धन्धे

उपर्युक्त विवरणमें विभिन्न जैन उद्योग धन्धोंका उल्लेख आया है। जैन व्यवसायी बड़े उद्योगपति थे, इसका भी वर्णन मिलता है। विदेशोंसे व्यापार होता था। इसका प्रमाण हमें उस प्रसंगसे मिलता है जिसमें कहा गया है कि राजधानीके कुबेर नामक कोट्याधीशका निधन समुद्र-यात्रामें हो गया।[1] कुबेर विदेशोंसे व्यापार करनेके लिए पाटनसे भरूच (भृगुकच्छ) गया था और वहाँसे ५०० पोतोंमें माल भरकर विदेश गया। विदेशमें अपना सारा माल विक्रयकर उसने चार करोड़ रुपयेका लाभ प्राप्त किया। वहाँसे स्वदेश लौटते समय, समुद्रमें भीषण आंधी आयी और उसकी सभी नाव छिन्न विच्छिन्न हो गयी। कुछ नावें भरूच बन्दरगाहपर आ लगी, किन्तु कुबेरका कहीं पता न लगा। इसप्रकार समुद्रमें विशाल और बहुसंख्यक पोतो द्वारा व्यवसायका वर्णन भी मिलता है। जलपोतों, समुद्रमें व्यापार करनेवाले तथा समुद्री डाकुओंका भी उल्लेख आया है। जवहरी (जौहरी) रत्नके पारखी, व्यापारी, अत्यधिक धनी व्यवसायी होते थे। विदेशसे समुद्रपर व्यवसाय करनेवाले सायात्रिक कहे जाते थे।

भीमराजके शासनकालमें एक विदेशी राजाका हाथी, घोड़ा तथा अन्य व्यापारिक वस्तुओंसे लदा जहाज सोमेश्वर पाटनके बन्दरगाहमें प्रवाहित होकर चला आया था। सिद्धराज जयसिंहके कालमें सायात्रिक (समुद्र व्यवसायी) डाकुओंके भयसे गाठो और बड़लाम स्वर्ण छिपाकर ले जाते थे।[2] इन सभी बातोंसे विदित होता है कि चौलुक्योंके शासन

---

[1] "गुर्जर नगर वणिग्मूर्धन्य कुबेरनामा श्रेष्ठी विदितो देवस्य . स च जलधिवर्त्मनि क्यानोपतया स्वामिपादानाम सेवकतामशिश्रियत।" मोहराजपराजय, अंक ३, पृ० ५१-५२।

[2] रासमाला . अध्याय १३, पृ० २३५।

कालमें बड़े पैमानेपर देशी विदेशी व्यापार होता था। उन प्राचीन दि
पाटन भारतका वेनिस था। कृषिका धन्धा भी महत्त्वपूर्ण धन्धोंम
था। आजकल जैसे किसान अपने कृषिकर्ममें लग दिखायी देते हैं, वैसे
किसानोंका चित्रण हमें उस समय भी मिलता है। जब अन्नके अ
निकलते हैं तो वे अपने खेतका घेरा ठीककर उसके चतुर्दिक काटकी झाड़ि
लगा देते हैं। जब अन्नके पौधे बड़े हो जाते हैं, तो किसान चिड़िय
उसकी रक्षा करते हैं। धानके खेतोंकी रखवाली करती हुई किसानों
स्त्रियां जिसप्रकार लोकगीत आजकल गाती है, ठीक उसीप्रकार उस सम
भी वे खेतोंमें अपने सुमधुर गायनोंसे आनन्द एवं अह्लादकी धारा प्रवाहि
कर समस्त वातावरण संगीतमय कर देती थी।[1]

सुवर्णकार तथा रजतकारोंके भी वर्णन मिलते हैं। रथ तथा अ
ऊंचे-ऊंचे भवनोंका अस्तित्व इस समय था। इसलिए इस कलाके विशे
विद्यमान होनेमें कोई सन्देह ही नहीं किया जा सकता। इस समय समुद्र
व्यापार तथा यात्राका प्रामाणिक वर्णन मिलता है।[2] इसप्रकार निश्च
ही जनसंख्याका एक वर्ग नौका संचालनका धन्धा भी कर उदरपोष
करता होगा। नाविकोंका स्पष्ट उल्लेख भी मिलता है। राजधानी
इनके निवासका एक पृथक क्षेत्र ही था। इसप्रकार अनहिलवाडमें ए
उन्नत तथा वैभवपूर्ण सम्पन्न देश और समाजके सभी उद्योग धन्धे तथ
कार्योंकी व्यवस्था थी।

भोजन, वस्त्र और अलंकार

इस समय भोजनमें गेहूं, चावल, जौ आदिके अतिरिक्त लोग मांसक
भी व्यवहार करते थे। किराडू तथा रतनपुर प्रस्तर लेखोंसे विदित होत

---

[1] वही, पृ० २३२।

[2] मोहराजपराजय अंक ३, पृ० ५१-५२।

कि लोग मासाहारी थे। इन लेखोमें कतिपय विशेष दिन पशुवधका निषेध किया गया है, उससे भी उक्त कथनकी पुष्टि होती है। पशु-की इस निषेधाज्ञाका उल्लघन दडनीय अपराध था।[1] किराडू शिला-लेखमें इस आशयकी राजाज्ञा है कि पवित्र दिनोमे पशुवधके अपराधके लिए राजपरिवारवालोको आर्थिक दड नियत था और साधारण लोगोंके लिए तो इस अपराधमे मृत्युदडका विधान था। यह आज्ञा कुमारपालके राज्यारोहणके थोडे ही दिन बाद उसके हस्ताक्षरसे प्रचारित हुई थी। चौलुक्य राजाओकी परम्पराके सम्बन्धमें फोर्बस् लिखता है कि सन्ध्यामें दीप जलने तथा देवमूर्तिकी अर्चनाके पश्चात् राजा "चन्द्रशाला" नामक ऊपरी भवनमें चला जाता था और वही विशिष्ट एव विशेष भोजन करता

कालमें बड़े पैमानेपर देशी-विदेशी व्यापार होता था। उन प्राचीन दिनोंमें पाटन भारतका वेनिस था। कृषिका धन्धा भी महत्त्वपूर्ण धन्धोंमें एक था। आजकल जैसे किसान अपने कृषिकर्ममें लगे दिखायी देते हैं, वैसे ही किसानोंका चित्रण हमें उस समय भी मिलता है। जब अन्नके अंकुर निकलते हैं तो वे अपने खेतका घेरा ठीककर उसके चतुर्दिक काटेंकी झाड़िया लगा देते हैं। जब अन्नके पौधे बड़े हो जाते हैं, तो किसान चिड़ियोंसे उसकी रक्षा करते हैं। धानके खेतोंकी रखवाली करती हुई किसानोंकी स्त्रियां जिसप्रकार लोकगीत आजकल गाती हैं, ठीक उसीप्रकार उस समय भी वे खेतोंमें अपने सुमधुर गायनोंसे आनन्द एवं अह्लादकी धारा प्रवाहित कर समस्त वातावरण संगीतमय कर देती थी।[1]

सुवर्णकार तथा रजतकारोंके भी वर्णन मिलते हैं। रथ तथा अन्य ऊंचे-ऊंचे भवनोंका अस्तित्व इस समय था। इसलिए इस कलाके विदोंके विद्यमान होनेमें कोई सन्देह ही नहीं किया जा सकता। इस समय समुद्रसे व्यापार तथा यात्राका प्रामाणिक वर्णन मिलता है।[2] इसप्रकार निश्चय ही जनसंख्याका एक वर्ग नौका संचालनका धन्धा भी कर उदरपोषण करता होगा। नाविकोंका स्पष्ट उल्लेख भी मिलता है। राजधानीमें इनके निवासका एक पृथक क्षेत्र ही था। इसप्रकार अनहिलवाडेमें एक उन्नत तथा वैभवपूर्ण सम्पन्न देश और समाजके सभी उद्योग-धन्धे तथा कार्योंकी व्यवस्था थी।

भोजन, वस्त्र और अलंकार

इस समय भोजनमें गेहू, चावल, जौ आदिके अतिरिक्त लोग मांसका भी व्यवहार करते थे। किराडू तथा रतनपुर प्रस्तर लेखोंसे विदित होता

[1] वही, पृ० २३२।
[2] मोहराजपराजय : अंक ३, पृ० ५१-५२।

है कि लोग मासाहारी थे। इन लेखोंमें कतिपय विशेष दिन पशुवधका जो निषेध किया गया है, उससे भी उक्त कथनकी पुष्टि होती है। पशु-वधकी इस निषेधाज्ञाका उल्लघन दडनीय अपराध था।[1] किराडू शिला-लेखमें इस आशयकी राजाज्ञा है कि पवित्र दिनोंमें पशुवधके अपराधके लिए राजपरिवारवालोको आर्थिक दड नियत था और साधारण लोगोके लिए तो इस अपराधमें मृत्युदडका विधान था। यह आज्ञा कुमारपालके राज्यारोहणके थोड ही दिन बाद उसके हस्ताक्षरसे प्रचारित हुई थी। चौलुक्य राजाओंकी परम्पराके सम्बन्धमें फोर्बस् लिखता है कि सन्ध्याम दीप जलने तथा देवमूर्तिकी अर्चनाके पश्चात् राजा 'चन्द्रशाला' नामक ऊपरी भवनमे चला जाता था और वही विशिष्ट एव विशेष भोजन करता था। इसमें मास तथा मदिरा भी रहती थी। सामन्तसिंहका अत्यधिक आसव पानकी दशामें ही अन्त हुआ था।[2] चौलुक्योंके पुरोगामी चावड भी मद्यपान करते थ। स्वय अणहिलपुरके सस्थापक वनराजको मद्य बहुत प्रिय था। उसके पश्चात् भी वहाके राजमहलोंमे मदिरादेवीका खूब सत्कार होता था। मन्त्री यशपालके वर्णनसे यह स्पष्ट है। प्रबन्धगत प्रमाणोंसे प्रतीत होता है कि कुमारपाल जैनधर्मानुयायी होनके पहले मासा-हार तो करता था लेकिन मद्यपानसे उसे हमेशा घृणा थी। यहा तक कि उसके कुलमें यह वस्तु त्याज्य थी। हेमचन्द्रके योगशास्त्रम आय हुए एक उल्लेखसे प्रतीत होता है कि चौलुक्य कुलमें मद्यपान ब्राह्मण जातिकी तरह ही निन्द्य था।[3] इसप्रकार स्पष्ट है कि भोजनके साथ मास और मदिरा भी ग्रहण की जाती थी। हेमचन्द्रके शिष्य होन-पर कुमारपालने मासभोजन तथा मदिरापानका त्याग कर दिया

[1] भावनगर इन्सक्रिपशन, पृ० २०५-२०७।
[2] रासमाला, अध्याय १३, पृ० २३७।
[3] राजर्षि कुमारपाल : मुनि जिनविजय, पृ० १९।

था।[१] मांसभोजन, आसवपान तथा पशुवधके पापको रोकनकी आज्ञा कुमारपालने दी थी।[२] वनराज तथा सभी चावडे राजा अधिक आसव पानके अभ्यस्त थे।[३] युवावस्थामें कुमारपालको भी मांस खानका व्यसन था और पर्यटनकालमें तो उसने मुख्यतः मांसपर ही निर्वाह किया था।[४]

उस समय भी लोग शाल और उत्तरीय वस्त्र उसीप्रकार ओढ़ते थे जिसप्रकार आजकल शाल और चादर धारण करनेकी चाल है। आधुनिक कालकी भांति ही स्त्रियां साडी पहनती थी।[५] फोर्बसका कथन है कि जब राजा भोजन कर चुकता था तो चन्दनकी सुगन्ध उसके शरीरमें लगायी जाती थी। सुपाडी खाकर वह छतमें लटकाये झूलनेवाले बिछावनपर विश्रामकी मुद्रामें आसीन होता था। उसकी लाल रंगकी राजकीय पोशाक कोच और तकियापर फैला दी जाती थी।[६] जैन आचार्योंकी लम्बी सफेद पोशाकका भी वर्णन आया है।[७] पुरुष उस समय धोती, उत्तरीय वस्त्र तथा पगडी पहनते थे।[८] स्वर्णकारों तथा रजतकारोंका

---

[१] मोहराजपराजय तथा कुमारपालप्रतिबोध सभी इसका उल्लेख करते हैं।

[२] मोहराजपराजय : अंक ४, पृ० ८३।

[३] वनराजस्याह बहुमतोऽभूवमित्युपस्थितममुना
इय धवल हरे सुचिर चावुक्कडराय लालिओवसियो।
मोहराजपराजय, अंक ४, पृ० ४७।

[४] बालत्ताउ वि तुह देव। निच्चमच्चतवल्लहो अहय
महसाहिज्जेण तया भमाई देसतराइ तए। वही।

[५] के० एम० मुंशी : पाटनका प्रभुत्व, खंड २, पृ० १००।

[६] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३७-२३८। यह प्रथा आज भी गुजरात और महाराष्ट्रके घरोंमें व्यापकरूपसे प्रचलित है।

[७] वही।

[८] पाटनका प्रभुत्व : खंड २, पृ० १०४।

अनेक स्थलोमें उल्लेख हुआ है। जैन तीर्थंकरोंके चित्रोसे मोतीकी मालाओ, कंकण, कडा, कानकी ऐरन आदि आभूषणोंके विवरण मिलते हैं। आबू मन्दिरकी, मूर्तियों-चित्रोसे ज्ञात होता है कि उस समय लोग दाढी-मोछ रखनेके साथ ही, कलाइयो तथा बाहोमे आभूषण पहने थे और कानमे गोल अगूठी (वाली) तथा गलेमे हार एव मोतीकी माला भी धारण करते थे। दर्शनादिके निमित्त मन्दिर जाते समय उनका वस्त्र एक छोटीसी धोती और उत्तरीय होता था। उत्तरीय वस्त्रको दोनो कन्धेपर डालकर बाहोपर लटका लिया जाता था। स्त्रिया कचुकीके अतिरिक्त दो वस्त्र पहनती थी। इनका ऊपरी वस्त्र आधुनिक ओढनी जैसा था। स्त्रिया कानपर बडे कमडल धारण करनेके अतिरिक्त बाहो और हाथोमें कडा तथा चूडिया धारण करती थी।[1] यशपालके नाटक मोहराजपराजयमे भी सुन्दर वस्त्राभूषणोका वर्णन मिलता है।[2]

चौलुक्यकालीन सिक्के

चौलुक्यराजाओंके सम्बन्धमे जब प्रभृत एव प्रचुर ऐतिहासिक सामग्री मिलती है, तो यह वस्तुत आश्चर्यका विषय हो जाता है कि उस कालकी मुद्राए क्यो दुर्लभ और अप्राप्य है। बारहवी शताब्दीम गुजरातका साम्राज्य आर्थिक सम्पन्नताके विचारसे अत्यधिक समृद्ध था। समसामयिक साहित्य, विदेशी इतिहासकारोंके विवरण तथा अन्य साधनोंसे इसकी पुष्टि होती है। तत्कालीन नाटक 'मोहराजपराजय'म यशपालने कुबेरके वैभवका वर्णन करते हुए लिखा है कि कुबेरके पास ६ करोड स्वर्णमुद्रा[3] और आठ

---

[1] आर्कलाजी आव गुजरात : अध्याय ४, पृ० ११८।

[2] पौराः ! कुर्युविपणि पदवीमस्तपाशुं पयोभिर्मुक्ताहारं रुचिर वसनैर्हट्टशोभा विदध्यु.। मोहराजपराजय : अक ४, पृ० ९२।

[3] स्वर्णस्य षट्कोट्यस्तार स्याष्ट तुलाशतानि च महार्णाणा मणीनादश.

—मोहराजपराजय।

सौ तोला रजत, बहुमूल्य रत्न आदि-आदि थे। गुजरातकी राजधानी पाटन तत्कालीन भारतकी 'वेनिस नगरी' कही जाती थी। गुजरातके स्तम्भतीर्थ (सूरत) भृगुपुर (गुडाया) द्वारका, देवपाटन, मोटा तथा गोपनाथ आदि बन्दरगाहोंसे विदेशी व्यापार बडे पैमानेपर होता था। समुद्रमें व्यापारके लिए गये कुबेरके निधनके विवरणसे स्पष्ट है कि उस समय पाटन ससारके प्रमुख व्यापारकेन्द्रोंमें था और यहासे व्यापारिक पोतोंका विशाल समूह विदेशोंसे व्यापार करने जाता था। ऐसी स्थितिमें यह कहना कि चौलुक्यकालीन राजाओंने अपने सिक्कोंका प्रचलन न किया होगा, हास्यास्पद लगता है। उत्तरप्रदेशमें मिली सिद्धराज जयसिंहकी स्वर्णमुद्रासे विदित होता है कि उस समय सिक्के ढाले जाते रहे हैं और अर्थविभागके अन्तर्गत इसकी व्यवस्था अवश्य रही थी।[1] कुमारपाल-चरितके प्रथम सर्गमें तथा कुमारपालप्रतिबोधमें राजधानी अनहिलवाडा-का जो वर्णन मिलता है उनमें पाटनमें स्वर्ण तथा रजत मुद्राओंको ढालने-वाले गृहोंका भी उल्लेख आया है। यहा चौरासी बाजार थे जहा आयात-निर्यात तथा विक्रय कर लेनेकी व्यवस्था थी। यहा प्रतिदिन एक लाख तुखास (टका) कर के रूपमें एकत्र होता था।[2] अब प्रश्न है कि ऐसी समृद्धिशील आर्थिक स्थितिमें चौलुक्यकालीन सिक्कोंका अभाव क्यों है? इसके अनेक कारण हो सकते हैं। प्रथम तो यह कि कुमारपालके उत्तराधिकारियोंके समय और उसके बाद जितने यवन आक्रमण हुए, उनमें स्वर्णके भूखे आक्रमणकारियोंने मनमानी लूटपाट की। बहुतसी स्वर्ण और रजत मुद्राए तो इसप्रकार नष्ट हो गयी होंगी अथवा विदेश ले जायी गयी होंगी। दूसरा कारण, सिक्कोंका प्रचलन सम्बन्धी वह साधारण नियम है, जिसके अनुसार राज्यपरिवर्तन अथवा नवीन राजाके

---

[1] जे० आर० ए० एस० बी०, लेटर्स, ३, १९३७ न० २ आर्टिकिल।
[2] टाड : एनल्स आव वेस्टर्न इण्डिया, पृष्ठ १५६।

अधिकारग्रहणके बाद उसके पूर्वके अधिकाश सिक्कोका नयी मुद्रा चलानेके लिए गला दिया जाना है। जब सिद्धराज जयसिहकी स्वर्णमुद्राका पता चला है तो कोई कारण नही कि उसके उत्तराधिकारी कुमारपालन राज्या-रोहणके उपरान्त अपनी मुद्राए न प्रचलित की हो। विशेषकर उस स्थितिमें जब कि उसीके शासनकालमें गुजरातका साम्राज्य उन्नतिकी पराकाष्ठापर था। यह केवल अनुमान ही नही, अपितु अन्य सूत्रोसे भी विदित होता है। एक सूत्रसे पता चलता है कि अलाउद्दीनके मुद्रा अधिकारी लोगोसे प्राचीन सिक्के लेते थे और द्रव्यपरीक्षा कर उसका मूल्याकन नये सिक्केम करते थे। ऐसे ही एक प्रसगम 'कुमारपालीय मुद्रा'का उल्लेख आया है।[1] इस प्रकार विदेशी आक्रमणकारियोकी लटपाटसे अवशिष्ट सिक्के, यवनराज्यकी स्थापनाके कारण नये सिक्कोके लिए गला दिये गये होग। इसके पश्चात भी बचे हुए सिक्के बहुत सम्भव है कि तत्कालीन वैभवकेन्द्रोके ध्वसके नीचे दबे पडे हा। हम लिख चुके है कि पुरातत्त्ववेत्ता श्री सकालियान जब उक्त क्षेत्रोम सिक्कोके सम्बन्धम पूछताछ की तो उन्हे पता लगा था कि सहस्रलिंग तालावके निकट, नगरकी सीमाके बाहर जब एक सडकका निर्माण हो रहा था तो कुछ सिक्के सागर अप्सराके मुनि पुण्यविजयजीको मिले थे। इन स्थितियोम यह स्वीकार करनेमें किसी प्रकारका सन्देह नही कि चौलुक्य राजाओ तथा उनमें सर्वप्रमुख कुमारपालने अपनी मुद्राए अवश्य ही प्रचलित की होगी। निकट भविष्यमें प्राचीन ऐतिहासिक स्थलोंके उत्खननपर, इस सम्बन्धमें और अधिक प्रकाश पडनेकी सम्भावना है।

मनोरजन और खेलकूदके साधन

ऐसे सम्पन्न और उन्नतिशील समाजमें विविध प्रकारके खलकूद तथा मनोरजनके साधन होने स्वाभाविक ही थे। कुमारपालप्रतिबोधम

---

[1]मुनिकान्तिसागर : खत्तर खेरू और उनके ग्रन्थ।

मल्लयुद्ध प्रतियोगिता, हस्तियुद्ध तथा अन्य मनोरजनोंके वर्णन मिलते है। द्यूत खेलनेकी प्रथा राजा और प्रजा दोनोंमें बहुत प्रचलित थी। धार्मिक समारोहोपर तो लोग सार्वजनिक और स्वतन्त्र रूपसे जुआ खेलते थ। द्यूत क्रीडाके पाच भेदोका वर्णन मिलता है। प्रथम भेद अग्घ्य था, जो नित्य राजा लोगो द्वारा वस्त्रके टुकडेपर बने वर्गपर खेला जाता था। दूसरा प्रकार नालय था, जिसे सम्पन्न लोग सुवर्ण लेकर खलते थे। तृतीय चतुरग था, जो आधुनिक कालका शतरज है। द्यूतका चतुर्थ भेद अक्ष था जिसे खलकर कौरवोने विजय प्राप्त की थी। पाचवा प्रकार वराड नामका था, जिसे कौडियोकी सहायतासे खेला जाता था। जुआ खेलनेवालोका भी वर्णन मिलता है। कुछ लोगोके हाथ, पैर और कान काट लिये जाते थे। कुछ लोगोके तो नेत्र भी निकाल लिये जाते थे। दडस्वरूप जुआ खेलनवालोकी नाक, जीभ तथा कुछके पैर तक काट लिये जाते थे। कुछ लोगोको इस अपराधमें नग्न कर दिया जाता था।[1]

द्यूत खेलनेवालोमें निम्नलिखित राजवशके सदस्योके नाम मिलते हैं—(१) मेवाडके राणाका पुत्र, (२) सोरठके राजाका भाई, (३) चन्द्रावतीका राजा, (४) नाड्डुलके राजाका भतीजा, (५) गोधरा नरेशका भतीजा, (६) धारानरेशका भाजा, (७) साकभरी राजके श्वसुर, (८) कच्छ नरेशका साला, (९) कोकण राजका सौतेला भाई, (१०) मारवाडके राजाका भाजा तथा (११) चौलुक्य राजका चाचा। द्यूत क्रीडामें ये इतने निमग्न रहते थे कि परिवारमें माता पिता या पत्नीकी मृत्यु भी हो जाती तो उसपर बिना शोक प्रकट किये, ये अपने खेलम ही व्यस्त रहते। कहते हैं शूद्रकने अपना साम्राज्य द्यूत क्रीडासे ही हस्तगत कर लिया

[1] केवि कट्टिय चरण करकन्न, किवि कड्ढियनयणजुय केविनक्क अहरिहि विवज्जिय। किवि लूण सव्वावयव केवि जेव खवणय अलज्जिय।
मोहराजपराजय : चतुर्थ अक, श्लोक २२।

(

था।[1] राजप्रासाद तथा नगरमें संगीत तथा नृत्यका भी उल्लेख मिलता है। कुमारपालके दैनिक कार्यक्रममें हमने देखा है कि जब वह राजप्रासादके मन्दिरोंमें पूजन-अर्चन समाप्त कर लेता तो नर्तकियां दीप लेकर देवताओंके सम्मुख नृत्य करती थी। आराधनके उपरान्त वह चारणो तथा अन्य लोगोंसे वाद्यसंगीत और गायन सुनता।[2] वेश्यावृत्ति कोई विशेष और बड़ा पाप नही समझा जाता था।[3] समारोहोंपर नागरिक सड़कोंपर छिड़काव कराते थे तथा मोतियोंके हार और सुन्दर वस्त्रोंसे अपनी दुकान सुसज्जित करते थे। प्रमुख स्थानोंमें उन्हे स्वर्णघट रखने पड़ते थ और सुसज्जित रंगमंचपर नर्तकियां नृत्यकलाका प्रदर्शन करती थी।[4] समाजके शिष्टवर्गसे वेश्याओंका घनिष्ट सम्पर्क रहता था। वेश्याओंकी स्थिति भी आजकी भांति हल्की और व्यभिचारपोषक न थी। वेश्याओंका स्थान समाजमें एक प्रकारसे उच्च समझा जाता था। राजदरबारमें हमेशा उनकी उपस्थिति रहती थी। देवमन्दिरोंमें भी नृत्यसंगीत आदिके लिए उनकी उपस्थिति आवश्यक समझी जाती थी। व्यक्तिगत और सार्वजनिक

---

[1]वही, श्लोक २९।

[2]कुमारपालप्रतिबोध : पृ० ३८।

[3]मोहराज पराजय, पृ० ११—'वेश्याव्यसनं तु वराकमुपेक्षणीयम्। न तेन किञ्चिद्गतेन स्थितेन वा।'

[4]भो भो. पौरा। महाराज श्रीकुमारपाल देवो युष्मानाज्ञापयति। यज्जिन रथयात्रामहोत्सव भविष्यति। ततः

पौरा। कुर्म्य विपणिपदवीमस्तयांशु पयोभि
र्मुक्ताहारे रुचिर वसनैर्हट्ट शोभा विदध्यु
स्थाने स्थाने कनक कलशान् स्थापयंयुर्भवन्त
पट्टस्त्रीभि सुरगृह सखान् मचकान् भूपयेयुः।

वही, चतुर्थ अंक, श्लोक १९।

महोत्सवोंमें भी उनका स्थान प्रमुख रहता था। कला और कुशलताकी वे शिक्षिका मानी जाती थी। नाटका तथा अन्य मनोरजक कार्यक्रमोंके आयोजनोंसे भी वर्णन मिलते हैं। हेमचन्द्रने लिखा है कि सिद्धराज जयसिंह वेश परिवर्तनकर इन स्थानोंमें जाया करते थे। धनाढ्य उद्योगपतियोंके भव्य-भवनोंके उज्ज्वल प्रकाश या अन्य समारोहके स्थल उसके आकर्षणके विषय थे। अज्ञात समझकर भी वह जहा जाता और उसका आदर होता था। कभी वह शिव मन्दिरोंके प्रागणमें होनेवाले सगीत अथवा हास्यसे आकर्षित होकर जाता, जहा अभिनेता अपनी बुद्धि एव अभिनय कलासे जनसमूहको अह्लादित करते थे। एक समय जयसिंह सिद्धराज वेश बदलकर कर्णमेरुप्रासादमें अभिनीत होनेवाले एक नाटकमें उपस्थित थे। ऐसे प्रदर्शनोंमें पर्याप्त धनराशिका व्यय होता था और धनाढ्य ही इसका आयोजन करनेमें समर्थ हो सकते थे। इसप्रकार एक सम्पन्न एव पूर्ण उन्नत समाजमें प्राप्य समस्त प्रकारके खेल-कूद, प्रदर्शन, सास्कृतिक आयोजन, कलात्मक अभिनय तथा मनोरजनके विविध साधन इस समय उपलब्ध थे।

धार्मिक और सांस्कृतिक अवस्था

सोलंकीराज कुमारपालका शासनकाल भारतके धार्मिक एवं सांस्कृतिक इतिहासमें विशेष महत्त्व रखता है। जैन इतिहासोंमें यह बात स्पष्ट लिखी है कि जैसे-जैसे कुमारपाल प्रौढावस्थाको प्राप्त हो रहा था, उसी प्रकार क्रमशः उसपर हेमचन्द्रका अधिकाधिक प्रभाव होता जाता था और अन्तमें वह जैनधर्ममें दीक्षित हो गया। कुमारपालके बीससे अधिक शिलालेखोंमें उसे "उमापति वरलब्ध"—शंकरका भक्त कहा गया है[1] तथा अनेक शिलालेखोंमें उसके सम्बन्धमें परम अर्हत सूचक विरुदका उल्लेख आता है। गुजरातके बहुतसे प्रतिष्ठित परिवारोंमें जैन और शैव दोनों धर्मोंका पालन किया जाता था। किसी घरमें पिता शैव था तो पुत्र जैन, किसी घरमें सास जैन थी तो वधू शैव। किसी गृहस्थका पितृकुल जैन था तो मातृकुल शैव। किसीका मातृकुल जैन था तो पितृकुल शैव। इसप्रकार गुजरातमें वैश्य जातिके कुलोंमें प्रायः दोनों धर्मोंके अनुयायी थे। निष्कर्ष यह कि शैव और जैन दोनों मुख्यरूपसे गुजरातके प्रजाधर्म थे।[2] दोनों धर्मोंमें सद्भावकी स्थिति थी तोभी सामान्यरूपसे राजधर्म शैव ही माना जाता था और गुजरातके राजाओंके उपास्य शिव

---

[1]इंडि० ऐंटी० : खंड १८, पृ० ३४१-४३ तथा इपि० इंडि० : ४१२, सूची संख्या २७९।

[2]मुनिजिनविजय : राजर्षि कुमारपाल, पृ० ५।

थ।[1] दसवी शताब्दीमें जब मूलराजने अनहिलवाडाम चौलुक्य राजवशकी स्थापना की तो उस समय भी सोमनाथका पवित्र मन्दिर सर्वप्रसिद्ध था।[2] सिद्धपुरमें रुद्रमहालयका निर्माण कर मूलराजने उत्तरी गुजरातमें भी शैवमतका बीजारोपण किया। सिद्धराज जयसिंहके समय भी शैव मतकी अत्यधिक उन्नति हुई। उसन सहस्रलिंग तालावका निर्माण करा उसके चतुर्दिक मन्दिरोमे एक सहस्र शिवलिंगोकी स्थापना करायी। इतना ही नही, झीलके चारो ओर अन्य देवी-देवताओके मन्दिरोका भी उसन निर्माण कराया।[3] निश्चय ही कुमारपालने जयसिंह सिद्धराजकी भाति शैवधर्म-को राजसरक्षण नही प्रदान किया और उसका झुकाव जैनधर्मकी ओर ही अधिक था। फिर भी हेमचन्द्रने लिखा है कि कुमारपालने अनहिलवाडामें कुमारपालेश्वर नामक शिवमन्दिरकी स्थापना की।[4] इसके अतिरिक्त उसने सोमनाथके मन्दिरका पुनर्निर्माण कराया तथा केदार मन्दिरको बनवानेका आदेश भागवतको दिया।[5] उसके उत्तराधिकारी अजयपालने शैवधर्मका प्रचार-प्रसार बडे उत्साहसे किया। इस समयसे लेकर चौलुक्य-वशके अन्त तक शैवधर्मको राज्य समर्थन एव सरक्षण प्राप्त रहा।

---

[1]हेमचन्द्रके द्वयाश्रय काव्यमें जो चौलुक्यकालीन गुजरातकी प्रामाणिक रचना है, मूलराजसे जयसिंह सिद्धराज तकके वर्णनमें जैनधर्मका कहीं नामोल्लेख भी नहीं मिलता।

[2]द्वयाश्रयमें मूलराजकी सोमनाथ यात्राका उल्लेख है। बिल्हरी शिलालेखके अनुसार लक्ष्मण राजा ई० सन ९६०में सोमेश्वरकी आराधना करने गया था। इपि० इडि० : खड १, पृ० २६८।

[3]द्वयाश्रय : सर्ग १५, श्लोक ११४, १२२ तथा अप्रकाशित "सरस्वती पुराण"।

[4]वही, सर्ग २०, श्लोक १०१।

[5]द्वयाश्रय महाकाव्य : सर्ग २०, श्लोक ९५।

शैवमतका प्राधान्य

इस संक्षिप्त सिंहावलोकनके पश्चात् इस निर्णयपर पहुंचना उचित होगा कि कुमारपालके जैनधर्ममें दीक्षित होनेके पूर्व शैवधर्म ही राज्यधर्म था। कुमारपाल अपने उत्तरार्ध जीवनमें जैनधर्मको मुख्य मानने लगा था। सिद्धराजके इष्टदेव अन्त तक शिव ही थे किन्तु कुमारपालके इष्टदेव पिछले जीवनमें जिन थे।[1] कुमारपालके शासनकालमें भी शैव सम्प्रदायकी अवनति नहीं हुई। इस बातके प्रमाण मिलते हैं कि शैव और जैनधर्म दोनों साथ-साथ फल-फूल रहे थे। प्रबन्धचिन्तामणिके अनुसार हेमाचार्यके गुरु देवसूरिसे जब कुमारपालने पूछा कि उसका नाम किस प्रकार चिरस्मरणीय हो सकता है तो देवसूरिने उत्तर दिया—'समुद्रकी लहरोंसे ध्वस्त सोमनाथके काष्ठ मन्दिरका ऐसा नवीन निर्माण कराओ जो एक युग तक ठीक रहे।' कुमारपालने मन्दिर निर्माण करना स्वीकार किया तथा सोमनाथ स्थित राज्याधिकारी गंडभाव बृहस्पतिकी अध्यक्षतामें एक पंचकुल अथवा मन्दिर निर्माण समितिका संघटन किया।[2]

भावबृहस्पतिकी प्रशस्तिमें यह स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि "कामके शत्रु सोमनाथके मन्दिरको ध्वस्त देखकर उसने (कुमारपालने) देवमन्दिरके पुनर्निर्माणकी आज्ञा दी।" कुमारपालने जब मन्दिरके शिलान्यासका समाचार सुना तो हेमचन्द्रके आदेशके अनुसार यह प्रतिज्ञा की कि जब तक मन्दिरका पूर्ण निर्माण न हो जायगा तब तक वह व्यसनादिका त्याग रखेगा। अपनी इस प्रतिज्ञाकी साक्षीके लिए उसने हाथमें जल लेकर नीलकंठ महादेवपर छोड़ा, जो सम्भवतः उसके इष्टदेव थे। दो वर्षोंमें मन्दिर बनकर तैयार हो गया और उसपर पताका फहराने लगी। हेमाचार्यने

[1]राजर्षि कुमारपाल, पृ० ६।
[2]प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश।

राजासे उस समय तक अपनी प्रतिज्ञा न तोड़नेका परामर्श दिया जब तक नवीन मन्दिरमें वह देवका दर्शन नही कर आता। राजाने यह स्वीकार किया और सोमनाथ गया। हेमाचार्य भी पहले ही पैदल रवाना हुए और शत्रुंजय तथा गिरनार हो आनेके बाद सोमनाथ आनेका भी वचन दिया। सोमनाथ पहुंचनेपर कुमारपालका भव्य स्वागत वहाके राज्याधिकारी गड बृहस्पतिने सोमनाथकी जनता तथा मन्दिर निर्माण समितिकी ओरसे किया। कुमारपालकी राज-सवारी नगरके मुख्य मार्गोसे होती हुई, सोमनाथ महादेवके नवनिर्मित मन्दिर तक निकाली गयी। मन्दिरकी सीढियोपर राजाने अपना मस्तक नत किया। गडबृहस्पतिके निर्देशनके अनुसार उसने देवका पूजन कर, हाथियो और अन्य बहुमूल्य वस्तुओकी भेंट रखी। उसने सिक्को द्वारा अपना तुलादान भी किया और वह समस्त धनराशि मन्दिरमें अर्पित कर दी। इसके पश्चात् कुमारपाल अणहिलपुर वापस लौटा।[1]

फोर्वस् लिखता है कि वुणराज तथा उसके उत्तराधिकारी सिद्धराज जयसिंह और उसके बाद कुमारपाल, (उस समय तक जब कि कुमारपालने हेमचन्द्राचार्यसे अर्हत्‌के सिद्धान्तोको ग्रहण न किया था) शैव मतावलम्बी थे।[2] कुमारपालने, केवल सोमनाथका नवीन मन्दिर निर्माण ही न कराया अपितु शैवधर्मके प्रति अपनी श्रद्धा, चित्तौर तथा उदयपुर (ग्वालियर) स्थित समिद्धेश्वर और उदयलेश्वरके शिवमन्दिरोको दानमे ग्राम देकर भी प्रकट की थी। कुमारपाल जीवनके उत्तरकालमें जैनधर्ममें दीक्षित हो जानेपर भी शैवमतका सरक्षक था, इसका प्रमाण चित्तौरगढ उत्कीर्ण लेख द्वारा मिलता है। इस शिलालेखका प्रारम्भ जैनदर्शनके 'ओम नम सर्वज्ञ' तथा साथ ही शिव प्रार्थनासे होता है। इसमे इस घटनाका भी उल्लेख है कि शाकमरी भूपालसे जब वह युद्ध करने जा रहा था तब उसने

---

[1]प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश।

[2]रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३७।

चित्रकूट पर्वतपर स्थित समिद्धेश्वर महादेवका पूजन किया था और भेटके अतिरिक्त एक ग्राम दान भी किया था।[1] इसीप्रकार उदयपुर प्रस्तर लेखम उदयपुर नगरके उदयलीश्वर मन्दिरमें महाराजपुत्र वसन्तपाल द्वारा दान दिये जानेका उल्लेख है। यह शिलालेख शाकभरी तथा अवन्तिराजको पराजित करनेवाले अनहिलपाठकके राजा कुमारपालके शासनकालका है।[2] कुमारपाल जीवनके प्रारम्भमे शिवका अनन्य भक्त था, इस तथ्यकी पुष्टि उसके बहुसख्यक शिलालेखों द्वारा होती है जिनमे उसे उमापति शिवका प्यारा "उमापति वरलब्ध" कहा गया है।[3] इसप्रकार अपने पूर्वजोकी भाति कुमारपाल, शासनकालके प्रारम्भमें शिवका पक्का भक्त था और जनसख्याका बहुत बडा दल भी इसी धर्म मार्गका अनुयायी था।

जैनधर्मका उदय और उत्कर्ष

जैनसूत्र तथा साहित्यका दावा है कि यहा अतीत प्राचीनकालसे जैनधर्मका प्रसार था।[4] सम्भव है कि गुजरात तथा काठियावाडम जैन-धर्मकी प्रथम लहर ईसा पूर्व चौथी शताब्दीमे उस समय फैली जब भद्रबाहु दक्षिणकी ओर गये थे।[5] चालुक्योंके अधीन गुजरातमें जैनधर्मके प्रसारका

[1] इपि० इडि० ・ ४१२, सूची सख्या २७९।

[2] इडि० ऐंटी० : खड १८, पृ० ३४१-४३।

[3] आर्कलाजिकल सर्वे आव इडिया वेस्टर्न सरकिल, १९०८, पृ० ५१, ५२। वही, ४४, ४५, पूना ओरयटलिस्ट खड १, उपखड २, पृ० ४०, इपि० इडि०–खड ११, पृ० ४४ आदि आदि।

[4] सकालिया : दि ग्रेट रिननशियेसन आव नेमिनाथ, इडियन हिस्टारिकल क्वाटरली, जून १९४०।

[5] आर्कलाजी आव गुजरात : अध्याय ११, पृ० २३३।

पता किसी प्राचीन ऐतिहासिक भवन या लेखादिसे नहीं प्राप्त होता। अवश्य ही कर्नाटकमें प्राचीनकालसे दिगम्बर जैनधर्मका प्रचार था।[1] चौलुक्यकालमें गुजरात श्वेताम्बर जैनधर्मका सबसे बड़ा केन्द्र बना। हरिभद्रने आठवीं शताब्दीमें इस सम्प्रदायकी प्रमुखता और प्रसिद्धि करायी।[2] राजपूताना और उत्तरी गुजरातमें जैनधर्मके प्रचारका पता उन जैनमन्दिरसे भी लगता है जो दसवीं शतीमें हस्तिकुंडी वंशके राष्ट्रकूट राजा विदग्धराज द्वारा बनवाया गया था। चावड़ वंशके संस्थापक वनराजका पालन पोषण एक जैनसूरिने किया था, इससे भी जैनधर्मके प्राचीन प्रचलनकी स्थिति विदित होती है।

जो हो, महर्षि हेमचन्द्रके कालमें गुजरातमें जैनधर्मकी स्थिति अत्यधिक सुदृढ़ ही न हुई अपितु कुछ समयके लिए यह राज्यधर्म भी बन गया। यह किस प्रकार हुआ, इसका विवरण जैनमुनि हेमचन्द्राचार्य द्वारा ही विदित होता है। वह अपने द्वयाश्रय काव्यमें लिखते हैं कि वास्तवमें पहलेके राजाओंमें जैनधर्मके प्रति विशेष उत्साह नहीं था। समय-समयपर भले ही उनकी सदिच्छा इस धर्मके प्रति जाग्रत हुई हो और उन्होंने जैनमन्दिरोंके निर्माण भी कराये हों, किन्तु इससे यह अर्थ कदापि नहीं लिया जा सकता था कि वे राजे जैन थे। इन राजाओंके शैव होनेपर भी जैनधर्मपर उनकी आदरदृष्टि थी। विद्वान जैन आचार्य, राजाओंके पास निरन्तर आते रहते थे और राजा लोग भी अपने गुरुओंके समान ही उन्हें आदर करते थे। शैवधर्मके आदर्श प्रतिनिधि सिद्धराज भी जैनोंसे काफी सम्बन्धित थे। सिद्धपुरमें रुद्रमहालयके साथ-साथ उसने 'रायविहार' नामक आदिनाथका जैनमन्दिर भी बनवाया था। गिरनार पर्वतपर नेमिनाथका जो मुख्य जैन-मन्दिर आज विद्यमान है, वह भी सिद्धराजकी उदारताका

[1]विंटरनित्स : हिस्ट्री आव इंडियन लिटरेचर, भाग २, पृ० ४३१।
[2]आर्केलाजी आव गुजरात : अध्याय ११, पृ० २३५।

ही फल है। शत्रुंजय तीर्थका खर्च चलानेके लिए उसने बारह गाँव उसके साथ लगा देनेके लिए अपने महामात्य अश्वाकको आज्ञा दी थी।[1] हाँ यह अवश्य है कि हेमचन्द्रने इसका उल्लेख किया है कि जयसिंह सिद्धराज, जब सोमनाथसे यात्रा कर लौट रहे थे तो उन्होंने नेमिनाथका पूजन-वन्दन किया था।[2] जयसिंह सिद्धराजने सिद्धपुरमें महावीरका एक चैत्य भी बनवाया था।[3] किन्तु इससे यही पता चलता है कि गुजरातमें जैनधर्मके व्यापक प्रचार-प्रसारके लिए उपयुक्त वातावरण बन चुका था। कुमारपालके राजत्वकालमें जैनधर्मको राज्य संरक्षण तो मिला ही साथ ही सम्पूर्ण गुजरातमें इसका व्यापक प्रसार भी हुआ। कुमारपालने जैनधर्म स्वीकारकर ऐसी अहिंसा नीतिका राज्यभरमें प्रवर्तन किया, जिसने देशके भावी इतिहासको प्रभावित किया और जिसकी स्पष्ट छाप आज भी भारतीय जीवन और संस्कृतिपर दृष्टिगोचर होती है।

आचार्य हेमचन्द्र और कुमारपाल

कुमारपालप्रतिबोधके लेखकका कथन है कि जैनधर्मके इतिहासमें महर्षि हेमचन्द्रका व्यक्तित्व महान है। जैनधर्मावलम्बियों तथा आचार्योंमें उनका बहुत उच्च स्थान है। हेमचन्द्रने जैनधर्मके उत्कर्षके लिए महान आचार्यका कार्य किया। वह अपने समयके महापंडित भी थे। इसी पांडित्यपर विमुग्ध होकर राजा जयसिंह सिद्धराज उनसे सभी शास्त्रीय प्रश्नोंपर परामर्श लेकर पूर्णतया सन्तुष्ट हो जाते थे। यह हेमचन्द्रकी शिक्षा तथा उपदेशका ही प्रभाव था कि सिद्धराज जैनधर्मके प्रति आकृष्ट हुए और उन्होंने एक जैनमन्दिरका निर्माण कराया। हेमचन्द्रके प्रति

---

[1] मुनिजिनविजय : राजर्षि कुमारपाल, पृ० ६।

[2] द्वयाश्रय काव्य : सर्ग १५, श्लोक ६९, ७५।

[3] वही, श्लोक १६।

राजाका ऐसा भाव हो गया था कि जब तक वह उनके अमृत समान उपदेशका श्रवण न कर लेते थ, उन्हें प्रसन्नताका अनुभव ही न होता था।[1] कहा जाता है कि मन्त्री वहडने कुमारपालसे कहा कि यदि वह सच्चे धर्मकी सम्प्राप्ति करना चाहता हो तो उसे श्रद्धायुक्त होकर आचार्य हेमचन्द्रके पास जाना चाहिये। अपने मन्त्रीके परामर्शानुसार कुमारपाल हेमचन्द्रसे उपदेश ग्रहण करने लगा।[2] पहले हेमचन्द्रने पशुहिंसा, द्यूत, मांसाहार, मद्यपान, वेश्यागमन तथा लूटपाटकी बुराइयोंको दिखानेवाली कथाओं द्वारा कुमारपालको उपदेश दिया। उसने कुमारपालसे राजाज्ञा निकालकर राज्यमें इनका निषेध करनेकी भी प्रेरणा की। तब उसने जैनधर्मके अनुसार सत्यदेव, सत्यगुरु और सत्यधर्मका उपदेश करते हुए असत्‌देव, असत्‌गुरु तथा असत्‌धर्मकी बुराइयोंको दिखाया।[3] इसप्रकार कुमारपाल शनैं शनैं जैनधर्मका भक्त हो गया और इसके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करनेके निमित्त उसन विभिन्न स्थानोंमें जैनमन्दिरोंका निर्माण कराया। पहले उसने पाटनमें मन्त्री वहड और वयड वंशके गर्गसेठके सर्वदेव तथा सावसेठ नामक दो पुत्रोंके निरीक्षणमें कुमारपाल विहार नामक भव्य मन्दिर बनवाया।[4] इस विहारके मुख्य मन्दिरमें उसने श्वेत संगमरमरकी विशाल

---

[1] यह यण चूडामणिणो भुवन पसिद्धस्य सिद्धरायस्स।
ससम पएसु सव्वेसु पुच्छणिज्जो इयो जाओ॥
जयसिंह देव-वयणा निम्मिय सिद्धहेम वागरण
नीसेस-सह-लक्खण निहाण मिमिणा मुणिंदेण।
—कुमारपालप्रतिबोध, पृ० २२।

[2] इय सम्म धम्म सरुप-साहगो साहियो अमच्चेण
तो हेमचन्द सूरिं कुमर-नरिंदो न मइ निच।—कुमारपालप्रतिबोध।

[3] वही, पृ० ४०, ११४।

[4] दाऊण य आएस "कुमर विहारो" करावियोएत्य
अट्ठावओ व्व रम्मो चउवीस-जिणालयो तुगो। वही, पृ० ११३।

पार्श्वनाथकी मूर्तिकी प्राणप्रतिष्ठा की और सायके अन्य चौबिस मन्दिरोंमें चौबिस तीर्थंकरोकी स्वर्ण, रजत तथा पीतलकी मूर्तियां प्रतिष्ठापित की। इसके पश्चात् कुमारपालने इससे भी विशाल एवं भव्य त्रिभुवन विहार नामक मन्दिरका निर्माण कराया। इसके साथके बहत्तर छोटे मन्दिरोंमें विभिन्न तीर्यंकरोकी मूर्तिया स्थापित की गयी। इस मन्दिरका शिखर भाग स्वर्ण मंडित था। केन्द्रीय मन्दिरमें तीर्थंकर नेमिनाथकी अत्यन्त भव्य मूर्ति प्रतिष्ठित थी। विभिन्न बहत्तर छोटे मन्दिरोमें अन्य तीर्यंकरोकी पीतल धातुकी बहत्तर मूर्तिया स्थापित थी। इनके अतिरिक्त केवल पाटनमें ही कुमारपालने चौबिस तीर्थंकरोंके चौबिस मन्दिर वनवाये। इनमें त्रिविहार मन्दिर प्रमुख था। पाटनके बाहर अपने राज्यके विभिन्न स्थानोंमें भी कुमारपालने इतनी अधिक सख्यामें जैनमन्दिरोंका निर्माण कराया, जिसकी ठीक-ठीक संख्या निश्चित करना भी कठिन हैं। इनमें तारगा पहाड़ीपर सुवेदार अभयके पुत्र जसदेवके निरीक्षणमें निर्मित अजितनाथका विशाल कलामण्डित मन्दिर विशेषरूपसे उल्लेखनीय है।[1]

शिलालेखोंकी साक्षी

कुमारपालने अपने आध्यात्मिक गुरु हेमचन्द्रसे विक्रम संवत् १२१६में सकल जन समक्ष जैनधर्मकी दीक्षा ली थी और कुमार विहारका निर्माण कराया था, इसका उल्लेख केवल विभिन्न जैनग्रन्थोंमें ही नहीं, शिलालेख तथा अभिलेखोंमें भी मिलता हैं। विक्रम संवत् १२४२के जालोर शिलालेखमें लिखा है कि "कुमार विहार"में पार्श्वनाथका मूलबिम्ब प्रतिष्ठित था। इसकी स्थापना परमअर्हत, गुर्जरधराधीश महाराजाधिराज चौलुक्य कुमारपालने जावालीपुर (आधुनिक जालोर)के कंचनगिरि किलेमें प्रभु हेमसूरिसे दीक्षा लेनेके उपरान्त की थी। सोलंकी राजा कुमारपालने

[1]कुमारपालप्रतिबोध : पृ० १४३, १७४।

इसका निर्माण कराया था और इसीलिए उसके नामपर इसका नामकरण "कुमार विहार" रखा गया।[1]

जैन समारोहोका आयोजन

कुमारपालने इन मन्दिरोका निर्माण कर जैनधर्मके प्रति अपने कर्त्तव्यकी इतिश्रीका अनुभव कर लिया हो, ऐसी बात नही। जैनधर्मके सच्चे अनुयायी और साधककी भाति वह जैनमन्दिरोमें जाकर मूर्तियोंके समक्ष आराधन भी करता था। धर्मकी महत्ताका प्रभाव जनतापर डालनेके लिए वह बडे समारोहपूर्वक अष्टान्हिका महोत्सवका आयोजन कराता था। प्रतिवर्ष चैत्र तथा आश्विन शुक्लपक्षके अन्तिम सप्ताहमें पाटनके प्रसिद्ध "कुमार विहार"म यह समारोह मनाया जाता था। उत्सवके अन्तिम दिन सन्ध्या समय हाथियो द्वारा चलनेवाले विशाल रथमें पार्श्वनाथकी सवारी नगरसे होती हुई राजप्रासाद जाती थी। इसमें राजाके उच्च अधिकारी तथा प्रमुख नागरिक भी सम्मिलित रहते थे। चारो ओर जनसमूह नृत्य और गायन करता रहता था और इस हर्षोल्लासपूर्ण वातावरणके मध्य राजा स्वय जाकर मूर्तिकी पूजा करता था। रात्रिमें रथ, राजप्रासादमें ही रहता था और प्रात राजप्रासादके द्वारपर निर्मित विशाल मैदानमें चला जाता था। यहा राजा भी उपस्थित रहता था। राजा द्वारा पूजन-अर्चनके पश्चात् रथ नगरके प्रमुख मार्गोसे होकर जाता था। मार्गमें बनाये गये मैदानोमें ठहरता हुआ यह रथ अपने मूलस्थानको

---

[1]....सवत १२२१ श्रीजावालिपुरीय कांचनगि(ग)रि गढ़स्योपरि प्रभु श्रीहेमसूरि प्रबोधित गुर्जरधराधीश्वर परमार्हत चौलुक्य महारा(ज)। धिराज श्री(कु)मारपाल देव कारिते श्रीपा(र्श्व)नाथ सत्कमू(ल) विब सहित श्रीकुवर विहाराभिधाने जैन चैत्ये (।) सद्विधि प्रव (र्त्त)नाय ... इपि० इडि० : खड ११, पृ० ५४, ५५।

लौट जाता था।[1] राजा स्वयं तो यह समारोह मनाता ही था साथ ही अपने अधीनस्थोंको भी इसका समारोहपूर्वक आयोजन करनेका आदेश देता था। अधीनस्थ राजाओंने भी अपने-अपने नगरोंमें विहारोंका निर्माण कराया।

इस समारोहका विस्तृत विवरण सोमप्रभाचार्यने ही केवल नहीं किया है अपितु अन्य ग्रन्थोंमें भी इसका उल्लेख आया है। नाटककार यशपालने रथके इस महोत्सवको, अपने नाटकमें—जिसका नायक कुमारपाल है, रथयात्रा महोत्सव कहा है। इसमें नागरिकोंको सूचना दी जाती है कि महाराज कुमारपालदेवने रथयात्रा महोत्सव मनानेकी आज्ञा की है, इसलिए समारोहकी समस्त तैयारी होनी चाहिये।[2] हेमचन्द्रके महावीरचरित्रमें भी इस रथयात्रा महोत्सवका विवरण मिलता है।[3]

---

[1]प्रेंखन्मडपफुल्ल सदध्वजपटं नृत्यद्वधूममंडलं
चन्चन्मन्चमुदंचदुंच्चकदलो स्तम्भं स्फुरत्तोरणम्।
विष्वग्जैनरथोत्सवे पुरमिदं व्यालोकितुं कौतुका-
ल्लोका नेत्र सहस्र निर्मितकृते चक्रुर्विधे प्रार्थनाम्।
—कुमारपालप्रतिबोध, पृ० १७५।

[2]भो भोः पौराः महाराज श्रीकुमारपालदेवो युष्मानाज्ञापयति। यज्जिन रथयात्रा महोत्सवोभविष्यति। ततः—
पौराः! कुर्यविपणिपदवीमस्त पांशु पयोभि
र्मुक्ता हारं रचिर वसनैर्हट्ट शोभां विदध्युः
स्थाने स्थाने फनक कलशान् स्थापयेयुर्भवन्तः
पंडस्त्रीभिः सुरगृहसखान् मचकान भूषयेयुः।—
मोहराजपराजय, चतुर्थ अंक, श्लोक १९।

[3]प्रतिग्रामं प्रतिपुरमासमुद्रं महोतले
रथयात्रोत्सवं सोऽर्हत्प्रतिमानां करिष्यति।—
महावीरचरित्रः सर्ग १२, श्लोक ७६।

कुमारपालकी सौराष्ट्र तीर्थ-यात्रा

एक समय जैनयात्रियोका एक दल सौराष्ट्र (काठियावाड)के मन्दिरोकी तीर्थयात्राके लिए जाता हुआ पाटनमे ठहरा। यह देख कुमारपालके मनमे भी ऐसी ही तीर्थयात्राकी इच्छा उत्पन्न हुई। एक बडी सेनाके साथ आचार्य हेमचन्द्र एव जैन समाजके सहित कुमारपालने सौराष्ट्रकी यात्रा की। इस तीर्थयात्राके प्रसगमे वह गिरनार (जूनागढ) ठहरा, किन्तु शारीरिक निर्बलताके कारण वह पर्वतके ऊपर न जा सका। इसलिए उसने अपने मन्त्रियोको पूजनके लिए भेजा। यहासे सारा दल शत्रुजय पहाडीपर स्थित ऋषभदेवके मन्दिरकी ओर अग्रसर हुआ। कुमारपालके आगमनके पूर्व राजाकी आज्ञासे मन्त्री वहड द्वारा इस मन्दिरकी आवश्यक मरम्मत हुई थी। इस तीर्थयात्राके पश्चात् कुमारपाल राजधानी वापस आया। जब वह लौटा तो उसे गिरनार पर्वतपर न चढ सकनेका अत्यन्त खेद रहा। उसने इस आशयका आदेश जारी किया कि उक्त पहाड़ीपर सीढिया बनायी जाय। कवि सिद्धपालके सुझावपर उसने अमरको सौराष्ट्रका सूबेदार नियुक्त कर यह कार्य सौपा। प्रबन्धचिन्तामणि[2] तथा पुरातन प्रबन्धसग्रह[1]में भी कुमारपालकी इस तीर्थयात्राका विस्तृत विवरण मिलता है।

कुमारपालकी जैनधर्ममें दीक्षा

आचार्य हेमचन्द्रने कुमारपालके समक्ष जैनधर्मकी द्वादश प्रतिज्ञाएं रखते हुए प्राचीनकालके महान जैनसन्तो, आनन्द तथा कामदेवके साथ ही तत्कालीन पाटनके सबसे धनी जैनचड्डुआका उदाहरण दिया। राजाने

---

[1] "चलियो कुमारवालो सत्तुंजय तित्य नमणत्य
कुमारपालप्रतिबोध, पृ० १७९।

[2] प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश, पृ० ९३।

अगाध श्रद्धाके साथ सभी प्रतिज्ञाए की और इसप्रकार पूर्णतया जैनधर्मम दीक्षित हो गया। राजा सवदा असीम भक्तिके सहित प्रसिद्ध जैन नमस्कार मन्त्रका पाठ करता था और कहा करता था कि जो वस्तु वह अपनी शक्तिशाली सेनासे नही प्राप्त कर सकता था, वह केवल इस मन्त्रके उच्चारणसे सुलभ हो जाती थी। इस मन्त्रकी शक्तिम उसकी इतनी अगाध श्रद्धा थी कि इससे उसके शत्रुओका दमन होता था। गृहयुद्ध तथा विदेशी आक्रमणका सकट दूर होता और उसके राज्यम कभी अकाल नही पडता था।[1]

जयसिंह रचित कुमारपालचरितके पाचसे लेकर दस सर्गोंमें उन परिस्थितियोका वणन किया गया है, जिनके कारण वह जैनधममें दीक्षित और जैनधर्मके प्रसार प्रचारमें प्रवृत्त हुआ। इसम कहा गया है कि आचार्य हेमचन्द्रके कथनपर उसन सर्वप्रथम मास तथा मदिराका त्याग किया।[2] इसके पश्चात् हेमचन्द्रके आदेशानुसार राजा कुमारपाल उसके साथ सोमनाथ गया। हेमचद्रन शिवका आह्वान किया और शिवन प्रकट होकर जैनधमकी प्रशसा की। फलस्वरूप कुमारपालन अभक्ष नियमको स्वीकार किया तथा जैनधमके गूढ सिद्धान्तोपर अपना ध्यान केन्द्रित किया। दीक्षा धारण करते समय उसन मुख्यरूपसे निम्नलिखित प्रतिज्ञाए की थी—राजरक्षा निमित्त युद्धके अतिरिक्त यावत् जीवन किसी प्राणीकी हिंसा और आखट न करना। मद्यमासका सेवन त्याज्य समझना। नित्य जिनप्रतिमाका पूजन-अचन करना। अष्टमी और चतुदशीके सामयिक और पौषध आदि विशष व्रतोका पालन करना तथा रात्रिको भोजन न करना आदि-आदि।

जयसिंहन आगामी अध्यायमें हेमचद्र तथा कुमारपालके मध्य एक

---

[1] पुरातनप्रबन्धसग्रह, पृ० ४२, ४३।

[2] कुमारपालप्रतिबोध, पृ० ३१६-४१५।

धार्मिक वादविवाद कराया है। सातवें सर्गमें हमें विदित होता है कि उसने हेमचन्द्रसे श्रद्धाधर्म स्वीकार कर राज्यमें पशुहत्यापर प्रतिबन्ध लगाया था।[1] इस ग्रन्थके रचयिताका कथन है कि यह आज्ञा सौराष्ट्र, लाट, मालवा, ओभीवमेदापाट, मारी तथा सपादलक्षदेशमें लागू हो गयी थी।[2] इस आज्ञाका इतनी कठोरतासे पालन होता था कि सपादलक्षके एक व्यापारीने राक्षसके समान रक्त चूसनेवाले एक कीड़ेकी हत्या कर दी तो उसे चोरकी भांति पकड़ लिया गया और उसे यूक विहारके शिलान्यासके लिए समस्त सम्पत्ति त्याग देनेके लिए बाध्य होना पड़ा।[3]

किराडू शिलालेखमें जो कुमारपालके समयका है, यह लिखा है कि शिवरात्रि चतुर्दशी तथा कतिपय अन्य निश्चित दिनोंमें कुमारपालने राजाज्ञा निकालकर पशुवधका निषेध कर दिया था। राजपरिवारका सदस्य आर्थिक दंड देकर तथा साधारण व्यक्ति प्राणदंडके लिए प्रस्तुत होकर ही उपर्युक्त दिन किसी पशुकी हत्या कर सकता था।[4] इसी आशयका आदेश रत्नापुरी नगरके एक शिलालेखमें भी प्राप्त हुआ है।[5] इस शिलालेखमें गिरिजादेवीकी उस निषेधाज्ञाका उल्लेख है, जिसमें विशेष तिथियोंको पशुवधपर प्रतिबन्ध लगा था। इस आज्ञाका उल्लंघन करनेवालोंके लिए अर्थदंडकी व्यवस्था थी। नवरात्रमें बकरियोंका वध रोक दिया गया था और कुमारपालने अपने मन्त्रियोंको पशुहिंसा रोकनेके लिए काशी भेजा। जयसिंह कृत कुमारपालचरितके आठवें और नवें सर्गमें विभिन्न जैन तीर्थोंकी यात्रा तथा चैत्यों और मन्दिरोंके निर्माणका वर्णन है। दसवें

---

[1] जयसिंह : कुमारपालचरित, ७वां अध्याय, ५७७।

[2] वही, ५८१-८२।

[3] वही, ५८८।

[4] इपि० इंडि० : खंड ११, पृ० ४४।

[5] बी० पी० एस० आई०, २०५-७, सूची संख्या १५२३।

सर्गमें राजा कुमारपाल अपने गुरुको "कलिकाल सर्वज्ञ"की उपाधि प्रदान करता है।[1]

यशपालके तत्कालीन नाटक मोहराजपराजयमें भी कुमारपालके जैनधर्ममें दीक्षित होनेकी चर्चा आयी है। इस नाटकमें कुमारपालने चार व्यसनोंपर जो प्रतिबन्ध लगाया था, उसपर विशेष प्रकाश डाला गया है। राज्य द्वारा नि.सन्तान मरनेवालोंकी सम्पत्तिपर अधिकार करनेका जो प्राचीन और परम्परागत नियम चला आ रहा था उसका कुमारपालने निषेध कर दिया था, इसका भी इस नाटकमें उल्लेख हुआ है।[2] नाटकमें राजा अपने दडपाशिकको द्यूत, मासाहार, मदिरापान, हत्या-लूट तथा खाद्यपदार्थोंमें मिलावटकी अवैध पद्धतिके दमन और विनाशका आदेश देता है।[3] यह आश्चर्यकी बात है कि वेश्या व्यसन तत्कालीन गुजरातमें गम्भीर पाप न समझा जाता था।[4]

जैनधर्म दीक्षाकी समीक्षा

समस्त जैन ग्रन्थकार कुमारपालके जैनधर्म की दीक्षा लेने के विवरण-पर एकमत हैं। शिलालेखादिके उल्लेखोंके आधारपर यह स्वीकार करना होगा कि उक्त वर्णन, सत्य और ऐतिहासिक घटनाके ही बोधक हैं। किराडू[5] तथा रत्नपुरा[6] शिलालेख विशेष तिथियोंपर पशुवधका प्रतिषेध

---

[1]कुमारपालचरित : सर्ग १०, १०६। उसने परमार्हतकी उपाधि भी प्रदान की थी।

[2]मोहराजपराजयः अंक ४ तथा ५।

[3]वही, अंक ४।

[4]वही।

[5]इपि० इंडि० : खंड ११, पृ० ४४।

[6]बो० पी० एस० आई० : २०५-७।

करते हैं तो जालोर शिलालेखमें कुमारपालको परमार्हत कहा गया है। इतना होते हुए भी इस तथ्यके प्रमाण मिलते हैं कि कुमारपालने अपने परम्परागत शैवधर्मका कभी तिरस्कार नहीं किया न उसके प्रति अपने आदर श्रद्धाकी भावनाका ही परित्याग किया। जैन ग्रन्थकारोंने भी लिखा है कि कुमारपाल सोमेश्वरकी आराधना करता था और उसने सोमनाथका मन्दिर निर्मित कराया था।[२]

वेरावल शिलालेखमें कुमारपालको "महेश्वर नृप" कहा गया है यह शिलालेख सन् ११६९का है और इसीके कुछ वर्ष बाद ही सन् ११७४में उसकी मृत्यु हो गयी। उसके अधिकाश शिलालेखोंमें शिवकी प्रार्थना अकित है, तो अनेकमे जैनदेवताओंकी प्रार्थना भी मिलती है। विक्रम सवत् १२४२के जालोर शिलालेखमें उसे 'परमअर्हत' कहा गया है। चित्तौरगढ उत्कीर्ण लेखके प्रारम्भमें ही 'ओम नम. सर्वज्ञ' तथा साथ ही शिवकी प्रार्थना मिलती है।[३] जैन इतिहासोंमें हेमचन्द्रके प्रभावके प्रति ब्राह्मणोंके द्वेषकी भी चर्चा आयी है। इस सघर्षमें ब्राह्मण सदा पीछे पड जाते थे और राजाके कोपभाजन ब्राह्मणोंकी रक्षा दयालु हेमचन्द्र द्वारा ही होती थी। किन्तु जैनोंके साथ राजाके पक्षपातकी बात सन्देहास्पद है। वह समानभावसे शैवो और जैनोका आदर करता था। कुमारपाल जैन सिद्धान्तोको हार्दिकतासे स्वीकार करता था और उसके अनुसार

---

[१]इपि० इडि० : खंड ११, पृ० ५४-५५। 'हेमसूरिप्रबोधित गुर्जर धराधीश्वर परमार्हत चौलुक्य महाराजाधिराज श्रीकुमारपालदेवा"।

[२]द्वयाश्रयकाव्यमें अनहिलवाडामें कुमारपालेश्वर महादेवके मन्दिरके निर्माणका उल्लेख है। केदारेश्वर मन्दिरका पुनर्निर्माण भी कराया गया था। वही। मन्दिरोंकी मरम्मतके सम्बन्धमें देखिये वसन्तविलास ३:२६।

[३]इपि० इडि० : ४१२, सूची.सख्या २७९।

मन्दिर बनवानेका उल्लेख है किन्तु इनमें सूर्यका मन्दिर नहीं है। अप्रकाशित सरस्वतीपुराणमें सूर्य मन्दिरका उल्लेख है, जो भायाल स्वामीके नामसे प्रसिद्ध था। कहते हैं कि सहस्रलिंग तालाबपर जब यह स्थित था तो जयसिंह सिद्धराज इसकी आराधना करते थे।[1] प्रसिद्ध जैनमन्त्री वस्तुपालने सूर्य, रत्नादेवी तथा राजादेवीकी मूर्तियोंका प्रतिष्ठापन किया था।[2] कुमारपालकालीन प्रभास पाटन शिलालेखमें काठियावाड़में पाशुपत सम्प्रदायके भी प्रचलित होनेका उल्लेख मिलता है।[3] शिलालेखका विश्लेषण तथा उसका अभिप्राय-अर्थ स्पष्ट करनेपर यह विदित होता है, कि गंड बृहस्पतिने पाशुपत सम्प्रदायके प्रचारके लिए प्रयत्न किया था। उसकी दूसरी व्याख्या करनेपर यह भी अर्थ किया जा सकता है कि सोमनाथका मन्दिर गंड बृहस्पतिके आगमनके पूर्व पाशुपत मतका केन्द्र था। किन्तु इस मन्दिर तथा यहां प्रचलित पाशुपत मत दोनोंका ही पतन हो चुका था, इसलिए गंड बृहस्पति उसकी रक्षा करने आया।[4] भाव बृहस्पतिकी वेरावल प्रशस्तिमें भवानीपति (शिव) गणेश तथा सोमकी प्रार्थना है। गणेश्वर शिलालेखमें वस्तुपाल द्वारा गणेश्वर मन्दिरमें एक मार्ग बनानेका उल्लेख मिलता है।[5] यद्यपि उक्त स्थानका पता नहीं चला है फिर भी इसमें जो तथ्य व्यक्त किया गया है उसके अनुसार १२वीं

---

[1] दवे : महाराजाधिराज, पृ० २९१।

[2] गनेश्वर शिलालेख, डब्लू० एम० आर०, राजकोट १९, २३, २४, २८।

[3] बी० पी० एस० आई०, पृ० १८६।

[4] शिलालेखमें अंकित है कि "गंड पाशुपत केन्द्रकी रक्षा करना चाहता था और उनसे कुमारपालसे ध्वस्त सोमनाथके मन्दिरके निर्माणके लिए प्रार्थना की थी।

[5] द्व्याश्रय : सर्ग १५, श्लोक ९१९।

रातीम काठियावाड़म गणदा-पूजन भी प्रचलित था। मध्यकालीन गुजरातमें वैष्णव सम्प्रदायका भी अस्तित्व था। हेमचन्द्रने लिखा है कि जयसिंहने सहस्रलिंग तालाबके तटपर एक ऐसा मन्दिर बनवाया जिसमें दशावतारकी झाकी थी।[1] जयसिंह तथा कुमारपालके समयके दोहाद शिलालेखमें यह अंकित कि जयसिंहने गोगनारायणका मन्दिर निर्माण करानेके लिए दधिपद्रमें एक मन्त्री नियुक्त किया था।[2] इसी मन्दिरमें कुमारपालके समय और भी दान दिये जानेके उल्लेख मिलते हैं।

विभिन्न मन्दिरों तथा देवालयोंकी व्यवस्था दान दिये हुए ग्रामोंसे होती थी। व्यक्तिगत मन्दिरोंका आर्थिक संचालन जनतापर लगे विशेष 'कर'से होता था और कभी-कभी राजकीय चुंगीगृहको भी अपनी आयका एक हिस्सा मन्दिरोंकी व्यवस्थाके लिए देना पड़ता था। मंगरोल उत्कीर्ण लेखमें उन करोंका विवरण दिया गया है जो चुंगी, द्यूतगृह आदि विभिन्न पदोंसे वसूल किया जाता था। दूकानदारों तथा व्यापारियों द्वारा दिये जानेवाली ऐच्छिक रकमकी भी इसमें चर्चा है। बटुकों और पुजारियोंके वेतन तथा मन्दिरकी व्यवस्था सम्बन्धी अन्य बातोंका भी इसमें उल्लेख है।

धार्मिक सहिष्णुताकी भावना

सभी धर्मके मूलतत्त्व एक हैं और सभी विभिन्न मार्गोंसे होते हुए एक ही लक्ष्य-स्थानपर पहुंचते हैं। फिर भी धर्मके क्षेत्रमें लोगोंमें सहिष्णुताके साथ संकीर्णता भी पायी जाती रही है। फोर्बसने लिखा है कि इस समय दो प्रमुख धर्मों—जैन तथा ब्राह्मणमें परस्पर विरोध था।[3] किन्तु तत्कालीन शिलालेख और प्रभूत जैन साहित्यसे इस तथ्यकी पुष्टि नहीं

---

[1] इंडि० ऍंटी० खंड १०, पृ० १५९ ६०।
[2] बी० पी० एस० आई० पृ० १५८।
[3] रासमाला अध्याय १३, पृ० ९३५।

होती। फोर्बस्की 'रासमाला'में ब्राह्मण और जैन आचार्योंमें संघर्ष और कटुभावनाको व्यक्त करनेवाली अनेक कहानियोंका उल्लेख मिलता है जिनमेंसे प्रमुख निम्नलिखित हैं—ब्राह्मण परम्पराके अनुसार कुमारपालने मेवाडके सिसौदिया वंशकी राजकुमारीसे विवाह किया था। जब रानीने राजाकी वह प्रतिज्ञा सुनी कि राजमहलमें प्रवेशके पूर्व उसे हेमचन्द्रके मठमें जाना होगा, तो उसने अनहिलवाडा जाना अस्वीकार किया। कुमारपालके चारण जयदेवने रानीको विश्वास दिलाया और इसपर रानी अनहिलवाडा गयी। उसके आनेके कई दिन बाद हेमाचार्यने सिसौदिया रानीके अपने मठमें न आनेकी बात कही। कुमारपालने रानीसे वहा जानेके लिए कहा तो उसने अस्वीकार कर दिया। इसी बीच रानी बीमार पडी और चारणोंकी स्त्रिया उसे अपने घर ले आयी। चारण उसे घर पहुचाने ले जाने लगा। जब कुमारपालने यह सुना तो उसने दो हजार घुडसवारोंके साथ पीछा किया। रानीने जब यह सुना तो उसका साहस जाता रहा और उसने आत्महत्या कर ली।[1] पहले ही कहा जा चुका है कि उक्त ब्राह्मणो और चारणोकी परम्परा, तत्कालीन ऐतिहासिक तथ्योंकी कसौटीपर खरी नही उतरती और न इस धार्मिक द्वेषकी भावनाका इतिहास-सम्मत सामान्य आधार ही मिलता है।

ब्राह्मणो और जैनोंमें पारस्परिक संघर्षका परिचय करानेवाली एक दूसरी कहानी भी है। एक दिन कुमारपाल जब मार्गसे जा रहा था तो उसने हेमाचार्यके एक शिष्यसे पूछा कि आज मासकी कौन तिथि है। वास्तवमें उस दिन अमावस्या थी, किन्तु जैन साधुने भ्रमवश पूर्णिमा कह दिया। कुछ ब्राह्मणोंने जब यह सुना तो जैनसाधुकी हँसी उडाते हुए कहा "ये सिर घुटाये हुए साधु क्या जाने कि आज अमावस्या है।" कुमारपालने यह सब सुन लिया था। राजप्रासाद पहुचते ही उसने हेमाचार्य

[1]वही, अध्याय ११, पृ० १९२-१९३।

तथा ब्राह्मणोंके प्रधानको बुला भेजा। इसी बीच हेमचन्द्रका शिष्य अत्यन्त दुखी और लज्जित हो मठमें पहुचा। हेमचन्द्रने उससे सारा विवरण पूछा और दु खित न होनेकी बात कही। तब तक कुमारपालका सन्देश-वाहक वहा पहुच चुका था। सवाद पाकर हेमाचार्यने राजभवनकी ओर प्रस्थान किया। कुमारपालने उनसे पूछा कि आज कौनसी तिथि है? ब्राह्मण आचार्यने कहा कि आज अमावस्या है किन्तु हेमचन्द्रने कहा कि आज पौर्णिमा है। ब्राह्मणोंने कहा कि सन्ध्याका चन्द्रमा ही वास्तविक स्थिति बता देगा। यदि पूर्णिमाका चन्द्र निकला तो सभी ब्राह्मण इस राज्यसे निकल जायगे। यदि चन्द्रमा न निकले तो जैनसाधुओंका निष्कासन हो। हेमाचार्यने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और मठ वापस पहुचे। उनकी एक सिद्धदेवी थी, उन्हींकी सहायतासे पूर्व दिशामे ऐसी कृत्रिमता उत्पन्न की गयी, जिससे सभीको विश्वास हो गया कि आज पूर्णिमा है। इसके पश्चात् घोषित किया गया कि ब्राह्मण हार गये और सभीको राज्य छोडकर चले जाना चाहिये। दूसरे दिन प्रात कुमारपालने ब्राह्मणोंको बुला राज्य छोडकर चले जानेकी आज्ञा दी।

इसी समय शकर स्वामीका पाटनमें आगमन होता है। शकर स्वामीने आगे बढकर कहा राज्यसे किसीको निष्कासित करनेकी क्या आवश्यकता है। "नौ बजे समुद्र अपनी मर्यादा सीमा तोडकर सम्पूर्ण देशको उदरस्थ कर लेगा।" राजाने हेमचन्द्रको बुला भेजा और पूछा कि क्या यह सत्य है? हेमचन्द्रने जैन सिद्धान्तोंके अनुसार कहा कि यह ससार न कभी निर्मित हुआ और न कभी नष्ट होगा। शकर स्वामीने एक जलघडी मगवायी और कहा देखना चाहिये क्या होता है। तीनों वही बैठ गये। जब नौ बजा तो वे प्रासादके ऊपरी भवनमे पहुचे जहासे उन्होंने देखा कि समुद्रकी लहरे उमडती हुई चली आ रही है। लहर बढती गयी और सारा नगर जलमग्न हो गया। राजा तथा दोनो आचार्य ऊपरी मजिलोंमें चढते रहे किन्तु जलका वेग ऊपरकी ओर निरन्तर बढता ही

गया। अन्तमें वे सातवी और अन्तिम मजिलपर पहुचे। सबसे ऊचे वृक्ष तथा मन्दिरके शिखर जलम समाधिस्थ थे। उमडती हुई समुद्रकी भयकर लहरोके अतिरिक्त कुछ भी नही दिखायी पडता था। कुमारपालने भयभीत होकर शकर स्वामीसे बचनका उपाय पूछा। शकर स्वामीने कहा कि पश्चिम दिशासे एक नाव आवेगी जो इस वातायनके निकटसे ही जायगी। जैसे ही यह हमारे निकट आवे हम उछलकर उसपर बैठ जाय। तीनोने अपने वस्त्र सभाले और नावमें तत्परतासे बैठ जानेका उपक्रम किया। तत्काल बाद ही एक नौका दिखायी दी। शकर स्वामीने राजाका हाथ पकडकर कहा कि हम दोनो नावमें बैठनेमें एक दूसरेकी सहायता करेंगे। इतनेमें नौका वातायनके निकट आयी और राजाने उसमें कूदनेका प्रयत्न किया किन्तु शकर स्वामीने उन्हे पीछे खीच लिया। हेमचन्द्र खिडकीसे कूद गये थे। समुद्र और नौका वस्तुत और कुछ नहीं मायाकी रचना थी। इसके पश्चात् जैन साधुओपर उत्पीडन होने लगा और कुमारपाल शकरस्वामीका शिष्य हो गया।

धार्मिक सघर्षकी इन कथाओम उस समय वर्ग विशेषकी धार्मिक सकीर्णताकी स्थितिका परिचय मिलता है। जैनधर्मका अभ्युदय और उत्कर्ष न देख सकनेवाले सकीर्ण लोगोकी कल्पना ही इन कथाओका आधार है। न तो इस प्रकारकी घटनाओका तत्कालीन साहित्यम उल्लेख मिलता है और न कोई प्रामाणिक एव मान्य आधार। इन्हे ऐतिहासिक तथ्य न मान्यकर कपोल कल्पनाकी ही कोटिमें रखना उचित होगा।

नवीन युगका समारम्भ

ब्राह्मण और जैनधर्मकी पारस्परिक सद्भावनापूर्ण स्थिति इस युगकी ऐतिहासिक विशेषता थी। यदि सामाजिक अभ्युत्थानका विचार किया जाय तो विदित होगा कि जैन धर्मके अभ्युदयके साथ देशमें एक नवीन जागरण और सस्कृतिके युगका समारम्भ हुआ था। कुमारपालप्रतिबोध

तथा मोहराजपराजयके रचयिताओंने समाजमें प्रचलित उन बुराइयोका उल्लेख किया है जिनसे सामाजिक स्तर निम्नतर होता जा रहा था। पशु हिंसा, द्युत क्रीडा, मास, मदिरा सेवन, वेश्याव्यसन, शापण आदिसे जनताका धन धर्म विलुप्त और मानसिक पतन होता जा रहा था। यह पहले ही देखा जा चुका है कि कुमारपालने किस प्रकार विशेष तिथियोको पशुवधका प्रतिषेध कर दिया था। यह तथ्य विभिन्न जैन ग्रन्थोमें ही वर्णित नही किराडू[1] तथा रत्नापुर[2] शिलालेखोम भी उत्कीर्ण है। यशपालन अपने नाटक मोहराजपराजयम कुमारपालको अपने दडपाशिकको यह आदश देते हुए चित्रित किया है कि जूआ, मासाहार, मदिरापान तथा पशुहत्याके पापका दमन किया जाय। चोरी और खाद्यपदार्थोमें मिलावटको नगरस निष्कासित कर दिया गया था। दडपाशिक इनकी खोजम जाता है और सबको पकडकर लाता है। सभी राजाके समक्ष उपस्थित किय जाते है। ये अपने पक्ष समर्थनका तक देते हुए क्षमाकी याचना करते हैं। वे यह भी कहते हैं कि उन्हीके द्वारा राज्यको बहुत भारी आय होती है। किन्तु राजा उनकी एक भी नही सुनता और सभीके निष्कासनकी आज्ञा देता है।[3]

इस समयकी एक क्रूर राजनीतिक परम्परा और प्रथा यह थी कि यदि कोई राज्यमें निस्सन्तान मर जाता तो उसकी समस्त सम्पत्ति राज्य अपने अधिकारमें कर लेता था। एसे व्यक्तिकी मृत्यु होते ही, राज्याधिकारी उसके घर तथा उसकी सारी सम्पत्तिपर जब अधिकार कर लेते और जब पचकुलकी नियुक्ति हो जाती, तभी शव अन्तिम सस्कारके लिए सम्बन्धियोको दिया जाता था। इससे जनताका घोर कष्ट और व्यथा होती थी। जैनधर्मकी शिक्षाका राजापर सबसे बडा जो प्रभाव दृष्टिगत

---

[1]इपि० इडि० . खड ११, पृ० ४४।

[2]बी० पी० एस० आई० २०५-७, सूची सख्या १५२३।

[3]मोहराजपराजय चतुर्थ अक, पृ० ८३-११०।

हुआ, वह यह कि उसने निस्सन्तान मरनेवालोकी सम्पत्तिपर अधिकार करनेका राजनियम (मृतधनापहरण) वापस ले लिया।[1] निर्वंशकी सम्पत्तिपर राज्याधिकारके प्रजापीडक नियमकी कुमारपालपर कैसी घोर प्रतिक्रिया हुई और उसका कैसा प्रभाव पडा था, इस सम्बन्धमें द्वयाश्रय और मोहराजपराजयमे विशद विवरण मिलते है। हेमचन्द्राचार्यने द्वयाश्रयमें ऐसे एक प्रकरणका उल्लेख करते हुए लिखा है कि एक दिन जब रात्रिके समय कुमारपाल प्रगाढ निद्रामें सो रहा था तो निस्तब्धतामें उसे एक स्त्रीका रुदन सुनाई पडा। वेश वदलकर जब वह राजमहलसे उक्त स्थानपर पहुचा तो उसने देखा कि वृक्षके नीचे एक स्त्री गलेमें फन्दा लगाकर आत्महत्याकी तैयारी कर रही है। राजाने उससे इसका कारण पूछा। तब उस स्त्रीने अपने पति और पुत्रकी मृत्युका घटना प्रकरण बताते हुए कहा कि अब मेरी समस्त सम्पत्तिपर राजाका अधिकार हो जायगा और मेरा कोई आधार न रह जायगा। इससे अच्छा है कि मैं आत्मघात कर लू। इसपर राजाने उसे ऐसा करनेसे मना किया और आश्वासन दिया कि उसकी सम्पत्तिपर राज्याधिकारी अधिकार न करेंगे। प्रात.काल राजाने मन्त्रियोको बुलाकर 'मृतधनापहरण'को समाप्त करते हुए उसके निषेधकी आज्ञा निकाली। कहते है कि इसप्रकार प्रतिवर्ष राजकोषमें एक करोड रुपये आते थे, किन्तु कुमारपालने इसकी तनिक परवाह न की और उक्त प्रथाका निषेध कर दिया। इसी प्रकारकी एक दूसरी घटना-का वर्णन यशपालके नाटक मोहराजपराजयमें मिलता है। कुबेर नामक करोड़पति नगरसेठकी मृत्यु हो जाती है। वह नि.सन्तान था पर उसकी माता जीवित थी। वह शोकमें विह्वल थी। पुत्रशोक और धनशोकके कारण उसके दु खका पारावार न था। राजाको इसकी सूचना मिलती है। वह बहुत उद्विग्न होता है। राज्यकी क्रूर नीतिका वीभत्स तथा

[1] मोहराजपराजय : अंक ३, पृ० ६०-७० ।

शोकसतप्त परिवारका करुण दृश्य उसके सम्मुख उपस्थित होता है। वह कुबेरकी माताके यहा जाता है। कुबेरके वैभवको देखकर आश्चर्य-चकित होता है। कुबेरके मित्रसे वह सारा विवरण पूछता है। कुमारपाल, कुबेरकी माताको सान्त्वना देता है और कहता है कि मैं भी तुम्हारा ही पुत्र हू। उधर राज्यके अधिकारी कुबेरकी समस्त सम्पत्तिको एकत्रकर ढेर लगा देते है। कुमारपाल नगरसेठो और महाजनोंके सम्मुख घोषणा करता है कि आजसे निस्सन्तान मृतकोके धनको राज्यकोषमें लेनेके नियमका मैं निषेध करता हू। राजा अपने राजप्रासादमें लौटता है और मन्त्रियोसे परामर्शकर निषेधाज्ञा घोषित कराता है—

> नि:शूकै: शकित न यन्नृपतिभिस्त्यक्तु क्वचित् प्राक्तनै.
> पत्न्या. क्षार इव क्षते पतिमृतौ यस्यापहारः किल।
> आपायोधिकुमारपालनृपतिर्देवो रुदत्या धन
> विभ्राणः सदय प्रजासु हृदय मुंचत्यय तत् स्वयम्॥

कुमारपालके इस महान सामाजिक और राजनीतिक सुधारकी प्रशसा करते हुए जैन आचार्य हेमचन्द्र कहते है —

> न यन्मुक्तं पूर्वै रघु-नहुष-नाभाक-भरत
> प्रभृत्युर्वीनाथैः कृतयुगकृतोत्पत्तिभिरपि।
> विमुञ्चन सन्तोषात् तदपि रुदतीवित्तमधुना
> कुमारक्ष्मापाल! त्वमसि महता मस्तकमणि:॥

निस्सन्तान मृतजनकी सम्पत्तिको राज्यकोषमें न लेनेकी घोषणा ऐतिहासिक और युगप्रवर्तक थी। सत्ययुगके महान राजा रघु, नहुष, नाभाक और भरत आदि परमधार्मिक नरेशोने भी जैसी कीर्तिका अर्जन न किया था वैसी धवलकीर्ति कुमारपालने अपने इस कार्यसे अर्जित की। एक प्रसिद्ध इतिहासकारने लिखा है कि "बारहवी शतीमें गुजरातके राजा कुमारपालने बडी तत्परतासे पशुओंके वधका निषेध किया और इस नियमका उल्लघन करनेवालोपर कठोर दडकी व्यवस्था की। एक अभागे व्यापारीको एक विषैले कीडेकी हत्याके' अपराधमें अनहिल्वाडाके विशेष

न्यायालयमें उपस्थित किया गया और उसकी सारी सम्पत्ति जब्त कर ली गयी। उक्त सम्पत्तिसे एक मन्दिरका निर्माण कराया गया। कुमारपाल द्वारा निर्मित इस विशेष न्यायालयकी कार्यसीमा और निर्णय, अशोकके धर्ममहामात्रोंके कार्यों एव निर्णयोकी भाति थी।[1]

जैनधर्मकी शिक्षासे प्रभावित होकर कुमारपालने एक सत्रागारकी स्थापना की जहा अपग जैनसाधकोंको भोजन वस्त्र दिया जाता था। इसीके निकट एक मठ (पोपधशाला)का भी निर्माण किया गया जहा धार्मिक प्रवृत्तिके लोग एकान्त साधना कर सकते थे। इन दातव्य सस्थाओंकी व्यवस्थाका भार सेठ अभयकुमारको सौंपा गया था।[2] इस-प्रकार धर्मके प्रभावसे राज्यनीति और समाजके स्तर दोनोंमें परिवर्तन हुए थे। निर्धन और असहायकी सहायताके लिए मानवीय हितके कार्य प्रारम्भ किये गये। इन धार्मिक तथा सामाजिक नव व्यवस्थाओंके नियोजनने भारतीय इतिहास और समाजको अत्यधिक प्रभावान्वित किया था, और उसका प्रभाव आज भी देखा जा सकता है। कुमारपालकी इस अहिंसा प्रवर्तक रीतिका यह फल है कि वर्तमानकालमें भी सबसे अधिक अहिंसक प्रजा, गुजराती प्रजा है और सबसे अधिक परिमाणमें अहिंसा धर्मका पालन गुजरातमें होता है। गुजरातमें हिंसक यज्ञ-याग प्रायः उसी समयसे बन्द हो गये है और देवी-देवताओंके निमित्त होनेवाला पशुवध भी दूसरे प्रान्तोकी तुलनामें बहुत कम है। गुजरातका प्रधान किसान वर्ग भी मासत्यागी है। भले ही अतिशयोक्ति हो और उसका उपहास भी हो, किन्तु यह तथ्य है कि इसी पुण्यमय परम्पराके प्रतापसे जगतकी सबसे श्रेष्ठ अहिंसामूर्ति महात्माको जन्म देनेका अद्वितीय गौरव भी गुजरातको प्राप्त हुआ है।[3]

---

[1] विसेंट स्मिथ : भारतका इतिहास, पृ० १६१-२। [2] कुमारपाल प्रतिबोध। [3] मुनिजिनविजय : राजर्षि कुमारपाल, पृ० १८।

साहित्य और कला

चौलुक्य शासनकालमें उत्तरी गुजरातमें एक नवीन साहित्यिक चेतना और जागतिके दर्शन होते हैं। इसका प्रादुर्भाव आकस्मिक और अचानकसा प्रतीत होता है, किन्तु बात ऐसी न थी। जयसिंह सिद्धराज तथा कुमारपालके संरक्षणमें वस्तुतः यह जैन साधकों और आचार्योंके एकान्त मनन और साधनका सुपरिणाम था। इसका प्रभाव अन्य लोगोंपर भी पड़ा और फलस्वरूप संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा प्राचीन गुजराती भाषामें धार्मिक तथा साहित्यिक रचनाओंकी एक नई लहर और बाढसी आ गयी। इस कालमें प्रणीत प्रचुर साहित्य अब भी जैन भंडारोंमें भरे पड़े है। अनेक वर्ष पूर्व पाटनके भंडारोमे रखे ताडपत्रकी पाण्डुलिपियोकी संक्षिप्त सूची प्रकाशित हुई है।[1] इधर उसकालकी अनेक कृतियोंका प्रकाशन हो रहा है, यह शुभ लक्षण है। इनका सिंहावलोकन करनेसे चौलुक्यकालीन साहित्यके विभिन्न अंगोपर प्रकाश पड़ता है। इनमें व्याकरण, नाटक, काव्य, दर्शन, वेदान्त, इतिहास आदिकी प्रभूत रचनायें मिलती हैं। विंटरनित्सको उस समय तक जितनी रचनाएं प्राप्त हुई थी, उनका विभाजन उसने प्रबन्धकथा, काव्य, कोश तथा उपदेशात्मक

चौलुक्य शासनकालमें उत्तरी गुजरातमे एक नवीन साहित्यिक चेतना और जागतिके दर्शन होते हैं। इसका प्रादुर्भाव आकस्मिक और अचानकसा प्रतीत होता है, किन्तु बात ऐसी न थी। जयसिंह सिद्धराज तथा कुमारपालके सरक्षणमें वस्तुतः यह जैन साधकों और आचार्योंके एकान्त मनन और साधनका सुपरिणाम था। इसका प्रभाव अन्य लोगोंपर भी पड़ा और फलस्वरूप संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा प्राचीन गुजराती भाषामें धार्मिक तथा साहित्यिक रचनाओंकी एक नई लहर और बाढ़सी आ गयी। इस कालमें प्रणीत प्रचुर साहित्य अब भी जैन भंडारोंमें भरे पड़े हैं। अनेक वर्ष पूर्व पाटनके भंडारोंमें रखे ताडपत्रकी पांडुलिपियोंकी संक्षिप्त सूची प्रकाशित हुई है।[1] इधर उसकालकी अनेक कृतियोंका प्रकाशन हो रहा है, यह शुभ लक्षण है। इनका सिंहावलोकन करनेसे चौलुक्यकालीन साहित्यके विभिन्न अंगोंपर प्रकाश पड़ता है। इनमें व्याकरण, नाटक, काव्य, दर्शन, वेदान्त, इतिहास आदिकी प्रभूत रचनायें मिलती हैं। विंटरनित्सको उस समय तक जितनी रचनाएं प्राप्त हुई थी, उनका विभाजन उसने प्रबन्धकथा, काव्य, कोश तथा उपदेशात्मक साहित्यके अन्तर्गत किया है।[2] श्रीकन्हैयालाल माणिकलाल मुंशीने भी प्राप्य सामग्रीपर विश्लेषण और विचार किया है।[3]

---

[1]डिसक्रिप्टिव कैटलाग आव मैन्यूस्क्रिप्ट इन जैनभंडारस् एट पाटन : जी० ओ० एस०, ७५, बड़ौदा १९३७।

[2]हिस्ट्री आव इंडियन लिटरेचर : खंड २, पृ० ५०३-१४।

[3]गुजरात एंड इटस् लिटरेचर : पृ० ३६-४७

जयसिंह और कुमारपाल साहित्यके महान सरक्षक थे। वडनगर प्रशस्ति (३०वी पक्ति)मे कहा गया है कि जयसिंह सिद्धराजने श्रीपालको अपना भाई माना था और वह कविचक्रवर्ती कहे जाते थे। प्रबन्धोमें इस बातका उल्लेख है कि कवि चक्रवर्ती श्रीपाल जयसिंहदेवका राजकवि था। वीरोचन पराजय उसकी प्रमुख कृति थी। वह दुर्लभराज मेरु तथा श्रीस्थल सिद्धपुरम रुद्रमहालयके लिए प्रशस्ति लिखता था, इसका वर्णन प्रभावकचरितमें मिलता है।[1] पाटन अनहिलवाडाके निकट जयसिंह द्वारा निर्मित सहस्रलिंग तालाबकी प्रशसामें श्रीपालने जो प्रशस्ति लिखी थी, उसका उल्लेख मेरुतुगने भी किया है।[2] इस प्रशस्तिम लिखा है कि कुमारपालके समय भी वह अपने पदपर बना रहा। सोमप्रभाचार्यने इसका उल्लेख किया है कि कवि सिद्धपाल कुमारपालके राजदरबारमें था।[3] कुमारपालकी दिनचर्य्याका वर्णन करते हुए कहा गया है कि भोजनोपरान्त वह विद्वानोकी सभामे उपस्थित हो धार्मिक एव दार्शनिक विषयोपर विचार विमर्श करता था।[4] इनमे कवि सिद्धपाल मुख्य थे और ये सदा राजाको कहानिया तथा कथा प्रसग सुनाकर प्रसन्न करते थे।[5] फोर्वस्ने भी लिखा है कि कार्य समाप्त हो जानेपर पडित और विद्वान आते थे और अमूल्य साहित्य तथा व्याकरणपर विचार एव विवेचन होता था।[6] इतनेसे ही स्पष्ट हो जाता है कि कुमारपाल महान् साहित्यप्रेमी था।

---

[1] प्रभावकचरित : अध्याय २२, पृ० २०६-८।
[2] प्रबन्धचिन्तामणि : पृ० १५५-६।
[3] कुमारपालप्रतिबोध।
[4] वही, पृ० ४२३।
[5] वही, पृ० ४२८।
[6] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३७।

हेमचन्द्रकी साहित्यिक कृतियां

जैन आचार्य हेमचन्द्र अपने समयका महापडित तथा महान प्रतिभा-सम्पन्न ग्रन्थकार हुआ है। कहा जाता है कि उसने साढे तीन करोड श्लोको-की रचना की थी।[1] उसकी प्रथम रचना सिद्ध हेम शब्दानुशासन है। यह आठ अध्यायोकी रचना है जो सिद्धराजकी प्रार्थनापर उसके स्मारक रूपमें प्रस्तुत की गयी थी। हेमचन्द्रने स्वय इस रचनापर वृहत टीका लिखी जो अष्टदश सहस्रीके नामसे विख्यात है। इसीके साथ एक न्यास भी लिखा गया जो चौरासी हजार ग्रन्थोंके बराबर था। अपने नवीन व्याकरणके नियमोका उदाहरण प्रस्तुत करने तथा चौलुक्य राजाओंके गौरवगानके निमित्त उसने द्वयाश्रय महाकाव्यकी रचना की। इसका, कुमारपालके राजत्वकालका प्राकृत अश, कुमारपालके शासनकालमें ही जोडा गया। उसके व्याकरणकी अन्य टीकाओंकी भी इसी समय रचना हुई थी। अनेकार्थ सग्रहके साथ अभिधान चिन्तामणि दशिनाममाला तथा निघटु, काव्यानुशासन विवेक, छन्दोनुशासन तथा प्रमाणमीमासाकी रचना सिद्धराजके शासनकालमें ही हुई थी। इसप्रकार सिद्धराजके राज्यकालमे ही हेमचन्द्राचार्य अपनी अधिकाश साहित्य साधना कर चुके थे। कुमारपालके शासनकालमें उन्होने जो रचनाए की वे अधिकतर धार्मिक ग्रन्थ थे। योगशास्त्र तथा वीतरागस्तु, कुमारपालके उपदेशार्थ प्रणीत हुए। तीर्थंकरोके जीवनदर्शनके ग्रन्थ 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरितकी' रचना उसने कुमारपालकी प्रार्थनापर की थी। हेमचन्द्रका जन्म विक्रम सवत् ११४५में हुआ था और विक्रम सवत् १२२९में चौरासी वर्षकी प्रौढावस्थामें उसका निधन हुआ। भाषण साहित्य और व्याकरणके क्षेत्रमें उसकी महान देन आज भी इतिहासके सुनहरे पृष्ठोपर अकित है।

---

[1] व्याकरण पचाग प्रमाणशास्त्र प्रकाणमीमासा
छन्दोलकृति चूडामणी च शाद्गनेविभुर्व्यहृत।

सोमप्रभाचार्य और उसकी रचनाए

कुमारपालप्रतिबोधका रचयिता सोमप्रभाचार्य प्रसिद्ध जैन विद्वान था। कुमारपालकी मृत्युके ग्यारह वर्ष बाद विक्रम सवत् १२४१में उसन उक्त रचना की। इससे स्पष्ट है कि वह कुमारपाल तथा उसके गुरु हेमचन्द्रका समसामयिक था। राजकवि श्री श्रीपालके पुत्र सिद्धपालके निवास स्थानपर रहकर उसने इस ग्रन्थकी रचना की। यही रहकर उसने अपनी दूसरी महान कृति 'सुमतिनाथचरित' का भी प्रणयन किया। कुमारपाल-प्रतिबोधके अतिरिक्त उसके तीन ग्रन्थोमें सुमतिनाथचरित उल्लेख्य है। इसमें पाचवें तीर्थंकर सुमतिनाथकी जीवन गाथा वर्णित है। कुमारपाल-प्रतिबोधके समान ही इसका अधिकाश भाग प्राकृत भाषाम लिखा गया है और उसीकी भाति इसमें जैनधर्मकी शिक्षाको समझानेवाली कहानिया भी हैं। इसमें साढे नौ हजार श्लोक हैं। सूक्ति मुक्तावली, सोमप्रभाचार्य-की उल्लेखनीय रचना है, जिसम मिश्रित प्रकारके सौ श्लोक हैं। इसका एक नाम सिन्दूरप्रकर भी है क्योकि इसके प्रथम श्लोकका प्रथम शब्द सिन्दूरप्रकर ही है। जैनोमें इस ग्रन्थकी बहुत प्रसिद्धि है और बहुतसे स्त्री-पुरुष इसे कठस्थ करते हैं। इनकी रचनाशैली भर्तृहरिके नीति-

---

एकार्थानेकार्था देश्या निघट इति च चत्वार
विहिताश्च नामकोशा भुवि कवितानट्युपाध्याया ।
भ्युत्तरषष्टि शलाका नरेश ग्रत गृहि ग्रत विचारे
अध्यात्मयोगशास्त्र विदधे जगदुपकृति विधित्सु ।
लक्षण साहित्यगुण विदधे च द्वयाश्रय महाकाव्यम्
चक्रे विंशतिमुच्चैं स वीतराग स्तवानाच
इति तद्विहित ग्रन्थसखमेव हि न विद्यते
नामापि न विदन्त्मेवा मादृशा मन्दमेधस ।

—प्रभावकचरित ।

शतकके समान है। इसम हिसावे विरुद्ध, सत्य, आस्तेय, पवित्रता तथा सत्‌के सम्बन्धमें छोटे किन्तु गभीर अर्थवाले श्लोक है। इसकी रचनाशैली अत्यन्त हृदयग्राही, सरल और वोधगम्य हैं।

सोमप्रभाचार्यकी तीसरी रचनाका नाम है शतार्थकाव्य। सस्कृत भाषापर उसके आश्चर्यजनक अधिकारका पता उसकी इस रचनासे लगता है। इस रचनामें वसन्त तिलक छन्दमें केवल एक ही श्लोक है और इसे सौ प्रकारसे समझाया गया है। इसी कृतिसे उसका नाम "शतार्थिक' पडा और इसी नामसे वहुतसे वादके ग्रन्थकारोने उसका नामोल्लेख किया है।[1] सोमप्रभाचार्यने इस ग्रन्थमें अपने समसामयिक लोगोका उल्लेख अत्यन्त काव्यात्मक रूपमें किया है। इनमें देवसूरि तथा हेमचन्द्राचार्य जैसे जैनधर्मके आचार्योका वर्णन है, तो क्रमसे हुए गुजरातके चार राजा जयसिंहदेव, कुमारपाल, अजयदेव तथा मूलराजका भी विवरण है। इनके अतिरिक्त इसमें अपने समयके सर्वश्रेष्ठ नागरिक कवि सिद्धपाल और उसके दो गुरुओ अजितदेव तथा विजयसिंहकी भी चर्चा आयी है। सोमप्रभाचार्यकी चार रचनाओमें "सुमितनाथचरित"की रचना कुमारपालके शासनकालमें हुई थी।

राजसभामे विद्वान मंडली

कुमारपालके महामात्य तथा सचिव विद्वान थे। उसने अपनी राज-सभामें विद्वान, विशेषत सस्कृत भाषाके कवियोको रखनेकी परम्परा वनाये रखी। उस समय दो प्रमुख विद्वान रामचन्द्र और उदयचन्द्र थे। ये दोनो ही जैन थे। रामचन्द्रका उल्लेख गुजराती साहित्यमें बारम्बार

---

[1] "सोमप्रभोमुनिपतिर्विदित शतार्थी"—मुनिसुन्दर सूरिकृत गुर्वावली
ततः शतार्थिक ख्यात श्रीसोमप्रभसूरिराट्।
—गुणरत्नसूरिकृत क्रियारत्न समुच्चय।

आया है। वह अपने समयका श्रेष्ठ विद्वान था। उसने "प्रबन्धशत"की रचना की है। उदयनकी मृत्युके पश्चात् कपर्दी कुमारपालका महामात्य नियुक्त हुआ। कपर्दी विविध शास्त्रोंका ज्ञाता होनेके अतिरिक्त संस्कृत भाषाका कवि भी था। कुमारपालके शासनकालमें उस युगका सबसे महान जैन पंडित हेमचन्द्र उसका प्रधान परामर्शदाता था। कपर्दीकी विद्वत्ताकी एक अत्यन्त मनोरंजक कहानी है। इसके अनुसार कुमारपालके दरबारमें सपादलक्षके राजाके दूतके आनेपर राजाने उससे साभर प्रदेशके राजाकी कुशलता पूछी। जब दूतने उत्तर दिया कि "उनका नाम विश्वबल (संसारकी शक्ति) है फिर भला उनकी सदा कुशलतामें क्या सन्देह है? इसपर राजाके पास खड़े कपर्दी मन्त्रीने, जो कुमारपालका प्रिय पात्र विद्वान कवि था, "शुल" और "श्वल" धातुका अर्थ शीघ्रजाना बताते हुए *कहा—वह है विश्वबल, जो (वी) चिड़ियाके समान शीघ्र* उड़ जाता है। दूत जब स्वदेश लौटा तो उसने इसकी चर्चा की। इसपर सपादलक्षके राजाने विद्वानोंसे परामर्शकर विग्रहराजकी उपाधि ग्रहण की। दूत कपर्दीने इस नामका भी ऐसा हास्यास्पद अर्थ किया कि इसके बाद राजाने कपर्दीके भयसे अपना नाम कवि बान्धव रख लिया।[1]

भाषा, साहित्य और शास्त्रोंकी रचना

इस समय हेमचन्द्र व्याकरणशास्त्रका सर्वप्रथम तथा सर्वश्रेष्ठ प्रणेता हुआ। संस्कृतमें लिखे नौ व्याकरणोंकी पांडुलिपियां प्राप्त हुई हैं, इनमें विक्रम संवत् १०८०का "बुद्धिसागर"[2] नामक ग्रन्थ जो जाबालीपुर आधुनिक जालोरमें लिखा गया था, मिला है। हेमचन्द्रने प्राकृत तथा संस्कृत दोनोंमें रचनाएं की हैं। प्राकृत भाषामें उसकी सर्वप्रसिद्ध कृति

---

[1]रासमाला, अध्याय ११, पृ० १९०।

[2]आर्कलाजी आव गुजरात, अध्याय १२, पृ० २५०।

शब्दानुशासन है। इसमें ११वीं १२वीं शतीके अपभ्रंश तथा आधुनिक प्राचीन गुजराती भाषाके पारस्परिक प्रभाव और सम्बन्धका अध्ययन किया जा सकता है। हेमचन्द्रका द्वयाश्रय काव्य, व्याकरणशास्त्र होनेके साथ-साथ कुमारपाल तक चौलुक्यकालीन राजाओंका इतिहास भी है।

चौलुक्योंके समय नाटकके क्षेत्रमें दो प्रमुख नाटककार दृष्टिगत होते हैं। इनमें एक जयसिंह और दूसरे यशपाल हैं। पहलेकी कृति हम्मीरमदमर्दन है और दूसरेकी मोहराजपराजय।[1] नाटककार यशपालने अपनेको कुमारपालके उत्तराधिकारी चक्रवर्ती अजयपालके चरणकमलमें विचरण करनेवाला हंस कहा है। अजयदेवने सन् १२२९से १२३२ तक शासन किया। इसलिए नाटकके प्रणयनकी तिथि इसीके मध्यमें निश्चित की जा सकती है। मोहराजपराजय पांच अंकोंका एक रूपक है। इसमें कुमारपालके द्वारा जैनधर्मकी दीक्षा ग्रहण करनेका विशद चित्रांकन किया गया है। हम्मीरमदमर्दन तथा मोहराजपराजय दोनों नाटकोंका ऐतिहासिक महत्त्व है। इस समयके नाटकोंकी जो पाडुलिपियां प्राप्त हुई हैं उसमें कालिंजरके परमार्धिदेव (सन् ११६५–१२०३)के मन्त्री वत्सराजके छ नाटक हैं।[2] इनसे गुजरातके अन्तरप्रान्तीय साहित्यिक सम्पर्कका परिचय होता है।

कविताके क्षेत्रमें इस समयकी सर्वाधिक महत्त्वकी रचना संस्कृत भाषामें रचित उदयसुन्दरी कथा है।[3] इसका रचयिता लाटदेशका निवासी सोड्ढल है। इसमें तत्कालीन इतिहास तथा साहित्य सम्बन्धी उपयोगी जानकारी है।

तर्कशास्त्र, दर्शनशास्त्र तथा वेदान्त सम्बन्धी पाडुलिपियां भी प्राप्त

---

[1] गायकवाड ओरियंटल सिरीजमें प्रकाशित। संख्या ९, १०।

[2] आर्कलाजी आव गुजरात : अध्याय १२, पृ० २५०।

[3] गायकवाड ओरियंटल सिरीज ३ संख्या ११।

हुई हैं। इनमेंसे हेमचन्द्रका योगशास्त्र अथवा अध्यात्मोपनिषद् तथा कुछ अन्य कृतियां प्रकाशित हो चुकी हैं। इनमें सर्वाधिक महत्त्वकी पांडुलिपि शान्तारक्षितकी तत्वसंग्रह' रचना है। इसके साथ ही इसकी कमलशील तथा तर्कभास कृत पंजिका टीका भी है जो पूर्वी भारतके नालन्दा और राजगृह नामक स्थानोंमें लिखी गयी थी। इससे नालन्दाका गुजरातपर प्रभाव ही नहीं परिलक्षित होता है, अपितु यह भी विदित होता है कि भारतकी दूसरी सीमापर रचित दार्शनिक ग्रन्थोंके प्रति गुजरातकी कैसी भावना थी। बारहवीं शताब्दीमें सांस्कृतिक एकताने, देशके विगत छोरोंको किस प्रकार एक सूत्रमें आबद्ध किया था, यह इससे स्पष्ट है।

इस कालके ऐतिहासिक ग्रन्थोंमें कुमारपालचरितोंके विभिन्न लेखक हैं। 'वसन्तविलास', सुकृतकल्लोलिनी तथा वस्तुपाल तेजपाल प्रशस्ति भी ऐतिहासिक रचनाके अन्तर्गत आती है। कीर्ति-कौमुदी, प्रबन्धचिन्तामणि, विचारश्रेणि, थेरावली, प्रभावकचरितका तो इतिहासकी दृष्टिसे अत्यधिक महत्त्व है।

इस कालके बाद ही नागरीका जन्म होता है और प्राकृत एवं संस्कृत साहित्यमें प्रभूत रचनाएं होती हैं। कुछ लोग नागरीका सम्बन्ध 'नागर'से जोड़ते हैं। नागर ब्राह्मणोंका मूलस्थान गुजरातमें है। साहित्यके विभिन्न अंगोंकी समुन्नतिका श्रेय इसकालमें, राज्यसंरक्षण तथा विद्वानोंकी शान्त एकान्त साहित्य-साधनाको ही है।

कला

कुमारपाल तथा उसके पूर्व शासक जयसिंहसिद्धराज ललित और वास्तुकलाके प्रेमी तथा संरक्षक थे। समाजकी आर्थिक स्थिति अत्यधिक सम्पन्न और समृद्ध थी। चौलुक्य राजाओंके शान्ति और सम्पन्नताके

'आर्केलाजी आव गुजरात : अध्याय १२, पृ० २५१।

शासनकालमें इन परिस्थितियोंके अन्तर्गत विभिन्न कलाके विकास और उन्नति क्रममें बड़ी सानुकूलता थी। सोमप्रभाचार्यका कथन है कि कुमारपाल महान् निर्माता था। उसने पाटनमें मन्त्री वहड तथा वायड परिवारके गर्गसेठके दो पुत्रो सर्वदेव तथा शाभासेठके निरीक्षणमें "कुमारविहार"का विशाल तथा भव्य मन्दिर बनवाया। इसके केन्द्रीय मन्दिरमे श्वेत सगमरमरकी पार्श्वनाथकी विशाल मूर्ति प्रतिष्ठापित है। इसके साथके अन्य चौबिस मन्दिरोंमें उसने चौबिस तीर्थंकरोकी स्वर्ण, रजत तथा पीतलकी मूर्तिया स्थापित की। इसके पश्चात् कुमारपालने पहलेसे भी विशाल और भव्य "त्रिभुवनविहार"का निर्माण कराया, जिसके बहत्तर मन्दिरोंमें बहत्तर तीर्थंकरोकी मूर्तिया स्थापित थीं। इन मन्दिरोंके शिखर भाग स्वर्णमडित थे। मध्यके मन्दिरमें तीर्थंकर नेमिनाथकी अत्यन्त विशाल मूर्ति स्थापित है। केवल पाटनमें ही कुमारपालने चौबिस मन्दिर बनवाये। कुमारपालके अनेकानक मन्दिरोंमें "त्रिविहार" नामक मन्दिर विशेष उल्लेखनीय है।

वास्तु कला

चौलुक्यकालीन वास्तुकलाको धार्मिक तथा लौकिक दो भागोमें विभाजित किया जा सकता है। लौकिकके अन्तर्गत पाटनमें रखी काष्ठपर अकित कलात्मक वस्तुए हैं। नगरकी दीवारें तथा नगरद्वार भी इसीके अन्तर्गत आते हैं। सभवत उस समय गुजरातमें निवास योग्य भवन लकडीके ही बनते थे। काष्ठ बहुत जल्दी नष्ट हो जाता है इसीलिए चौलुक्यकालीन काष्ठके भवनोंके ध्वसावशेष भी नहीं मिलते। नाटककार यशपालने लिखा है कि चौलुक्य राजे उसी राजप्रासादम रहते थ जिनम चावडा राजा रहते थे।[1] फोर्वसने राजमहलका वर्णन करते हुए लिखा

---

[1] "इह धवलहरेसु चिर चावुक्कडराय लालिओ वसियो"।
—मोहराजपराजय अक ४, पृ० ४७।

हुई हैं। इनमेंसे हेमचन्द्रका योगशास्त्र अथवा अध्यात्मोपनिषद् तथा कुछ अन्य कृतियां प्रकाशित हो चुकी हैं। इनमें सर्वाधिक महत्त्वकी पाडुलिपि शान्तारक्षितकी तत्वसग्रह' रचना है। इसके साथ ही इसकी कमलशील तथा तर्कभास कृत पजिका टीका भी है जो पूर्वी भारतके नालन्दा और राजगृह नामक स्थानोंमें लिखी गयी थी। इससे नालन्दाका गुजरातपर प्रभाव ही नही परिलक्षित होता है, अपितु यह भी विदित होता है कि भारतकी दूसरी सीमापर रचित दार्शनिक ग्रन्थोंके प्रति गुजरातकी कैसी भावना थी। बारहवी शताब्दीमें सास्कृतिक एकताने, देशके दिगन्त छोरोको किस प्रकार एक सूत्रमें आबद्ध किया था, यह इससे स्पष्ट है।

इस कालके ऐतिहासिक ग्रन्थोंमें कुमारपालचरितोंके विभिन्न लेखक हैं। 'वसन्तविलास', सुकृतकल्लोलिनी तथा वस्तुपाल तेजपाल प्रशस्ति भी ऐतिहासिक रचनाके अन्तर्गत आती हैं। कीर्ति-कौमुदी, प्रबन्धचिन्तामणि, विचारश्रेणि, थेरावली, प्रभावकचरितका तो इतिहासकी दृष्टिसे अत्यधिक महत्त्व है।

इस कालके बाद ही नागरीका जन्म होता है और प्राकृत एव सस्कृत साहित्यमें प्रभूत रचनाए होती है। कुछ लोग नागरीका सम्बन्ध 'नागर'से जोडते हैं। नागर ब्राह्मणोका मूलस्थान गुजरातमें है। साहित्यके विभिन्न अगोंकी समुन्नतिका श्रेय इसकालमें राज्यसरक्षण तथा विद्वानोंकी शान्त एकान्त साहित्य-साधनाको ही है।

कला

कुमारपाल तथा उसके पूर्व शासक जयसिंहसिद्धराज ललित और वास्तुकलाके प्रेमी तथा सरक्षक थे। समाजकी आर्थिक स्थिति अत्यधिक सम्पन्न और समृद्ध थी। चौलुक्य राजाओंके शान्ति और सम्पन्नताके

'आर्कलाजी आव गुजरात : अध्याय १२, पृ० २५१।

शासनकालमें इन परिस्थितियोंके अन्तर्गत विभिन्न कलाके विकास और उन्नति क्रममें बड़ी सानुकूलता थी। सोमप्रभाचार्यका कथन है कि कुमारपाल महान् निर्माता था। उसने पाटनमें मन्त्री वहड तथा वायड परिवारके गर्गसेठके दो पुत्रों सर्वदेव तथा शंभासेठके निरीक्षणमें "कुमारविहार"का विशाल तथा भव्य मन्दिर बनवाया। इसके केन्द्रीय मन्दिरमे श्वेत संगमरमरकी पार्श्वनाथकी विशाल मूर्ति प्रतिष्ठापित है। इसके सायके अन्य चौविस मन्दिरोंमें उसने चौविस तीर्थंकरोंकी स्वर्ण, रजत तथा पीतलकी मूर्तिया स्थापित की। इसके पश्चात् कुमारपालने पहलेसे भी विशाल और भव्य "त्रिभुवनविहार"का निर्माण कराया, जिसके बहत्तर मन्दिरोंमें बहत्तर तीर्थंकरोंकी मूर्तियां स्थापित थी। इन मन्दिरोंके शिखर भाग स्वर्णमंडित थे। मध्यके मन्दिरमें तीर्थंकर नेमिनाथकी अत्यन्त विशाल मूर्ति स्थापित है। केवल पाटनमें ही कुमारपालने चौविस मन्दिर बनवाये। कुमारपालके अनेकानेक मन्दिरोंमें "त्रिविहार" नामक मन्दिर विशेष उल्लेखनीय है।

वास्तु कला

चौलुक्यकालीन वास्तुकलाको धार्मिक तथा लौकिक दो भागोंमें विभाजित किया जा सकता है। लौकिकके अन्तर्गत पाटनमें रखी काष्ठपर अंकित कलात्मक वस्तुएं है। नगरकी दीवारें तथा नगरद्वार भी इसीके अन्तर्गत आते हैं। सभवतः उस समय गुजरातमें निवास योग्य भवन लकड़ीके ही बनते थे। काष्ठ बहुत जल्दी नष्ट हो जाता है इसीलिए चौलुक्यकालीन काष्ठके भवनोंके ध्वंसावशेष भी नही मिलते। नाटककार यशपालने लिखा है कि चौलुक्य राजे उसी राजप्रासादमें रहते थे जिनमे चावड़ा राजा रहते थे।[1] फोर्वसने राजमहलका वर्णन करते हुए लिखा

[1] "इह धवलहरेसु चिरं चावुक्कडराय लालिओ वसियो"।
—मोहराजपराजय अंक ४, पृ० ४७।

है कि राजाका भवन "राजपाधीव" कहा जाता था, जहा राजप्रासादके अतिरिक्त अन्य राजकीय भवन भी थे। यह कीर्ति स्तम्भोसे अलङ्कृत किया जाता था। घटिका द्वार ही नगरद्वार था। यह नगरकी दिशामें खुलता था। मुख्य गलीमें तीन द्वारोकी त्रिपोलिया होती थी।[1]

चौलुक्योके कालकी सैनिक इमारतोमें किलेके ध्वसावशेष ही अब बच गये हैं। ये और कुछ नही अपितु नगरके चतुर्दिक विशाल दीवालके रूपमें हैं। उस समय जैसा एक शिलालेखमें कहा गया है इन्हे "प्रकार" कहते हैं। वडनगर प्रशस्तिमें लिखा है कि एक ऐसा "प्रकार" कुमारपालने आनन्दपुर (आधुनिक वडनगर) नगरके चतुर्दिक बनवाया था।[2] वडनगरकी उक्त दीवारका अवशेष भी अब नहीं मिलता, क्योंकि बर्गेसने भी इसका उल्लेख नही किया हैं। हा, उसने नगरके उत्तरकी बाहरी दीवारोका उल्लेख अवश्य किया है।[3]

चौलुक्यकालीन ध्वसावशेषोमें धवोई तथा झिनजूवाडाके किले अध्ययन करने योग्य है। धवोईकी दीवारें प्राय ध्वस्त होकर गिर गयी हैं, किन्तु मुख्यद्वारके अवशेषसे उसकालके द्वारोकी सजावट तथा कलात्मक योजनाका अनुमान किया जा सकता है। सम्भवत सर्वप्रथम धवोईके चतुर्दिक दीवार जयसिंह सिद्धराजने बनवाई। बर्गेसका कथन है कि चार मुख्य द्वारोमें बडोदा द्वार सबसे कम क्षतिग्रस्त हैं। इसमें तत्कालीन वास्तुकलाका स्वरूप देखा जा सकता है। बर्गेसने झुनजूवाडामें एक ऐसे और द्वारका उल्लेख किया है, जो सम्भवत उस पहाडी किलेका होगा जिसे चौलुक्योने सौराष्ट्रसे होनेवाले आक्रमणोंके प्रतिरोध निमित्त निर्मित

---

[1]रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३७।

[2]इपि० इडि० : खड १, पृ० २९३।

[3]बर्गेस, ए० एस० डब्लू० आई० ९, ८२-८६।

किया होगा।[1] इस द्वारपर अंकित कला भी घवोईसे प्रायः साम्य रखती है। हां, इसमें कतिपय भिन्न वस्तुएं भी हैं जो घवोईमें नहीं मिलती। ये हैं अश्वपर सवार मनुष्य, शार्दूल तथा नृत्य करती हुई मूर्तियां।[2]

इस कालके इतिहासों तथा शिलालेखोंसे झील, तालाव, वापी, कूप आदिके निर्माणका पता लगता है। ये राजकीय संरक्षणमें भी बनते थे और जनता द्वारा भी। भीमप्रथमकी रानी उदयमतिने अनहिलवाडामें रानी वाप बनवाया। कर्णने मोढ़ेरा तथा दधिपद्रके निकट रुपन नदीपर कर्णसागरका निर्माण कराया। इसीप्रकार सिद्धराज जयसिंहने सहस्रलिंग नामक विशाल तालाव बनवाया।[3] जयसिंहकी माता रानी मीनलदेवीने लगभग सन् ११००में वीरमगांवमें मानसूर झील बनवायी।[4] इसका आकार कुछ वक्र-प्रतीत होता है और यह शंखाकार प्रतीत होती है।[5] इसमें जल तक पहुंचनेके लिए सीढ़ियां तथा घाट भी बने हैं। घाटपर प्राचीन समयके ५२० मन्दिरोंमेंसे अब केवल ३५७ ही छोटे मन्दिर रह गये हैं।[6] इन्हीं मन्दिरोंके अवलोकनसे इस बातकी कल्पना सम्भव हो सकती है कि सहस्रलिंग तालावमें एक हजार एक शिवलिंगकी स्थापना कैसे हुई।

सोमनाथका मन्दिर

गुजरातके चौलुक्य सोलंकी राजाओंके समय सोमनाथ मन्दिरके निर्माणकी घटना इतिहासकी चिरस्मरणीय घटना है। प्रवन्धचिन्तामणिमें

[1]वर्गेस : ए० के० के०, पृ० २१७।
[2]वही।
[3]ए० एस० डब्लू० आई० : ९, पृ० ३९।
[4]आर्कोलाजिकल सर्वे आव इंडिया वेस्ट सर्किल : अध्याय ९, पृ० ३९।
[5]वही, अध्याय ८, पृ० ९१।
[6]वही।

मेरुतुगने लिखा है कि जब कुमारपालने हेमाचार्यके गुरु श्रीदेवसूरिसे अपना सुयश चिरस्थायी बनाये रखनेके सम्बन्धमें पूछा, तो श्रीदेवसूरिने कहा सोमनाथका एक नया मन्दिर पत्थरका बनवाओ जो युगांतक स्थायी रहे। लकडीका बना मन्दिर समुद्रकी लहरोंसे क्षतिग्रस्त हो गया है।

कुमारपालने इसे स्वीकार किया तथा एक मन्दिर निर्माण समिति नियुक्त की जिसे पचकुल कहा जाता था। इस पचकुल अथवा समितिके अध्यक्ष सोमनाथ स्थित राज्याधिकारी ब्राह्म गडभाव बृहस्पति थे। सोमनाथ मन्दिरका अब नवनिर्माण हुआ है। उसके पूर्व समुद्रतटपर लहरोंसे क्षत विक्षत जिस मन्दिरका गर्भागार मसजिदके रूपमें परिवर्तित कर दिया गया था तथा जिसका शिखर भाग छिन्न विच्छिन्न हो गया था, यह उसी मन्दिरका अवशेष था, जिसे कुमारपालने बनवाया था। यहाँकी वास्तुकला तथा शिल्पकला कुमारपालकालीन अन्य भवनों एवं मन्दिरोंमें पायी जानेवाली कलासे भी साम्य रखती थी। कुमारपालके बनवाये सोमनाथ मन्दिरको बादके मुसलिम शासकोंने अनेकानेक बार पुनः क्षति पहुचायी। इसके स्पष्ट विवरण मिलते हैं। १३०० ईस्वीमें अलफखान, १३९०में मुजफ्फर द्वारा, १४९०के लगभग महमूद बगदा, तथा मुजफ्फर द्वितीय द्वारा सन् १५३०में इस मन्दिरको क्षति पहुचायी गयी।

कुमारपालके बाद खेंगण चतुर्थ (१२७९-१३३३म) द्वारा सोमनाथका पुनर्निर्माण बहुत प्रसिद्ध है। अलाउद्दीन खिलजीने जब सोमनाथ मन्दिर ध्वस्त किया था, उसके पश्चात् ही उक्त नामके जूनागढके चौदसम् राजाने जिसका दो गिरिनारके शिलालेखोंमें उल्लेख मिलता है, सोमनाथ मन्दिरका पुनर्निर्माण किया। गिरिनार शिलालेखमें जूनागढका उक्त राजा सोमनाथ मन्दिरके पुनर्निर्माताके रूपमें उल्लिखित है।

सोमनाथके मन्दिरके निर्माणका वर्णन प्रभासपाटन शिलालेखमें मिलता है। यह भद्रकाली मन्दिरके निकट एक पत्थरपर अंकित है। पाटनमें भद्रकालीका एक छोटासा प्राचीन मन्दिर है। इसी भद्रकाली

मन्दिरके द्वारके निकट दीवारकी ओर एक ओरसे खडित शिलामें आदिकालसे सोमनाथ मन्दिरके निर्माणकी कहानीका उल्लेख है। इस शिलालेखमे हमें सोमनाथके ऐसे विवरण प्राप्त होते हैं, जिनका अन्यत्र कहींसे पता नही लगता। इस शिलालेखके दाहिनी ओरके पत्थरका कोना टूटा हुआ है, इससे लेखकी कतिपय पक्तिया अस्पष्ट हैं। इसके अतिरिक्त शिलालेख सुरक्षित तथा एकदम सुस्पष्ट है।

यह शिलालेख सन् ११६६ तथा वल्लभी सवत् ८५०वा है। इसमे सोमनाथ मन्दिरके निर्माण विषयक प्राचीन गाथाका जो उल्लेख है वह इस प्रकार है-सोमेदादेव (सोमनाथ)का मन्दिर सर्वप्रथम स्वर्णका था और इसे चन्द्रमाने बनवाया था। इसके पश्चात् रावणने चादीका सोम मन्दिर निर्मित कराया। श्रीकृष्णने इसे लकडीका बनवाया। सम्राट कुमारपालके समय सोमनाथका यह मन्दिर गड बृहस्पतिके निरीक्षणमें निर्मित हुआ था।

कुमारपालने बहुतसे जैन चैत्य और मठ भी बनवाये। स्तम्भतीर्थ या कॅम्बेमें उसने सागल वसहिकके मन्दिरका जीर्णोद्धार कराया, जहा हेमचन्द्रने दीक्षा ली थी। जिस महिलाने विपत्तिकालमें उसे जौका आटा तथा दही खिलाया था, उसकी स्मृतिमे उसने पाटनमे "करम्बकविहार" नामक एक मन्दिर निर्मित कराया। इतना ही नही प्रारम्भिक जीवनके पर्यटन-कालमें मूषककी जो हत्या हो गयी थी, उसका प्रायश्चित करनेके लिए उसने "मूषकविहार" नामक मन्दिर बनवाया। हेमचन्द्रके जन्मस्थान धन्धूकमें उसने "झोलिका विहार" निर्मित कराया। इन मन्दिरके अतिरिक्त कुमारपालने एक हजार चार सौ चौआलिस मन्दिरोका निर्माण कराया था।[1]

---

[1]देखिये प्रबन्धचिन्तामणि तथा कुमारपालचरित।

शिल्पकला

भारतीय शिल्पकला वास्तुकलासे मिश्रित है और इसमें मुख्यत अलकरण वास्तुका प्राधान्य होता है। चौलुक्यकालकी शिल्पकलाके उत्कृष्ट निदर्शन, आबूके मन्दिरोमें जैन तीर्थंकरोंके जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाले प्रसग हैं। इनमें वस्तुपाल और तेजपालके पूर्वजो, परिवार तथा विमल मन्दिरके सामने हस्तिशालामें हाथी और घोडपर सवार मनुष्यो-की आकृतिया, अध्ययनकी विशष सामग्री प्रस्तुत करती है। आबू मन्दिरो-की आकृतियोंसे हमें विदित होता है कि उस समय लोगोका पहिनावा कैसा होता था। इन आकृतियोंसे ज्ञात होता है कि लोग उस समय दाढी और बडी-बडी मूछे रखना पसन्द करते थे। कलाई और बाहामें आभूषण, कानमें एरन तथा गलेमें हार पहननेकी उस समय प्रथा थी। मन्दिरमें दर्शनके समयका पहिनावा एक ऊची धोती तथा उत्तरीय होता था। उत्तरीयको कधेके चतुर्दिक डाल देते थे और हाथसे उसके छोर पकड रहते थे। स्त्रिया कचुकीके अतिरिक्त दो वस्त्र पहनती थी। ऊपरका वस्त्र आधुनिक ओढनी जैसा था। स्त्रिया कानोमें बड कुडल, बाह तथा हाथमें कड अथवा कगन जैसे आभूषण धारण करती थीं।[1]

आबूके विमल तथा तेजपाल मन्दिरोमें अनक तीर्थंकरोंके जीवनकी विशष घटनाओकी आकृतिया भी निर्मित की गयी है। एक बडे पट्टमें नमिनाथके विवाह तथा सन्यासकी घटना शिल्पम चित्रित की गयी है। पट्टमें कुल मिलाकर सात खड हैं। इनमसे चार अधोमुखी हैं और तीन उर्ध्वमुखी। प्रथम खडमें नमिनाथके विवाहका जलूस, नृत्य एव गायको सहित निकल रहा है। अन्य खडोम युद्ध, सेना, वधके लिए पशुओका वाडा, विवाहमडप तथा गानवाद्य आदिके दृश्योंके अकन हुए हैं।[2]

---

[1]आर्कलाजी आव गुजरात · अध्याय ४, पृ० ११८।
[2]आर्कलाजी आव गुजरात। अध्याय ४, पृ० ११८।

चौलुक्य मन्दिरोंके ऊपरी भागका निर्माण, हाथी अथवा घोडोकी पक्तिके स्वरूपको शिलामें अकित कर होता था। अश्वोकी पक्तिका उत्खनन, विशाल मन्दिरोकी विशषता मानी जाती थी। हस्ति आकृतिका उत्खनन इस कालके मन्दिरोकी निर्माणकलाम विशिष्ठ उत्कृष्टता मानी जाती थी। नवताख मन्दिरमे, सिंह, नान्दी, वन्दरकी भी आकृतिया मिलती हैं।[1] यहा ये आकृतिया मन्दिरके स्तम्भोमें व्राइकेटके रूपमें प्रयुक्त हुई हैं। इनम शिल्पका सर्वोत्कृष्ट नमूना उस नान्दीका है, जो विशष मुद्राम अपना एक पैर फैलाकर बैठा है।[2]

चित्रकला

चौलुक्य शासकोंके राज्यकालम चित्रकलाका पूण विकास तथा उनयन हुआ था। चौलुक्यराजाओंके दरवारम प्राय चित्रकार आया करते थे। इस तथ्यका समर्थन फोवस्के कथनसे भी होता है। उसने लिखा है कि दरवारम चित्रकारोकी कलाकृतियो सहित उनका परिचय कराया जाता था।[3] कर्णदेव सोलकीके समय भी चित्रकारका उल्लेख मिलता है।[4] एक दिन जब राजाको सिंहासनस्थ हुए बहुत दिन नही हुए थे, सूचना दी गयी कि बहुतसे देशोका परिभ्रमण कर आनवाला एक चित्रकार राजदरवारमें उपस्थित होनकी आज्ञा चाहता है। राजाके आदेश पर चित्रकारको सभामें उपस्थित होनकी अनुमति दी गयी। अभिवादनके बाद चित्रकारने कहा 'आपका यश बहुतसे देशोम फैल गया है और बहुतसे लोग आपके दर्शनाभिलाषी हैं। मैं भी बहुत दिनोंसे आपके

[1] वर्गेस · ए० के० के०, आकृतिया। क्रमश १, ११, ८, १०, १३।
[2] आर्कलाजी आव गुजरात अध्याय ४, पृ० १२३।
[3] रासमाला अध्याय १३, पृ० २३७।
[4] वही, अध्याय ७, पृ० १०५-१०६।

दर्शनका इच्छुक था।" इसके पश्चात् चित्रकारने राजाके सम्मुख चित्रोंका समूह रखा। उन चित्रोंमेंसे एकमें राजाके सम्मुख लक्ष्मी नृत्य करती हुई दिखायी गयी थी और राजाके पार्श्वमें उससे भी एक सुन्दरी खड़ी चित्रित की गयी थी। कर्णदेवने जब इस चित्रका परिचय पूछा तो चित्रकारने बताया 'दक्षिणमें चन्द्रपुर नगरका राजा जयकेशी है। यह उसीकी राजकुमारी मीनलदेवीका चित्र है।" यह राजकुमारी सौन्दर्यकी प्रतिमूर्ति है। बहुतसे राजकुमारोंने उससे विवाहका प्रस्ताव किया। किन्तु राजकुमारीने सभी प्रस्ताव अस्वीकार कर दिये। बौद्ध यतियोंने भी राजकुमारीके सम्मुख बहुतसे राजाओंका चित्र रखा। कुछ समयके उपरान्त एक चित्रकार आपका चित्र लेकर वहाँ उपस्थित हुआ। राजकुमारीने जब यह चित्र देखा तो प्रसन्न होकर आपको अपना पति चुना। यह कहानी चित्रकारोंके सौन्दर्यमय और यथातथ्य चित्रणकी कलाके अस्तित्वकी पुष्टि करती है। ऐसे आकर्षक चित्र बनाये जाते थे, जो हृदयहारी और मनोमोहक होते थे।

इसके अतिरिक्त यशपालके नाटक मोहराजपराजयमें भी चित्रकलाका उल्लेख आया है। रक्षाधिपतियोंके विशाल भवनोंकी दीवारोंपर जैन तीर्थंकरोंकी जीवन घटनाके चित्राकन किये जाते थे।[1]

नृत्य और संगीत

कुमारपालके शासनकालमें नृत्य तथा गायनवादनके अनेकानेक प्रसगोंकी चर्चा आती है। राज्यारोहण समारोहपर जब वह सिंहासनपर आसीन हुआ तो सुन्दरी नर्तकिया अपनी नृत्य तथा संगीतकलाका प्रदर्शन करने लगी। राजप्रासादका प्रागण मोतीके टूटे हुए हारोंसे भर गया था। सारा ससार मगलमय गानवाद्यसे प्रतिध्वनित हो उठा।[2] कुमारपालकी

[1] मोहराजपराजय : अंक ३, पृ० ६०-७०।
[2] कुमारपालप्रतिबोध : पृ० ५।

दिनचर्य्याके अन्तर्गत भी गान-वाद्य सुननेका उल्लेख आता है। सन्ध्या समय राजप्रासादके देवमन्दिरमे पुष्पोंसे पूजन-अर्चनके उपरान्त नर्तकिया दीप प्रज्वलित कर देवताके सम्मुख नृत्यकलाका प्रदर्शन करती थी। पूजनके पश्चात् वह चारण तथा कलाकारोंसे गान-वाद्य सुनता। समारोह तथा महोत्सवके समय नागरिक सगीतका आनन्द लेते और सुसज्जित रगमचपर वेश्याए नृत्य करती। इस समय उन्नत रगमच तथा नाटक अभिनीत करनेका भी उल्लेख मिलता है। सिद्धराज जयसिंहको वेश परिवर्तन कर, कर्ण मेरुप्रासादमें नाटक अवलोकन करते हम देख चुके है। एक और अन्य अवसरपर एक उद्योगपति द्वारा आयोजित नाटक अभिनयमें भी जयसिंह सिद्धराजकी उपस्थिति हम विदित है। इन विवरणोंसे स्पष्ट है कि नृत्य और नाटककलाके प्रयोग और आयोजन समय-समयपर हुआ करते थे और जनसाधारणके अतिरिक्त राजन्यवर्ग भी उनमें दिलचस्पी लेता था। वस्तुत नृत्य और सगीतकी कलाका समाजमें बडा आदर था और इसकी दिनोदिन उन्नति हो रही थी।

महान
चौलुक्य कुमारपाल

गुजरात और भारतके इतिहासमें सम्राट् चौलुक्य कुमारपालका व्यक्तित्व और कृतित्व असाधारण एवं अभूतपूर्व है। जब वह (विक्रम संवत् ११९९ सन् ११४२)में सिंहासनारूढ हुआ तो सिद्धराजकी मृत्युसे शोक सन्तप्त जनतामें प्रसन्नताकी लहर दौड गयी।[1] इस कालके सर्वश्रेष्ठ और महान विद्वान हेमचन्द्रने अपनी रचना महावीरचरितमें कुमारपालको चौलुक्य वंशका चन्द्रमा कहा है और कहा है कि वह महान्, शक्तिशाली और प्रभावशाली होगा।[2] तत्कालीन विद्वानोंके ये वर्णन, उनके संरक्षककी कवित्वमय प्रशस्ति मात्र ही नहीं, अपितु उसकी महत्ता और सत्ता, शिलालेखों, ताम्रपत्रों तथा अभिलेखोंसे भी प्रमाणित होती है। कुमारपालके एक-दो नहीं, वाङ्मय शिलालेख एकमत होकर एक स्वरसे उसके महान् व्यक्तित्व, शासकीय और प्रभुत्वका विशिष्ट उल्लेख करते हैं। इन सभी शिलालेखोंमें इस

---

[1]एको यः सकल कुतूहलितया बभ्राम भूमण्डलम्
प्रीत्या यत्र पतिंवरा समभवत्साम्राज्य लक्ष्मी स्वयम्।
श्रीसिद्धाधिपविप्रयोगविधुरामप्रीणयद्यः प्रजा
कस्यासौ विदितो न गुर्जरपतिश्चौलुक्य कल्पद्रुमः।

—मोहराजपराजय अङ्क १, पृ० २८।

[2]कुमारपालो भूपालश्चौलुक्य चन्द्रमाः
भविष्यति महाबाहु प्रचण्डाखण्ड शासनः।

—महावीरचरित्र, १२ सर्ग, श्लोक ४५।

बातका उल्लेख मिलता है कि कुमारपाल सर्वगुणसम्पन्न तथा उमापति वरलब्ध था।[1]

महान् विजेता

कुमारपालके इतिहासका अनुशीलन और विशेषतः उसके प्रारम्भिक जीवनका अध्ययन करनेपर विदित होता है कि वह अपने भाग्यका स्वयं निर्माता और विधाता था। प्रारम्भमें वह निरन्तर सात वर्षों तक शत्रुओंके मध्य मित्रहीन और साधनहीन होकर यत्रतत्र-सर्वत्र भटकता रहा। उसके अदम्य साहस और दृढ निश्चयका ही यह परिणाम था कि वह शक्तिशाली जयसिंह सिद्धराजका उत्तराधिकारी हो सका। राजकीय सत्ता ग्रहण करनेपर उसने न केवल चौलुक्य साम्राज्यके सुदूर प्रदेशोंपर अधिकार बनाये रखा अपितु स्वयं अनेक राज्योंपर विजय प्राप्त कर अपने साम्राज्य को भी सुदृढ बनाया। वह महान योद्धा पराक्रमी और सफल सेनानायक था। कुमारपालने चौहान अर्णो राजाको युद्धमें ऐसा पराजित किया कि स्वभुज विक्रम रणांगण विनिर्जित शाकंभरी भूपाल उसके नामका एक अंग बन गया।[2] कुमारपालने जिन महत्त्वपूर्ण युद्धोंमें विजय प्राप्त की उनमें कोंकणराज मल्लिकार्जुन तथा मालवाधिप बल्लालकी पराजय उल्लेखनीय है।[3] वसन्तविलास[4] तथा कीर्तिकौमुदी[5] से भी इस तथ्यका

---

[1] परमेश्वर परमभट्टारक महाराजाधिराज उमापतिवरलब्ध प्राप्त राज्य प्रौढप्रताप लक्ष्मी स्वयंवर स्वभुज विक्रम रणांगण विनिर्जित शाकंभरी भूपाल श्रीकुमारपालदेव पादानुध्यात इंडि० ऐंटी० खंड ११, पृ० १८१।

[2] स्वभुज विक्रम रणांगण विनिर्जित शाकंभरी भूपाल श्रीकुमारपालदेव'।

[3] इंडि० ऐंटी० खंड ४ पृ० २६८।

[4] वसन्तविलास ३ २९।

[5] बम्बई गजेटियर खंड १, उपखंड १, पृ० १८५।

पुष्टि होती है। इतने ही विवरणसे स्पष्ट है कि कुमारपाल एक महान् योद्धा था और उसने अपने चतुर्दिकके सभी प्रदेशोंपर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। युद्धमें उसे सदा विजय ही प्राप्त हुई। उसका जीवन सैनिक विजयोंकी शृखलासे अलंकृत था। उसकी नीति आक्रमणात्मक न होकर रक्षात्मक थी। साम्राज्य विस्तार उसका अभिप्रेत न था किन्तु सिद्धराज जयसिंह द्वारा छोडे हुए प्रदेशोंपर अधिकार और प्रभाव बनाये रखना, अनिवार्यत आवश्यक था। इसीलिए शाकंभरी और मालवाके विरुद्ध उसे बाध्य होकर युद्ध करना पडा था।

महान् निर्माता

कुमारपाल न केवल युद्धकी कलामे पारगत था, अपितु शान्तिके महत्वको भलीप्रकार समझता और उसके लिए प्रयत्नशील भी रहता था। जब देशमें शान्ति स्थापित हो गयी तो वह उत्साहपूर्वक रचनात्मक कार्योंमे प्रवृत्त हुआ। प्रसिद्ध सोमनाथ मन्दिरके पुनर्निर्माताके रूपम वह प्रख्यात है।[1] पाटनमें उसने कुमार विहारके विशाल मन्दिरकी स्थापना की।[2] इसके पश्चात् उसने अपने पिता त्रिभुवनपालकी स्मृतिम और अधिक विशाल तथा भव्य "त्रिभुवन विहार"का बहत्तर छोटे मन्दिरो सहित निर्माण कराया।[3] कुमारपालप्रतिबोधके रचयिताका कथन है कि कुमार-पालने पाटनमें जिन चौबिस जैन मन्दिरोकी प्राणप्रतिष्ठा करायी उनमें त्रिविहारका मन्दिर सबसे भव्य था।[4] उसने केवल मन्दिरोका निर्माण ही न किया अपितु इसका भी ध्यान रखा कि उनकी समुचित व्यवस्था

---

[1] इडि० ऍटी० : खड ४, पृ० २६९।

[2] इपि० आई० खड ११, पृ० ५४-५५।

[3] कुमारपालप्रतिबोध।

[4] वही।

होती रहे। पाटनके बाहर उसने जो सैंकडो मन्दिर बनवाये उनमें तारगा पहाडीपर स्थित अजितनाथका मन्दिर उल्लेख्य है। इस व्यापक, विशाल और भव्य निर्माणकी प्रेरणा कुमारपालको केवल जैनधर्ममें दीक्षित होनेसे ही नही प्राप्त हुई थी, बल्कि कला कौशल और वास्तुकलाके प्रति उसका सच्चा प्रेम ही बहुत अधिक अशतक इन कार्योंका प्रेरक था।

युगप्रवर्तक समाज सुधारक

गुजरातके इतिहासमे अपने समयके महान् समाजसुधारकके रूपमें कुमारपालका नाम स्वर्णाक्षरोंमे अकित रहेगा। कुछ विद्वान यह कह सकते है कि कुमारपालने जो समाज-सुधार किये वे शुद्ध समाज-सुधारकके रूपमें नही अपितु जैनधर्मकी श्रद्धाभावनासे अनुप्राणित होकर किये गये थे। किन्तु यह कभी विस्मरण न किया जाना चाहिये कि इतिहासकारके लिए ठोस परिणाम एव निष्कर्ष ही सब कुछ है। इस समय गुजरातका समाज पशुवध, द्यूत, मासाहार, मद्यपान, वेश्यागमन तथा लूटपाटके बुरे परिणामोंसे अभिशप्त हो गया था।[1] इस समय राज्यका एक नियम अत्यन्त ही निन्दा-जनक था। यह था निस्सन्तान मरनेवालोकी सम्पत्तिपर राज्य द्वारा अधिकार कर लेना। राज्यके अधिकारी बिना उत्तराधिकारीके मृत व्यक्तिके घरकी जब सभी सम्पत्ति और वस्तुओपर अधिकार कर लेते थे, तभी शवको अन्तिम सस्कारके लिए ले जाने देते थे। इससे जनताको बहुत कष्ट होता था।[2] कुमारपालने राज्यमें कुछ विशेष तिथियोपर पशुवधपर प्रतिबन्ध लगा दिया था। इसका उल्लघन करनेवालोको भारी आर्थिक दड और मृत्युदड तक दिया जाता था।[3] कुमारपालने निस्सन्तान

---

[1]मोहराजपराजय : अक ३, तथा ४।

[2]वही।

[3]इपि० इडि० : खड ११, पृ० ४४, बी० पी० एस० आई० २०५-७।

व्यक्तियोकी सम्पत्तिपर राज्याधिकारकी नीतिका परित्याग कर दिया।[1] हेमचन्द्रने अपने महावीरचरित्रमें भी इस घटनाका उल्लेख किया है।[2] जिनमदनने कुमारपालप्रतिबोधमें लिखा है कि निस्सन्तान मरनेवालोकी सम्पत्तिपर राज्याधिकारकी नीतिका परित्याग कर कुमारपालने वस्तुतः 'राज्य पितामहकी' उपाधिके लिए अपनेको योग्य सिद्ध किया।[3] यद्यपि यशपालने लिखा है कि जूआ, मद्य और वध करना राज्यमें नही था। इससे यह समझा और स्वीकार किया जा सकता है कि कुमारपालके राज्य-कालमें इनपर प्रतिवन्ध लगा दिया गया था और इनके नियन्त्रण और निर्मूलीकरणके कार्यमें बहुत ही कडाई कर दी गयी थी। हिंसा, द्यूत, और मद्यपर प्रतिवन्ध लगानेके साथ ही उसने निस्सन्तान मरनेवालोकी सम्पत्ति-पर राज्य अधिकारकी, प्राचीन परम्पराको समाप्त कर राज्यमें सर्वत्र निषेधाज्ञा प्रचारित करायी। वस्तुत. कुमारपालके ये साहसपूर्ण सामाजिक सुधार देशमें नये युगका समारम्भ करते हैं।

साहित्य और कलासे प्रेम

कुमारपाल साहित्य, विद्या और कलाका महान् प्रेमी था। शिल्पकला, और वास्तुकलाके प्रति उसके अत्यधिक प्रेमके निदर्शन उसके बहुसख्यक मन्दिर हैं, जिनका निर्माण उसने जैनधर्मकी दीक्षाके उपरान्त कराया।

---

[1] मोहराजपराजय, चतुर्थ अंक।

[2] अपुत्रमृतप्रसां स द्रविणं न ग्रहीष्यति
विवेकस्य फल ह्येतदतृप्ता ह्य विवेकिनः।
—महावीरचरित्र : सर्ग १२, श्लोक ६४।

[3] अपुत्राणा धनं गृह्णन् पुत्रो भवति पार्थवः
त्वं तु सन्तोषतो मुंजन सत्यं राजपितामहः।
—जिनमदन : कुमारपालचरित।

सोमप्रभाचार्यका कथन है कि भोजनोपरान्त वह विद्वानोंकी परिषद्में पंडितोंसे मिलता और उनसे धार्मिक एवं दार्शनिक विषयोंपर विचार-विमर्श करता था। इनमें कवि सिद्धपालका दल राजाको सुन्दर कहानियों और कथा-प्रसगोंके कथन-श्रवण द्वारा प्रसन्न किया करता था।[1] कवि सिद्धपालकी उस स्थानमें भी चर्चा आयी है, जहाँ कुमारपाल सेठ अभयकुमार-को दातव्य सस्थाओंका व्यवस्था भार सौंपता है। कहते हैं कि कुमार-पालने इस सुन्दर और सुविचारित चुनावपर कवि सिद्धपालने उसकी प्रशसा की।[2] कवि सिद्धपालके अतिरिक्त उस युगके विद्वान समाजका सबसे महान् व्यक्तित्व आचार्य हेमचन्द्र उसकी राजसभाकी शोभा बढाते थे। कुमारपालकी राजसभामें उसका महामात्य कपर्दी भी प्रसिद्ध विद्वान और कवि था। हेमचन्द्र द्वारा प्राकृत व्याकरणकी रचना तथा प्राकृतका प्रादुर्भाव, इस युगकी साहित्यिक प्रगतिकी दो महान् देन हैं, जिनका ऐति-हासिक महत्त्व है।

कुमारपालका निधन

कुमारपालका शासनकाल भारतीय इतिहासका एक महत्त्वपूर्णकाल था और गुजरातके इतिहासका तो स्वर्णकाल ही था। प्रबन्धचिन्ता-मणिके अनुसार जब वह सिंहासनारूढ हुआ तो उसकी अवस्था पचास वर्षकी थी। इकतीस वर्ष पर्यन्त राज्य करनेके बाद इक्यासी वर्षकी अवस्थामें सन् ११७४ (वि० स० १२३०)में उसका निधन हुआ। अगरेज इतिहास लेखक श्रीटाडने कुमारपालके सम्बन्धमें एक विचित्र कथन यह किया है कि मृत्युके पहले कुमारपाल तथा हेमचन्द्रने इस्लाम ग्रहण कर लिया था। और यदि इस्लाम न भी ग्रहण किया था

---

[1] मोहराजपराजय : अक ४।

[2] प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश

हेमचन्द्रसे अपने भावी उत्तराधिकारीके विषयमें विचार विमर्श किया था और अजयपालको ही सिंहासनाधिकारी चुना था।[1] मरुतुंगने एक कहानीमें कुमारपालसे कहा है कि श्रीमानका एक पुत्र हुआ है। इसपर राजाने उत्तर दिया कि वह इस नगरका नहीं, गुजरातका राजा होगा।[2] कुमारपालप्रबन्धमें यह लिखा है कि वह अपने दौहित्र प्रतापमल्लको अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था किन्तु अजयपालने उसके विरुद्ध विद्रोह का षड्यन्त्र कर उसे विष देकर छुटकारा पा लिया।[3] यह ध्यान देने योग्य बात है कि अजयपाल द्वारा राजाको विष देनेकी कहानीका अबुल्फजल और मुहम्मदखान भी उल्लेख किया है।[4] हेमचन्द्रकी यह भविष्यवाणी कि कुमारपाल मेरे अवसानके छ मासमे अधिक जीवित न रहेगा, अप्रत्याशित रूपसे सत्य की गयी-सी प्रतीत होती है। इस सम्बन्धमें कुछ न कुछ कुचक्र की शका उस समय और भी साधार तथा सबल हो जाती है, जब हम देखते हैं कि कुमारपालके उत्तराधिकारी अजयपालके शासनकालमें धार्मिक नीतिमें भयकर प्रतिक्रिया हुई थी।

कुमारपालका इतिहासमें स्थान

किसी शासकका इतिहासमें स्थान उस युग विशेषमें उसकी सफलताओंसे ही अंकित और स्थिर किया जाता है। पहले व्यक्तिगत वीरता और युद्ध विजयपर ही राजाकी सत्ता एवं श्रेष्ठता मान्य होती थी। इस मानदडसे कुमारपालके जीवनपर विचार किया जाय तो विदित होता है वह महान् योद्धा और विजेता था। उसने जितने भी युद्ध किये सभीमें

[1] कुमारपालचरित १०, पृ० ११८।

[2] प्रबन्धचिन्तामणि पृ० १४९।

[3] बम्बई गजटियर खड १, उपखड १, पृ० १९४।

[4] ए० ए० के०, खड २ पृ० २६३ तथा एम० ए० ट्रान्स०, पृ० १४३।

निरन्तर सफलता प्राप्त की। यदि केवल इसी मानदण्डसे विचार किया जाय तो भी, कुमारपालकी गणना, महान् राजाओंमें अवश्य करनी होगी। विश्व इतिहासके हमारे प्रसिद्ध लेखक एच० जी० वेल्सने इतिहासके महान् व्यक्तित्वोंकी महत्ताका मूल्यांकन करनेका दूसरा ही मानदण्ड माना है। इसके अनुसार यह देखना होगा कि अमुक राजाने संसारको प्रगति एवं सुखी बनानेमें सफलता प्राप्त की है अथवा नहीं।[1] इस मानदण्डसे कुमारपालके कार्यों और सफलताओंपर दृष्टिपात करनेसे प्रतीत होता है कि, वह निश्चितरूपसे इसी ध्येयको सम्मुख रखकर अग्रसर हो रहा था। सोमप्रभाचार्यने लिखा है कि कुमारपालने असहायोंके भोजन करनेके निमित्त सत्रागारकी स्थापना की। इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिए उसने एक मठका भी निर्माण कराया था।[2] उसकी यह कृपालुता और दयाभावना मानवों तक ही सीमित न थी अपितु विशेष तिथियोंको उसने पशुवधपर भी प्रतिबंध लगा दिया था।[3] केवल यही नहीं, जैनधर्मके प्रभावसे उसने गुजरातके तत्कालीन समाजमें फैली सामाजिक बुराइयोंके दमनमें राज्यशक्तिका भी उपयोग किया।[4] निस्सन्तान व्यक्तियोंके मरनेपर उनकी सम्पत्तिपर, राज्यके अधिकारकी अमानवीय नीतिका उसने परित्याग एवं निषेध कर, प्रजाके प्रति अपने पितृवत प्रेमको अभिव्यक्त किया था।[5]

---

[1] स्ट्रांड मैगजीन, सितम्बर, पृ० २१६।

[2] कुमारपालप्रतिबोध।

[3] इपि० इण्डि० : खण्ड ११, पृ० ४४ तथा बो० पी० एस० आई० २०५-७।

[4] मोहराजपराजय : अंक ४, पृ० ९३-११०।

[5] यीतरागरतेर्यस्य मृत वित्तानिमुञ्चन·
केवस्येव नृदेयस्य मुक्ताभूदमृतापिता।
—कीर्तिकौमुदी · सर्ग २, श्लोक ४३।

इन तथ्योंके आधारपर निश्चितरूपसे कहा जा सकता है कि कुमारपाल भारतके महान् शासकोंमें प्रमुख हो गया है। हर्षवर्धनके पश्चात् कुमारपाल अन्तिम हिन्दू महान शक्तिशाली सम्राट् था, जिसने पश्चिमोत्तर भारतको एकछत्रके अन्तगत करनम पूर्ण सफलता प्राप्त की। कुमारपाल निश्चय ही गुजरातका सबसे बडा चौलुक्य राजा था।[1] उसीके शासन कालमें चौलुक्य साम्राज्य उन्नति और उत्कर्षकी पराकाष्ठापर पहुचा। विभिन शिलालेखोंमें कुमारपालके नामके साथ परमभट्टारक, पारमेश्वर आदिकी जो उपाधिया है ये उसके महान् राजकीय प्रभुत्वकी द्योतक हैं। प्राचीन भारतम सभी महान् राजाओंने नवीन सवत्सरका प्रारम्भ किया है। हेमचन्द्रने भी सफल युद्धोके बाद कुमारपाल द्वारा उसी प्रकारके सवत् प्रारम्भ करनेकी घटनाका उल्लेख किया है। ये समस्त तथ्य तथा परिस्थितिया इस बातकी सूचक है कि महाराजाधिराज सम्राट कुमारपाल, भारतके महान् शासकोंमें विशिष्ट था तथा गुजरातके चौलुक्य राजाओंमें सबसे महान् था।[2]

कुमारपाल और सम्राट् अशोक

प्राचीन भारतके विश्वविश्रुत और सबसे महान् मौर्यसम्राट अशोक तथा बारहवी शताब्दीमें हिन्दू साम्राज्यके अन्तिम भारत प्रसिद्ध शक्तिशाली चौलुक्य कुमारपालके राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक आदर्शोंमें

[1]महीमडल मार्तंडे तत्र लोकान्तर गते
श्रीमान्कुमारपालोय राजा रञ्जिनवायुजा।
—कीर्तिकौमुदी सर्ग २, श्लोक ४०।

[2]न केवल महीपाला सायकैः समराङ्गणे
गुणैर्लोक पर्णर्येनार्जिता पूर्वजाअपि।
—वही, श्लोक ४२।

आश्चर्यजनक किन्तु तथ्यपूर्ण साम्य दृष्टिगोचर होता है। अशोकने ईसा-पूर्व २३२ वर्षमें भारतको चरम उत्कर्षपर पहुचाया तो कुमारपालने हिन्दू राज्यकालके अन्तिम समय बारहवी शताब्दीमे स्वर्णकालकी अवतारणा की। अशोकने मगध और मौर्य साम्राज्यका प्रभुत्व स्थापित किया, तो कुमारपालने गुजरात एव चौलुक्य साम्राज्यका आधिपत्य प्रतिष्ठित किया। जिस प्रकार अशोकके राज्यकालमें उससे कोई अधिक शक्तिशाली प्रभुशक्ति देशमे न थी, ठीक उसीप्रकार बारहवी शताब्दीके भारतीय मानचित्रपर कुमारपालसे अधिक सम्पन्न कोई दूसरा राजा न था।

प्रसिद्ध इतिहासकार श्री एच० जी० वेल्सन ससारके पाच महान् राजाओ-की तुलना करते हुए अशोकको ही सबसे महान् स्वीकार किया है। रोमके सम्राट कान्स्टिनटाइन, मार्क्स ओरिलियस, सीजर और यूनानके सिकन्दर तथा मुगल सम्राट् अकबरकी तुलना करते हुए उनमें अशोककी महत्ता इसलिए स्वीकार की गयी है, कि उसने न केवल अपने प्रजावर्गका अपितु मानवमात्रके प्रति जिस उदारता, सहिष्णुता एव विश्वव्यापक कल्याण भावनाका प्रसार प्रचार किया, वैसी नीति कार्यान्वित करनेमे दूसरे सफल न हुए। प्रजावर्गके हित सम्पादनकी जिस भावनासे अशोकको 'धम्मप्रचार' के लिए प्ररित किया था, वैसी ही अन्तर भावना कुमारपालके हृदयमें भी प्रजाजनके लिए उत्पन्न हुई थी। मानवसेवाके जिस भावने अशोकसे जीवहिंसा, त्याग, अहिंसाप्रचार, दया, दान, सत्य, शौच, मृदुता और साधुता का प्रचार कराया, प्राय उसी प्रकार की प्रेरणा ने कुमारपाल द्वारा सप्त व्यसनो—हिंसा, मद्यपान, द्यूत, मासाहारादिका निषेध करा, उस युगके सामाजिक और सास्कृतिक जीवनमें नवीन युगका प्रवर्तन किया। कुमारपालने मद्य, द्यूत और मृतधनापहरणसे राज्यकोषमें करोडो रुपयोकी होनेवाली आयका त्याग कर, तत्कालीन सामाजिक जीवनमे सद्भावना, सदाचार और सद्विचारका प्रचार किया।

भारतीय इतिहासमें अशोक, बौद्धधर्मका महान् प्रचारक माना

जाता है तो कुमारपाल जैनधम और सस्कृतिका उतना ही बडा प्रसारक तथा पोषक रहा है। अशोक भी पहले शैव था और कुमारपाल भी। दोनोन राजसिंहासनपर आसीन होकर क्रमश आठ तथा सोल्ह वर्षोके वाद वौद्ध और जैनधमकी दीक्षा ली तया जीवनभर सच्चे साधकके रूपम अपन-अपन धर्मोका पालन किया। जिसप्रकार अशोकन बौद्ध होकर अय धर्मोके प्रति सहिष्णु तथा आदरभाव रखा, उसीप्रकार कुमारपाल भी जन होकर शैव सम्प्रदायका समादर करता हुआ, धार्मिक सहिष्णुताकी भावना रखता था। ब्राह्मण और श्रमणका दोनो ही आदर करते थ। अशोकन धम महामात्राकी नियुक्ति, धमकी रक्षा, वृद्धि तथा धमात्माओंके हित एव सुखके लिए सभी सम्प्रदायोंमें काय करनके लिए की थी। इससे जिसप्रकार उसकी धार्मिक सहिष्णुता और सवधम समादरकी भावना सुस्पष्ट ह, उसीप्रकार कुमारपाऌ भी उमापतिवरलब्ध प्रौढप्रताप और परमार्हत दोनो विरुद धारण करनम गौरव मानता था। बौद्धधमके प्रचाराथ अशोकन प्रस्तरस्तम्भो और शिलालेखोका उत्खनन कराया, तो कुमारपालन भी जैनधम सिद्धान्त एव सस्कृतिके निमित्त सहस्रो विहारो तथा मदिरोका निर्माण कराया। अशोकन बौद्ध तीथस्थानोकी श्रद्धापूवक धम-यात्रा की थी तो कुमारपाल भी जैनतीर्थोके भक्तिपूवक नमनके लिए सघ सहित तीथयात्रा की।[1]

अशोकन सडक और सडकके किनारे शीतल छायाके लिए वृक्ष लगाय, कुए खुदवाय, धमशालाए बनवायी और अस्पताल खुलवाय, ठीक उसी प्रकार चौलुक्य कुमारपालन सत्रागारकी स्थापना की। यहा दीन और असहायोको भोजन वस्त्र दिया जाता था। यही नही उसन पोषधशाला का निर्माण कराया जहा धार्मिकजनोके शान्त एव एकान्त निवासकी

---

[1]चलियो कुमारपालो सत्तुजय तित्थ नयणत्य—कुमारपालप्रतिबोध, पृ० १७९।

समस्त सुविधाए सुलभ थी। कुमारपालने न केवल 'पोपधशाला' और 'सत्रागार'की ही स्थापना की अपितु इन दातव्य सस्थाओकी व्यवस्था एव सुप्रबन्धके लिए विशेष तथा विशिष्ट अधिकारीकी नियुक्ति भी की थी।[1] सुप्रसिद्ध इतिहासकार विसेण्ट स्मियने लिखा है कि पशुओंके वधका निषेध बारहवी शताब्दीमें कुमारपालने बडी तत्परतासे अशोककी ही भाति किया था। इसका उल्लघन करनेवालोको चौलुक्य साम्राज्यकी राजधानी अनहिलवाडाके विशेष न्यायालयमें उपस्थित किया जाता था। कुमारपाल द्वारा निर्मित इस न्यायालयकी तुलना, सहजमें ही अशोक द्वारा नियुक्त धर्ममहामात्रोंके उन न्याय अधिकारोंसे की जा सकती है, जिनके अनुसार वे न्यायालयो द्वारा सुनाये गये निर्णयोंपर भी नियन्त्रण रखते थे।[2] जिस प्रकार अशोकने बौद्धधर्मके प्रसारके निमित्त धर्ममहामात्रोंकी नियुक्ति की थी, उसी प्रकार कुमारपालने जैन तथा शैव तीर्थों के पुनरुद्धार एव निर्माण के लिए विशेष अधिकारियोको नियुक्त किया था। हमें विदित है कि गिरनार पर्वतपर सीढियोंके निर्माणके लिए उसने श्रीअमर-को सौराष्ट्रका सूबेदार नियुक्त कर उक्त कार्य विशेषरूपसे सौंपा था। इसीप्रकार भारतीय सस्कृतिके प्रतीक सोमनाथ मन्दिरके निर्माणार्थ भी उसने 'पचकुल'का सघटन किया था, जिसके निरीक्षण एव निर्देशनमें मन्दिरके निर्माणका कार्य सम्पन्न हुआ था।

अशोकने कलिंग विजयके बाद कोई युद्ध न करनेका सकल्प किया था। कुमारपालने भी साम्राज्यविस्तारके लिए आक्रमणात्मक युद्ध न किये अपितु सिद्धराज जयसिंह द्वारा छोडे गये साम्राज्यकी रक्षाके लिए केवल रक्षात्मक युद्ध किये। इसी प्रसगमें जिन राजाओने उसके शत्रुओका पक्ष ग्रहण किया था, उनका मूलोच्छेद उसे राजनीतिकी दृष्टिसे बाध्य

---

[1]वही।

[2]विसेण्ट स्मिथ : भारतका इतिहास, पृ० १६१-२।

होकर करना पड़ा। दोनो ही शान्तिप्रिय, धर्मप्रिय तथा विद्या एव कलाके अनन्य प्रमी थ। जिसप्रकार चन्द्रगुप्तके समय मौर्यसाम्राज्य अपने चरम उत्कर्षको प्राप्त हुआ, उसीप्रकार सिद्धराज जयसिंह द्वारा विजित चौलुक्य साम्राज्य, सम्राट कुमारपालके शासनकालम समृद्धि एव सम्पन्नताके सर्वोच्च शिखरपर पहुच गया था।

इसप्रकार सम्राट् कुमारपाल गुजरातकी गरिमाका सर्वोपरि शिखर था। 'उसके समयम गुजरात विद्या और विभुताम, शौर्य और सामर्थ्यम, समृद्धि और सदाचारम, धर्म और कर्मम, उत्कृष्टतापर पहुच गया था। उसके राज्यमें प्रकृतिकार वैश्य भी महान् सेनापति हुए, द्रव्यलोलुप वणिकजन भी महाकवि हुए और ईर्षापरायण ब्राह्मण तथा निन्दापरायण श्रमण भी परस्पर मित्र हुए। व्यसनासक्त क्षत्रिय भी सयमी साधक बने और हीनाचारी शूद्र धमशील बन। सम्राट् अशोकसे इतनी अधिक समानताके गुण रखनेवाला चौलुक्य सम्राट् कुमारपाल और उसका युग, वस्तुत भारतीय इतिहासमें सुवर्णाक्षरोम अकित करने योग्य है।
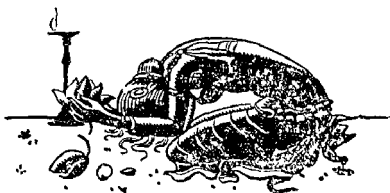
सहायक ग्रन्थोंकी सूची

मूलग्रथ

हेमचन्द्र द्वयाश्रयकाव्य, पी० एल० वैद्य, पूना द्वारा सम्पादित।
हेमचन्द्र महावीरचरित।
सोमप्रभाचार्य कुमारपाल प्रतिबोध, गायकवाड ओरियटल सिरीज, सख्या १४
जयसिंह कुमारपाल चरित कान्ति विजय जानी, बबई द्वारा सम्पादित।
मेरुतुग प्रवन्ध चिन्तामणि, सम्पादक, जिनविजय मुनि, कलकत्ता।
मेरुतुग थेरावली, ज० बी० आर० ए० एस०, खड ६, पृ० १४७।
यशपाल मोहराजपराजय, गायकवाड ओरियटल सिरीज, सख्या ९, १९१८
उदयप्रभा सुकृत कीर्ति कल्लोलिनी, गायकवाड ओरियटल सिरीज परिशिष्ट २, पृ० ६७, ९०।
सोमेश्वर कीर्ति कौमुदी सम्पादक, ए० वी० कथावाट, वम्बई सस्कृत सिरीज सख्या २५।
बालचन्द्र वसन्तविलास, गायकवाड ओरियटल सिरीज, सख्या ७, १९१७।
जयसिंह हम्मीर मदमर्दन, गा० ओ० सिरीज, सख्या १०, १९२०।
चरित्र सुन्दर कुमारपाल चरित, आत्मानन्द ग्रन्थमाला, भावनगर।
चन्द्रप्रभा प्रभावक चरित, सम्पादक जिनविजय मुनि।
पुरातन प्रबन्ध सग्रह सपादक जिनविजय मुनि।
जिनमदन कुमारपाल प्रबन्ध।

मुसलिम इतिहास

जियाउद्दीन तारीख ए फिरोजशाही, इलियट खड ३, पृ० ९३।

निजामुद्दीन तबकात ए अकबरी, बिबलिओथिका इनडिका।
तारीख ए फिरिश्ता ब्रिगस्, खड १।
आइन ए अकबरी ब्लोचमन एड जरेट, खड २।
जफरुल वली वी मुजफ्फर वा अलीह गुजरातका अरबीम इतिहास।
तबकात ए नसीरी रावर्ट कृत अनुवाद, खड १।
मीरात ए अहमदी सैयद नवल अली, गा० ओ० सिरीज, खड ३३।
किताब जैनुल अखबार अबू सईद, सम्पादक नाजिम बरलिन।
तजुल मासीर आव हसन निजामी इलियट खड २, पृ० २२६।

आधुनिक ग्रथ

फोर्बस् रासमाला, सम्पादक रोलिंगसन, आक्सफोर्ड १९२४, खड १।
टाड एनल्स एड एटीक्युटीज आव राजस्थान, सम्पादक, कूक आक्सफोर्ड।
बेली हिस्ट्री आव गुजरात, १८८६, लन्दन।
कमिशरियट हिस्ट्री आव गुजरात।
केम्ब्रिज हिस्ट्री आव इडिया खड ३, अध्याय २, ३, ५ तथा १३।
बर्गेस एड कसन्स आर्किलाजिकल सर्वे आव इडिया। उत्तरी गुजरात।
बर्गेस एड कसन्स आर्किटक्चरल एटीक्वीटीज आव नारदरन गुजरात।
डाक्टर व्हूलर ए कन्ट्रीब्यूशन टू दी हिस्ट्री आव गुजरात।
डाक्टर व्हूलर उवर दस लेवन दस जैन मौंक्स हेमचन्द्र।
एच० डी० सकालिया आर्कलाजी आव गुजरात, नटवरलाल, बम्बई।
के० एम० मुन्शी गुजरात नो नाथ, खड १ से ५, बबई।
के० एम० मुशी ग्लोरी दैट वाज गुजरात।
एच० सी० रे डाइनस्टिक हिस्ट्री आव नदर्न इडिया खड १, २।
कसन्स चालुक्यन आर्किटक्चर, ए० एस० आई०, १९२६।
विसेंट स्मिथ जैन स्तूप एड अदर एटीक्वीटीज आव मथुरा।
विसेंट स्मिथ ए हिस्ट्री आव फाइन आर्ट इन इण्डिया एण्ड सिलान।

जेम्स फर्ग्यूसन : हिस्ट्री आव इण्डियन एण्ड ईस्टर्न ग्रार्किटेक्चर।
डाक्टर मोतीचन्द्र : जैन मिनिएचर फ्रौम वेस्टर्न इण्डिया।
साराभाई एम० नवाब : जैन चित्र कल्पद्रुम।
साराभाई एम० नवाब : जैन तीर्थज ग्राव नदर्न इण्डिया।
मुनि श्री जिनविजय : राजर्षि कुमारपाल।

गजेटियर

गजेटियर आव बाम्बे प्रेसिडेन्सी।
राजपूताना गजेटियर।
इम्पीरियल गजेटियर।
गजेटियर आव नार्थ वेस्टर्न फ्रान्टियर प्राविन्स।

जर्नल

इपिग्राफिया इंडिया।
इंडियन एटीक्वेरी।
जर्नल आव रायल एशियाटिक सोसाइटी।
जर्नल आव बाम्बे ब्रांच रायल एशियाटिक सोसायटी।
पूना ओरियटलिस्ट।

अनुक्रमणिका

विशिष्ट व्यक्ति

ख

ऐतिहासिक स्थान

अ

आ

उ

क

ग्रन्थ